कर्म-दर्शन

संकलन : सा. कंचन कुमारी 'लाडनूं'

कर्म-दर्शन

जैन विश्व भारती प्रकाशन

कर्म-दर्शन

संकलनकर्त्री

सा. कंचनकुमारी 'लाडनूं'

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
पो.: लाडनूं (राज.) 341306
जिला : नागौर (राजस्थान)
फोन : 01581-226080/224671
फैक्स : 01581-227280
e-mail:secretariatldn@jvbharati.org

ISBN 978-81-7195-268-7

© जैन विश्व भारती

प्रथम संस्करण : सितम्बर 2014 (प्रतियां 1100)

मूल्य : दो सौ बीस रुपये मात्र

मुद्रक : सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

KARM-DARSHAN
Collection by Sadhvi Kanchan Kumari 'Ladnun' ₹ 220

आशीर्वचन

आचार्यश्री तुलसी के अनुसार जैनदर्शन में वैज्ञानिक तत्त्वों की भरमार है। उन पर विशेष लक्ष्य के साथ रिसर्च हो तो बहुत लाभ की संभावना है। क्योंकि यह विज्ञान के बहुत निकट है। अपेक्षा है वैज्ञानिकता के साथ इसके प्रस्तुतीकरण की।

जैन दर्शन के आधारभूत तत्त्व चार हैं–आत्मवाद, कर्मवाद, लोकवाद और क्रियावाद। इन तत्त्वों को समीचीन रूप से समझने वाला जैन दर्शन को भली-भांति समझ सकता है।

साध्वी श्री कंचनकुमारीजी ने आचार्यश्री तुलसी की प्रेरणा से जैन तत्त्वज्ञान का विशेष अध्ययन किया। उन्होंने कर्मवाद को गहराई से पढ़ने का प्रयास किया। इस विषय में बोलना और लिखना शुरू किया। लोगों की अभिरुचि ने उनको व्यवस्थित रूप में कुछ लिखने के लिए प्रेरित किया। उसकी निष्पत्ति है **कर्म-दर्शन**।

प्रस्तुत पुस्तक जैनदर्शन या कर्मवाद के जिज्ञासु पाठकों की जिज्ञासाओं के समाधान में सहायक बनेगी, ऐसा विश्वास है।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

नई दिल्ली, महरौली
अध्यात्म साधना केन्द्र
24/7/2014

समर्पण

1. णमामि तुलसीं सुह जम्म सई ए
तित्थयरे व्व सव्वाइसाइणं।
जम्मक्खणे कुंकुम पाय-चिन्धे
पयडे जहा देवा सुरिंदं णमेज्ज।।

2. उन्नई हि करे तस्स जस्स णिट्ठा गुरुपइ।
अओ सुद्ध भावेण सेवेज्जा तुलसी पयं।।

3. पडिपयं तेण रइयं महत्तणं
णाणेण पण्णो बुद्धो य दंसणो।
चारित्त चक्की भावि-अप्पा खमाए
तित्थेस गोत्तेण महापइट्ठो।।

4. तुलसी गुरु विस्स पगासकारी
सो पाव-हारी य संतापहारी।
संजीवणी सव्व रोगावहारी
चरणारविंदे पणमामि तस्स।।

5. समुवासिणी तस्स सरस्सई य,
कित्ती व महिमा महालच्छी रूवा।
एगग्गया महासत्ती य दुग्गा
समप्पए हं मम लहुयं च लेहं।।

6. जोई चरणो महासमणो महेसी
अत्तेप्पलीणो मज्झत्थ मुत्ती।
भयवं च सक्खं रायदेसप्पमुक्तको
अणुकंपाणुरत्तो सोहेज्ज भव्वो।।

तुलसी को तुलसी जन्म शताब्दी मंगल वर्ष में प्रणाम करती हूँ। तुलसी (गुरुदेव) तीर्थंकर की तरह सर्वातिशायी हैं। जैसा कि तुलसी के जन्म क्षणों में पटल पर कुंकुम चरण चिह्न उभरे थे। लगा, देव जैसे अपने इन्द्र को नमन करने आए हों।।1।।

जीवन विकास उसे ही उपलब्ध होता है जिसे गुरु के प्रति आस्था, निष्ठा है। इसलिए शुद्ध भावों से तुलसी चरण-कमलों की आराधना करें।।2।।

तुलसी ने पग-पग पर कीर्तिमान स्थापित किये—जैसे तुलसी ज्ञानाराधना से प्राज्ञ हो गए, दर्शन से क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी, चारित्र के वे मानो चक्रवर्ती हो गए और क्षमा (सहिष्णुता) से मानो भावितात्मा अणगार हो गये हो।।3।।

तुलसी गुरु विश्वभर में प्रकाश करने वाले थे। वे पाप व संताप हरण करने वाले थे। सर्व रोगों के मिटाने की संजीवनी थी। उनके चरणकमलों में मेरा वंदन हो।।4।।

गणाधिपति श्री के सरस्वती सदा समुपासना करती है। कीर्ति व महिमा उनके खजाने की महालक्ष्मियां हैं। उनके एकाग्र-चित्त की महाशक्ति दुर्गा है। मैं उनके चरणों में मेरा एक छोटा-सा लेखन समर्पित करती हूँ।।5।।

महर्षि ज्योतिचरण श्री महाश्रमण आत्मा में लीन अध्यात्म की (एकमात्र) मूर्ति है। लगता है राग-द्वेष से मुक्त वे साक्षात् भगवान हैं और अनुकंपा, मैत्री में लीन, भव्यरूप में सुशोभित हो रहे हैं।।6।।

—साध्वी कंचनकुमारी, लाडनूं

स्वकथ्य

जैन दर्शन विश्व का एक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक दर्शन है। जैन दर्शन का प्रथम पाठ है–कर्मवाद। कर्मवाद जैन सिद्धान्त की नींव है। अध्यात्म को समझने के लिए कर्मवाद को समझना जरूरी है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित 'कर्म सिद्धान्त' भारत की धरा को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व को जैन दर्शन को समझने के लिए कर्म सिद्धान्त को समझना आवश्यक है।

भगवान महावीर ने मात्र मनुष्य जगत की ही नहीं अपितु एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सम्पूर्ण प्राणी जगत् की मीमांसा की है। कर्मों की प्रकृति, परिणाम, अवधि, तीव्र, मंद भावों की सूक्ष्म विवेचना की है। जैन वाङ्मय में चौदह पूर्व को ज्ञान का अक्षय-कोष माना गया है। उसमें आठवें पूर्व का नाम है—कर्मवाद। इसके अतिरिक्त दूसरे अग्रायणीय पूर्व में कर्मप्राभृत नाम का विभाग था। जिसमें कर्म संबंधी चर्चाएं थीं। पूर्वों से उद्धृत कर्म शास्त्र आज भी श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों परम्पराओं में उपलब्ध है।

श्वेताम्बर परम्परा में कर्मप्रकृति, शतक, पंचसंग्रह तथा सप्तातिका ये चार ग्रंथ पूर्वोद्धृत माने जाते हैं। दिगम्बर परम्परा में षट्खण्डागम व कषायप्राभृत ये दो ग्रंथ पूर्वोद्धृत माने जाते हैं। इनमें कर्म संबंधी सब ग्रन्थों का समावेश हो जाता है।

आगमों में भी अनेक स्थानों पर कर्मवाद का विवेचन उपलब्ध है। यथा—

'जं जारिसं पुव्वमकासि कम्मं, तमेव आगच्छति संपराए।'[1] अर्थात् आत्मा ने जैसे कर्म किए हैं, संसार में उसी के अनुसार फल मिलता है।

'कम्मसच्चा हु पाणिणो'[2] प्राणी जैसे कर्म करते हैं, सचमुच वैसे ही फल पाते हैं।

सकम्मुणा विपरियासुवेइ कम्मी कम्महि किच्चइ[3]

मूर्ख अपने कर्म से ही दुखी होता है, कर्मी अपने कर्मों से ही दुखी होता है।

---

1. सूत्रकृतांग 1/5/2/23
2. उत्तराध्ययन 7/20
3. सूत्रकृतांग 9/4

सुचिण्ण कम्मा, सुचिण्ण फला भवंति।
दुचिण्ण कम्मा, दुचिण्ण फला भवंति।।[1]

अच्छे कर्म का फल अच्छा होता है। बुरे कर्म का फल बुरा होता है।

आगमों में उपरोक्त सूत्रों के अतिरिक्त सैकड़ों-हजारों सूत्र कर्म शब्द के अभिन्नार्थक मिल जाएंगे। उन सभी को इस लघुकाय में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। जैन योग के पुनरोद्धारक आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने 'कर्मवाद' नामक पुस्तक में शास्त्रीय कर्म सिद्धान्त का मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक एवं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सांगोपांग विवेचन किया है। यह ग्रन्थ जन साधारण से लेकर उच्चकोटि के मूर्धन्य विद्वानों में भी समादृत है।

प्रेरणा स्रोत-गणाधिपति आचार्यश्री तुलसी

सुजानगढ़ में स्थित रामपुरिया हवेली का प्रसंग है। हम कुछ साध्वियां पूज्य गुरुदेव के उपपात में बैठी हुई थीं। प्रसंगवश गुरुदेव ने फरमाया—सभी साधु-साध्वियों को एक-एक विषय के प्रतिपादन में दक्षता हासिल करनी चाहिए। पास में बैठे श्रीमान् शुभकरणजी दसाणी ने कहा—'गुरुदेव! अगर ऐसा होता है तो तेरापंथ के विकास में चार चांद लग जाएंगे।' पूज्य गुरुदेव ने मुझे भी कहा—'कंचन! तुम्हें भी किसी एक विषय में निष्णात बनने का लक्ष्य रखना है।

तत्त्वज्ञान मेरी रुचि का विषय है। मैंने उसी दिन से यह संकल्प कर लिया कि मुझे तत्त्वज्ञान में आगे बढ़ना है और मैंने उस ओर सलक्ष्य प्रयास भी किया। तत्त्वज्ञान से संबंधित एक विषय है—कर्म। जब मैं स्वतंत्र रूप से सन् 2000 का चतुर्मास मुम्बई के लिए गई। वहाँ पहुँचते ही मेरे मानस पटल पर एक प्रश्न उभरा कि यहाँ तो विद्वान साधु-साध्वियों के चतुर्मास हुए हैं, उनके सामने मैं कुछ भी नहीं हूँ। मैंने पूज्य गुरुदेव का स्मरण करते हुए कहा कि—'प्रभो! मैं किस विषय पर प्रवचन करूँ? यहाँ के श्रावक तो अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। तत्काल मुझे अदृश्य और अनायास मार्गदर्शन मिला कि तुझे कर्म पर बोलना है। तब से आज तक चतुर्मास के प्रारम्भ में, पर्युषण से पूर्व मेरे प्रवचन का विषय कर्मवाद रहता है। यह सब गुरुप्रसाद से ही सम्भव है।

जब मैंने सन् 2005 का अहमदाबाद चतुर्मास परिसम्पन्न कर पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के लाडनूं में दर्शन किये तो श्रद्धेय आचार्य प्रवर ने फरमाया 'कर्मवाद पर तुम्हारा अधिकार हो गया है। लोग तुम्हारी प्रवचन शैली से सन्तुष्ट हैं।

---

1. औपपातिक सूत्र–60

श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी ने भी मुझे एक-दो बार पूछा—'थे कर्मवाद पर कित्ता दिन चला लो? आदि'। मैंने निवेदन किया यह सब गुरुओं की कृपा है। मैं कुछ नहीं जानती। गुरुओं व बड़ों से जो कुछ मैंने थोड़ा बहुत सुना है, उसका मात्र एक अंश बाँटने का साहस कर रही हूँ।

श्रद्धेया महाश्रमणीजी के सान्निध्य में जब कभी भाई-बहन केन्द्र में उपासना हेतु पहुँचते तो उनको महाश्रमणीजी फरमाती—'साध्वी कंचनकुमारीजी को तत्त्वों की अच्छी जानकारी है। वे सिद्धान्तों की जानकार हैं। आपको इस बार उनका पूरा लाभ उठाना है।' सुनकर सात्त्विक आह्लाद की अनुभूति होती। यह सब महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाश्रीजी कनकप्रभाजी की ही कृपा है।

ज्ञान प्रस्तुति की अनेक विधाएं होती हैं। उसमें एक विधा है जिज्ञासा और समाधान, प्रश्नोत्तर शैली। लोगों की अभिव्यक्ति रहती, माँग रहती कि जो आप प्रवचन करती हैं उसकी एक पुस्तक निकल जाये तो हम आसानी से पढ़ लेंगे। प्रवचन करना अलग बात है और निबंधबद्ध लेखों का संकलन कर पुस्तक का रूप देना अलग बात है। वर्तमान में प्रश्नोत्तर शैली को अधिक पसन्द करते हैं। इसके लिए मैंने कर्मवाद को प्रश्नोत्तर शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

कर्म क्या है? जड़ कर्म, चेतन आत्मा के साथ कैसे बंध जाते हैं? इन दोनों का सम्बन्ध कैसे होता है? यह सम्बन्ध कब से है? आत्मा के साथ बंधा हुआ कर्म कब तक फल नहीं देता। कर्म की स्थिति क्या है? कर्म बंध का रस तीव्र है या मन्द? हजार प्रयत्न के बावजूद भी ऐसा कौनसा कर्म है जिसे भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता? आदि अनेक प्रकार के प्रश्नों का समाधान इस पुस्तक में दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में सर्वप्रथम आत्मा और कर्म के बारे में चर्चा की गई है। उसके पश्चात् क्रमशः आठों कर्म के बारे में चर्चा की गई हैं और परिशिष्ट में तत्सम्बन्धी कहानियाँ भी उद्धृत की गई हैं।

गणाधिपति श्री तुलसी की अनन्य कृपापात्र, आचारनिष्ठ, मर्यादानिष्ठ साध्वीश्री सिरेकुमारीजी 'सरदारशहर' आज सदेह हमारे बीच में नहीं हैं। उनकी अनेक विशेषताओं से भरा जीवन मेरे लिए कदम-कदम पर मार्गदर्शक बन रहा है। मेरे संयम-पर्याय के पैंतीस वसन्त आपके सान्निध्य में आनन्दपूर्वक बीते। आप मेरी जन्मदात्री नहीं थी, पर जीवनदात्री व संस्कारदात्री होने के कारण आध्यात्मिक जीवन निर्मात्री थी। मैंने मात्र तेरह वर्ष की उम्र में संयम ग्रहण किया। उस समय मैं अबोध बालिका थी। उनके चरणों में बैठकर मैंने जो कुछ पाया वही मेरे जीवन विकास की आधारशिला है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखनकार्य के समय में भी मुझे यह अनुभव हुआ कि परोक्ष में भी उनकी प्रेरणा काम कर रही है।

अनन्य उपकारी, संयम प्रदाता परमपूज्य गणाधिपति श्री तुलसी व प्रेक्षा प्रणेता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का मंगल आशीर्वाद मेरे कार्य की सफलता का मूलभूत आधार है। सौम्यमूर्ति महातपस्वी आचार्यश्री महाश्रमणजी व वात्सल्यमूर्ति साध्वीप्रमुखाश्रीजी कनकप्रभाजी की प्रत्यक्षतः पावन प्रेरणा से ही प्रस्तुत पुस्तक का लेखन-संकलन कार्य सुगमता से सम्पन्न हो पाया है।

पुस्तक संकलन में साध्वी सिद्धप्रभाजी का अनन्य सहयोग रहा। वे अहर्निश मनोयोग से मेरे साथ कार्यरत रहीं। उन्होंने जागरूकता व निष्ठा के साथ कार्य सम्पादित किया है। प्रश्नोत्तरों का अधिकतर संकलन, नंदी, श्रीभिक्षु आगम शब्दकोश भाग-I, II, भगवती, अवबोध, कर्मग्रन्थ, जैन तत्त्वविद्या, नवपदार्थ, तत्त्व संग्रह, कर्मविज्ञान, कर्मविपाक, उत्तराध्ययन आदि ग्रन्थों से किया गया है।

साध्वी मलययशाजी व साध्वी आस्थाप्रभाजी का भी अत्यन्त सहयोग रहा। कृतज्ञता की अभिव्यक्ति के पलों में श्रीमान् विजयराजजी मरोठी (गंगाशहर निवासी बेंगलूरु प्रवासी) को नहीं भुला सकती, जिनका पुस्तक सामग्री के संकलन में अपूर्व सहयोग रहा। श्रीमती संगीता भंसाली, गंगाशहर का भी अच्छा सहयोग रहा। मैं इन सबके प्रति और प्रत्यक्षतः व परोक्षतः जिस किसी का भी सहयोग मिला उन सबके प्रति हार्दिक अहोभाव व्यक्त करती हूँ। प्रस्तुत पुस्तक में कर्म सम्बन्धी काफी जानकारी एक ही जगह उपलब्ध हो सकेगी। तत्त्वविदों के लिए ज्ञानवृद्धि में सहायक बने, यह मेरी अभीप्सा है।

—साध्वी कंचनकुमारी 'लाडनूं'

अनुक्रमणिका

1.	कर्म और आत्मा	13
2.	कर्म की दस अवस्थाएं	59
3.	ज्ञानावरणीय कर्म	93
4.	दर्शनावरणीय कर्म	125
5.	वेदनीय कर्म	133
6.	मोहनीय कर्म	141
7.	आयुष्य कर्म	169
8.	नाम कर्म	183
9.	गोत्र कर्म	217
10.	अन्तराय कर्म	223
●	परिशिष्ट :	231
	❑ कहानियां	233
●	संदर्भ साहित्य की सूची	296

कर्म और आत्मा

कर्म और आत्मा

1. *कर्म किसे कहते हैं?*

उ. 1. प्राणी की अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट पुद्गल स्कंध (कर्म वर्गणा) जो आत्मा के साथ एकीभूत हो जाता है, वह कर्म कहलाता है।

2. *आत्मा की अच्छी या बुरी प्रवृत्ति के द्वारा कर्म वर्गणा आकृष्ट होती है और वह आत्मा के साथ संपृक्त होकर कर्म कहलाती है।*

2. *कर्म के कितने प्रकार हैं?*

उ. कर्म के आठ प्रकार हैं—

(1) ज्ञानावरणीय कर्म, (2) दर्शनावरणीय कर्म, (3) वेदनीय कर्म, (4) मोहनीय कर्म, (5) आयुष्य कर्म, (6) नाम कर्म, (7) गोत्र कर्म, (8) अन्तराय कर्म।

3. *आत्मा क्या है?*

उ. जो मिथ्यात्व आदि दोषों के कारण वेदनीय आदि कर्मों का कर्ता है, कर्मफल—सुख-दुःख का भोक्ता है, कर्मोदय के अनुसार नारक आदि भवों में संसरण करता है तथा सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र की उत्कृष्ट आराधना से कर्म क्षय कर परिनिर्वाण को प्राप्त करता है वही आत्मा है।

4. *आत्मा किसे कहते हैं?*

उ. जीव, जीव के गुण और जीव की क्रियाएं, इन सबको आत्मा कहते हैं।

5. *आत्मा के कितने प्रकार हैं?*

उ. आत्मा के दो प्रकार हैं—द्रव्य आत्मा और भाव आत्मा।

6. *द्रव्य आत्मा किसे कहते हैं?*

उ. जीव के असंख्य प्रदेशों को द्रव्य आत्मा कहते हैं।

7. *भाव आत्मा किसे कहते हैं?*

उ. जीव की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को भाव आत्मा कहते हैं।

8. *आत्मा अमर है फिर मरता कौन है?*

उ. आत्मा अमर है द्रव्य रूप से किन्तु पर्याय के रूप में मरती भी है। पूर्व शरीर को छोड़ना मरण तथा नये शरीर को धारण करना जन्म है।

9. *आत्मा के मूल गुण कितने हैं?*

उ. केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि मूल गुण हैं।

10. *आठ आत्मा में कौनसी आत्मा वंदनीय है?*

उ. चारित्रात्मा।

11. *कौनसी आत्मा निंदनीय है?*

उ. कषाय आत्मा।

12. *गुणगान करने योग्य आत्माएं कितनी हैं?*

उ. द्रव्य, कषाय को छोड़कर शेष छह आत्माएं गुणगान योग्य हैं।

13. *आत्मा एक है या आठ! कैसे?*

उ. मूल आत्मा तो वैसे द्रव्य आत्मा ही है। सात आत्मा द्रव्य आत्मा की पर्याय है इस दृष्टि से आत्मा के आठ भेद किये गये हैं।

14. *आत्मा शरीर-व्यापी है या सर्वव्यापी?*

उ. आत्मा शरीर प्रमाण है, वह अपने गुणों से शरीर में उपलब्ध होता है। जैसे—घट अपने गुणों से घट में उपलब्ध होता है।
जैसे भिन्न स्वरूप वाले घट में पट का अभाव होता है, वैसे ही शरीर के बाहर आत्मा की अनुपलब्धि है।

15. *आत्मा के कितने गुण है?*

उ. आत्मा के आठ गुण हैं।

16. *आत्मा का पहला गुण कौनसा है और उसे रोकने वाले कर्म पुद्गल का क्या नाम है?*

उ. आत्मा का पहला गुण है—केवलज्ञान और उसे रोकने वाले पुद्गल का नाम है—ज्ञानावरणीय कर्म।

17. *आत्मा का दूसरा गुण कौनसा है और उसे आवृत करने वाले कर्म पुद्गल कौनसे हैं?*

उ. आत्मा का दूसरा गुण है—केवलदर्शन। इस गुण को आवृत करने वाले कर्म पुद्गल हैं—दर्शनावरणीय कर्म।

18. *आत्मा का तीसरा गुण कौनसा है और इसको रोकने वाले कर्म पुद्गल कौनसे हैं?*

उ. आत्मा का तीसरा गुण है—आत्मिक सुख। इस गुण को रोकने वाले कर्म पुद्गल का नाम है वेदनीय कर्म। जीव का स्वभाव अव्याबाध है, वेदनीय कर्म उसकी घात कर देता है। इस कर्म के उदय से जीव पौद्गलिक सुख-दु:ख रूप वेदना का अनुभव करता है।

19. *आत्मा का चौथा गुण कौनसा है और उसको विकृत करने वाले कर्म का क्या नाम है?*

उ. आत्मा का चौथा गुण है—सम्यक् श्रद्धा। आत्मा के इस गुण को बिगाड़ने वाले कर्म पुद्गल का नाम है—मोहनीय कर्म। यह आत्मा को मूर्च्छित एवं विकृत करता है।

20. *आत्मा का पांचवां गुण कौनसा है और उस गुण को रोकने वाले कर्म का क्या नाम है?*

उ. आत्मा का पांचवां गुण है—अटल-अवगाहन। आत्मा की इस शाश्वत स्थिरता को रोकने वाले कर्म का नाम है—आयुष्य कर्म।

21. *आत्मा का छठा गुण कौनसा है और उसको रोकने वाले कर्म का क्या नाम है?*

उ. आत्मा का छठा गुण है—अमूर्तिकपन और इस गुण को रोकने वाले कर्म का नाम है—नाम कर्म।

22. *आत्मा का सातवां गुण कौनसा है?*

उ. आत्मा का सातवां गुण है—अगुरुलघुपन (न हल्का न भारी)। आत्मा के इस गुण को रोकने वाले कर्म का नाम है—गोत्र कर्म। गोत्र कर्म का उदय जीव के अच्छी या बुरी दृष्टि से देखे जाने में निमित्त बनता है। यह जीव की व्यक्तित्व विषयक विशिष्टता अथवा अविशिष्टता का हेतुभूत है।

23. *आत्मा का आठवां गुण कौनसा है और उसे रोकने वाले कर्म पुद्गल का क्या नाम है?*

उ. आत्मा का आठवां गुण है—लब्धि (अनन्त शक्ति)। आत्मा के इस गुण को प्रकट होने में अवरोध डालने वाले पुद्गल का नाम है—अन्तराय कर्म। आत्मा की शक्ति व पौद्गलिक वस्तु की उपलब्धि में बाधा पहुंचाने वाला, विघ्न डालने वाला अन्तराय कर्म है। इस कर्म के उदय से आत्मशक्ति का प्रतिघात होता है।

24. पुद्गल किसे कहते हैं?

उ. जो वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्शयुक्त हो अर्थात् जिसे देखा जा सके, सूंघा जा सके, चखा जा सके एवं स्पर्श किया जा सके उसे पुद्गल परमाणु कहते हैं।

25. सजातीय पुद्गल-समूह को क्या कहते हैं?

उ. वर्गणा।

26. पुद्गल शब्द का अर्थ क्या है?

उ. जो पूर्ण गलन-मिलन धर्मा है वह पुद्गल है। स्निग्ध या रुक्ष कणों की वृद्धि का नाम 'पूरण' और उनकी संख्या की हानि का नाम गलन है।

27. पुद्गल और परमाणु में क्या फर्क है?

उ. जैन परिभाषा के अनुसार अभेद्य, अछेद्य, अग्राह्य, अदाह्य और निर्विभागी पुद्गल को परमाणु कहा जाता है। एक पुद्गल-परमाणु एक वर्ण, एक गंध, एक रस व दो स्पर्शवाला होता है।

28. पुद्गल-परमाणु संख्या में कितने हैं?

उ. पुद्गल-परमाणु संख्या में अनन्तानन्त है।

29. पुद्गल की परिणति कितने प्रकार की होती है?

उ. दो प्रकार की—सूक्ष्म और बादर।

30. प्राणियों से सम्बन्ध रखने वाले विश्व के समस्त पुद्गलों को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है?

उ. प्राणियों से सम्बन्ध रखने वाले विश्व के समस्त पुद्गलों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—चतुःस्पर्शी और अष्टस्पर्शी।

31. चतुःस्पर्शी किसे कहते हैं?

उ. वे पुद्गल, जिनमें वर्ण, गंध, रस के साथ शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष—ये चार स्पर्श हों, चतुःस्पर्शी कहलाते हैं।

32. अष्टस्पर्शी किसे कहते हैं?

उ. वे पुद्गल, जिनमें वर्ण, गंध, रस के साथ हलकापन, भारीपन आदि आठों स्पर्श हों, अष्टस्पर्शी कहलाते हैं।

33. सूक्ष्म और बादर पुद्गल कितने स्पर्शी होते हैं?

उ. सूक्ष्म पुद्गल चतुःस्पर्शी और बादर पुद्गल अष्टस्पर्शी होते हैं।

34. *सामान्य रूप से जीव के काम में आने वाली पुद्गल वर्गणाएं कितने प्रकार की होती हैं?*

उ. जीव के काम में आने वाली पुद्गल वर्गणाएं आठ प्रकार की हैं जिनका उपयोग जीव करता है। उनके नाम हैं—(1) औदारिक वर्गणा, (2) वैक्रिय वर्गणा, (3) आहारक वर्गणा, (4) तेजस वर्गणा, (5) कार्मण वर्गणा, (6) मन वर्गणा, (7) वचन वर्गणा, (8) श्वासोच्छ्वास वर्गणा।

35. *ये वर्गणाएं कितने स्पर्श वाली हैं?*

उ. आठ वर्गणाओं में औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस वर्गणाएं आठ स्पर्श वाली हैं। कार्मण, मन व वचन वर्गणा चतु:स्पर्शी होती हैं। श्वासोच्छ्वास वर्गणा दोनों प्रकार की होती हैं।

36. *निर्जरित कर्म वर्गणा चतु:स्पर्शी ही रहती है या अष्टस्पर्शी भी हो सकती है?*

उ. निर्जरण के बाद कर्म वर्गणा, कर्म वर्गणा नहीं रहती वे केवल पुद्गल रह जाते हैं। ये चतु:स्पर्शी रह कर कभी भाषा, मन आदि रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं, आहारक, तेजस, वैक्रिय आदि अष्टस्पर्शी वर्गणा के रूप में भी परिणत हो सकते हैं। स्कन्ध से अलग हैं। परमाणु रूप में द्विस्पर्शी भी बन सकते हैं। पुन: कर्म वर्गणा के रूप में भी परिणत हो सकते हैं।

37. *लोक में द्रव्य छ: हैं फिर जीव के साथ पुद्गल ही आबद्ध क्यों होता है?*

उ. लोक में छ: द्रव्य हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव। धर्म, अधर्म और आकाश समूचे लोक में व्याप्त होने से वे जीव में भी व्याप्त हैं पर उनका जीव के साथ वैसा संयोग नहीं जैसा पुद्गल का है। धर्म आदि सम्बन्ध स्पर्श रूप है, जबकि पुद्गल का सम्बन्ध बंधन रूप। इस तरह जीव और पुद्गल दो ही पदार्थ ऐसे हैं जो परस्पर आबद्ध हो सकते हैं। पुद्गल के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ नहीं, जो जीव के साथ आबद्ध हो सके।

38. *आत्मा के साथ चिपकने वाले कर्म पुद्गलों को कितने भागों में विभक्त किया गया है?*

उ. आत्मा के साथ चिपकने वाले कर्म पुद्गलों को दो भागों में विभक्त किया गया है—घाति कर्म और अघाति कर्म।

39. *घाति कर्म किसे कहते हैं?*

उ. आत्मगुणों की घात करने वाले, उनका हनन करने वाले कर्म पुद्गलों को

घाति कर्म कहते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय ये चार कर्म 'घाति कर्म' कहलाते हैं।

40. *घाति कर्मों में देशघाती कितने हैं और सर्वघाती कितने?*

उ. वैसे चारों कर्म देशघाती हैं। सर्वघाती कोई कर्म नहीं है। आत्मगुणों की सर्वथा घात कभी नहीं होती। आंशिक उज्ज्वलता अभवी जीवों के भी होती है। चारों घाति कर्मों का क्षयोपशम न्यूनाधिक रूप में सभी छद्मस्थ जीवों में रहता ही है, अतः कर्म देशघाती ही होते हैं। घाति कर्मों की कुछ प्रकृतियां देशघाती एवं कुछ सर्वघाती कही गई हैं।

41. *अघाति कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जो कर्म आत्मगुणों की घात नहीं करते, उन्हें हानि नहीं पहुंचाते, केवल जिनका शुभ-अशुभ रूप में भोग होता है, आत्मगुणों के साथ जिनका सीधा सम्बन्ध नहीं होता वे अघाति कर्म हैं। वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुष्य ये चार 'अघाति' कर्म हैं।

42. *चार अघाति कर्म कब क्षीण होते हैं?*

उ. चार अघाति कर्म चौदहवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक बने रहते हैं। चौदहवें गुणस्थान को पार करना, चार अघाति कर्मों का क्षीण होना और मुक्त होना ये सब काम एक साथ एक समय में घटित हो जाते हैं।

43. *आठ कर्मों में पाप रूप कितने व पुण्य रूप कितने कर्म हैं?*

उ. आठ कर्मों में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म एकान्त पाप रूप हैं। शेष चारों कर्म पाप व पुण्य दोनों रूप हैं। इन चारों के दो-दो भेद हैं—

1. वेदनीय—सात वेदनीय और असात वेदनीय।
2. आयुष्य—शुभ आयुष्य और अशुभ आयुष्य।
3. नाम—शुभ नाम और अशुभ नाम।
4. गोत्र—उच्च गोत्र और नीच गोत्र।

इन चारों कर्मों के प्रथम भेद सात वेदनीय; शुभ आयुष्य, शुभ नाम, उच्च गोत्र पुण्य स्वरूप हैं। असात वेदनीय; अशुभ आयुष्य, अशुभ नाम, नीच गोत्र पाप स्वरूप हैं।

44. *आठ कर्मों में बंधकारक कर्म कितने हैं?*

उ. दो-मोहनीय कर्म और नाम कर्म। मोहनीय कर्म से अशुभ व नाम कर्म से

शुभ कर्म का बंध होता है। शेष छह कर्मों से शुभ-अशुभ दोनों का बंध नहीं होता।

45. *भवोपग्राही कर्म किसे कहते हैं और वे कितने हैं?*

उ. चार अघाति कर्म ही भवोपग्राही कर्म है। घाति कर्मों का क्षय होने के बाद भी जब तक भवोपग्राही (अघाति कर्म) कर्मों का बंधन नहीं टूटता तब तक जीव की मुक्ति नहीं होती। ये कर्म जीव के भव-भ्रमण के हेतुभूत हैं। तीर्थंकर और केवली भी जब तक इनसे मुक्त नहीं होते, उन्हें संसार में रहना पड़ता है। इस दृष्टि से इन्हें भवोपग्राही कर्म कहते हैं। ये चौदहवें गुणस्थान तक बने रहते हैं।

46. *पुण्य कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिसके वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि शुभ हैं तथा जिसका विपाक शुभ है, वह पुण्य कर्म है।

47. *द्रव्य पुण्य और भाव पुण्य किसे कहते हैं?*

उ. शुभ परिणामों से जीव के जो कर्म वर्गणा योग्य पुद्गलों का ग्रहण होता है वे द्रव्य पुण्य कहलाते हैं। जब वे गृहीत पुद्गल उदय में आकर आत्मा को शुभ फल देते हैं, तो भाव पुण्य कहलाते हैं।

48. *पुण्य चतुःस्पर्शी है या अष्टस्पर्शी?*

उ. पुण्य चतुःस्पर्शी है।

49. *पुण्य कर्म पुद्गल सूक्ष्म है या स्थूल?*

उ. पुण्य परमाणु के समान न अति सूक्ष्म है और न अति स्थूल है।

50. *पुण्य की इच्छा करनी चाहिए या नहीं?*

उ. पुण्य की इच्छा नहीं करनी चाहिए। पुण्य की इच्छा करने से एकान्त (केवल) पाप लगता है जिससे जीव को इस लोक में दुःख पाना पड़ता है और उसका शोक-संताप बढ़ता जाता है। (पुण्य बंधन है, बंधन की इच्छा करना पाप है। इसलिए पुण्य बंध की इच्छा नहीं करनी चाहिए।)

51. *पुण्यफल को त्यागने से अथवा उसका भोग करने से क्या होता है?*

उ. पुण्य से प्राप्त वस्तुओं का त्याग करने से निर्जरा होती है और जो पुण्यफल को आसक्त होकर भोगता है उसके चिकने कर्मों का बंध होता है।

52. पुण्य का बंध किससे होता है?

उ. शुभ योग आश्रव से।

53. पुण्य की उत्पत्ति धर्म के साथ ही होती है अथवा स्वतंत्र?

उ. पुण्य की उत्पत्ति धर्म के साथ ही होती है, स्वतंत्र नहीं। इसका कारण है शुभ योग के बिना पुण्य बंध नहीं होता एवं शुभ योग (शुभ प्रवृत्ति) से निर्जरा धर्म निश्चित है। निर्जरा के साथ पुण्य का बंध होता है।

54. शुभयोग से पुण्य का बंध और निर्जरा दो कार्य होते हैं, दोनों में पहले पुण्य बंध होता है या निर्जरा?

उ. प्रवृत्ति के साथ बंध हो जाता है अत: पुण्य बंध पहले होता है। निर्जरा का समय बाद का है।

55. पुण्य का बंध किस कर्म का उदय है?

उ. पुण्य का बंध शुभ नाम कर्म के उदय से है।

56. नाम कर्म के उदय से पुण्य का बंध होता है। चौदहवें गुणस्थान में नाम कर्म का उदय चलता है, फिर वहाँ कर्म का बंध क्यों नहीं होता?

उ. जहाँ पुण्य का बंध होता है, वहाँ नाम कर्म का उदय अवश्य होता है। जहाँ नाम कर्म का उदय रहता है वहाँ पुण्य का बंध हो ही, यह जरूरी नहीं है। यह एक सार्वभौम तथ्य है कि पुण्य बंध में नाम कर्म की नियमा (अनिवार्यता) है और नाम कर्म के उदय में पुण्य बंध की भजना है। चौदहवां गुणस्थान अयोगी है। बिना योग के कर्म बंध होता नहीं, इसलिए उसे अबंधक गुणस्थान माना गया है।

57. पुण्य का बंध किस कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम से होता है?

उ. वीर्यान्तराय कर्म के क्षय-क्षयोपशम से जीव को शक्ति प्राप्त होती है। नाम कर्म के उदय से वह जीव प्रवृत्ति करता है। चारित्र मोह के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से वह प्रवृत्ति शुभ बनती है, उससे कर्मों की निर्जरा होती है और साथ-साथ पुण्य का बंध होता है।

58. पुण्य की पर्याय कितनी हैं?

उ. पुण्य की पर्याय अनन्त हैं। आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर अनन्त-अनन्त कर्म वर्गणाएं चिपकी रहती हैं। जो कर्म वर्गणाएं एक क्षण में आत्म-प्रदेशों से आश्लिष्ट होती हैं, वे अभव्य जीवों से अनन्त गुणा अधिक व सिद्धों के अनन्तवें भाग जितनी होती हैं। इस प्रकार जीव के प्रदेशों के साथ पुण्य के अनन्त प्रदेश बंधे हुए रहते हैं।

59. *पुण्य कर्म की सर्वमान्य प्रकृतियां कितनी हैं?*

उ. पुण्य कर्म की सर्वमान्य प्रकृतियां 42 हैं—

1.	सातावेदनीय कर्म की	—	1	प्रकृति
2.	शुभ आयुष्य कर्म की	—	3	प्रकृति
3.	शुभ नाम कर्म की	—	37	प्रकृतियां
4.	उच्च गोत्र कर्म की	—	1	प्रकृति
		कुल	42	प्रकृतियां

60. *पुण्य का बंध संवर से होता है या निर्जरा से?*

उ. निर्जरा से कर्म कटते हैं साथ ही सहज पुण्य का बंध होता है। संवर से कर्म रुकते हैं।

61. *पाप कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिसके वर्ण आदि अशुभ हैं और जिसका विपाक अशुभ है वह पाप कर्म है।

62. *पाप कर्म में चार स्पर्श कौनसे हैं?*

उ. शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष।

63. *पाप का बंध कितने गुणस्थान तक होता है?*

उ. दसवें गुणस्थान तक।

64. *पाप बंध का मुख्य हेतु क्या है?*

उ. मात्र असत् प्रवृत्ति (अशुभ योग आश्रव)।

65. *क्या पाप का स्वतंत्र बंध माना जा सकता है?*

उ. वस्तुतः पुण्य व पाप दोनों का बंध स्वतंत्र नहीं है। दोनों ही तत्त्व सत् व असत् क्रिया के फलित हैं। स्वतंत्र अस्तित्व है धर्म और अधर्म का। निर्जराजन्य धर्म के साथ पुण्य का तथा अधर्म मात्र के साथ पाप का बंध जुड़ा हुआ है।

66. *पाप की अवान्तर प्रकृतियां कितनी हैं?*

उ. कर्मों की 148 प्रकृतियों में 106 प्रकृतियां पाप की हैं।

67. *पाप कर्म का बंध किस कर्म के उदय से होता है?*

उ. मोहनीय कर्म के उदय से पाप कर्म का बंध होता है।

68. *पाप कर्म के बंध में मोह कर्म का उदय क्यों जरूरी है या मोह के उदय बिना पाप कर्म का बंध नहीं होता, यह कैसे?*

उ. मोह कर्म का उदय दसवें गुणस्थान तक है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एवं अन्तराय ये तीनों एकान्त पाप कर्म हैं। इन तीनों का उदय 12 गुणस्थान के अन्तिम समय तक है पर 11वें व 12वें गुणस्थानों में ये बंधते नहीं हैं क्योंकि 11वें गुणस्थान में मोहकर्म की अनुदय अवस्था है तथा 12वें गुणस्थान में मोहकर्म क्षीण हो जाता है। इन दो गुणस्थानों में इन तीन कर्मों का उदय रहते हुए भी मोह का उदय न रहने से इनका बंध नहीं होता। अत: इससे सिद्ध होता है कि मोह के उदय के बिना पाप कर्म का बंध नहीं होता है।

69. *पुण्य और पाप की कर्म वर्गणा अलग-अलग है या एक ही है?*

उ. कर्म वर्गणा के पुद्गल स्कन्ध अलग-अलग नहीं हैं। जिस प्रवृत्ति से कर्म बंधते हैं, वे उसके अनुरूप बंध जाते हैं। शुभ लेश्या, शुभ योग से आकर्षित कर्म वर्गणा शुभ रूप में परिणत हो जाती है। अशुभ लेश्या, अशुभ योग से आकर्षित कर्म वर्गणा अशुभ रूप में परिणत हो जाती है। शुभता और अशुभता हर कर्म वर्गणा में विद्यमान हैं। जिस रूप में कर्म बंधते हैं, उतने समय विशेष के लिए तदनुरूप कर्म वर्गणा शुभ और अशुभ फल देने वाली हो जाती है।

70. *पुण्यकर्म और पापकर्म सविपाकी होते हैं अथवा अविपाकी?*

उ. पुण्यकर्म और पापकर्म सविपाकी और अविपाकी दोनों तरह के होते हैं। कुछ कर्म सविपाकी होते हैं—जिस रूप में बंधे हैं उसी रूप में भोगे जाते हैं। कुछ कर्म अविपाकी होते हैं—जिन्हें मंदरस अथवा नीरस कर प्रदेशोदय के रूप में भोगा जाता है उनका विपाकोदय नहीं होता।

71. *क्या पुण्य और पाप अपना-अपना होता है?*

उ. पुण्य और पाप आत्मस्थित हैं, किन्तु बाह्य निमित्तों की अपेक्षा रखते हैं, काल परिपाक से फल देते हैं। अत: पुण्य-पाप का फल स्वत: प्राप्त होता है दूसरों से नहीं।

72. *बंध और पुण्य-पाप में क्या अन्तर है?*

उ. बंध जीव की बद्धमान अवस्था है जबकि पुण्य-पाप शुभ-अशुभ कर्म की उदीयमान अवस्था है।

73. *जीव और पुद्गल पुण्य है या पाप?*

उ. जीव और पुद्गल न पुण्य है और न पाप। जीव और पुद्गलों का संयोग होने पर जो स्थिति बनती है वह पुण्य या पाप है।

74. *संसार की समस्त आत्माओं को कितने वर्गों में बांटा जा सकता है?*

उ. संसार की समस्त आत्माओं को कर्मों के उदय, क्षयोपशम और क्षय के आधार पर तीन वर्गों में बांटा जा सकता है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। आत्मा मूलत: एक ही है। उपरोक्त तीन वर्ग सापेक्ष दृष्टि से किये गये हैं।

75. *जीव की विविधता का हेतु क्या है?*

उ. जीव की विविधता का हेतु है—कर्म।

76. *कर्म रूपी है या अरूपी?*

उ. कर्म रूपी है।

77. *कर्म जीव है या अजीव?*

उ. अजीव।

78. *कर्म सावद्य है या निरवद्य?*

उ. दोनों नहीं। क्योंकि कर्म तो अजीव है।

79. *कर्म हेय है या उपादेय?*

उ. हेय।

80. *कर्म चतु:स्पर्शी है या अष्टस्पर्शी?*

उ. कर्म चतु:स्पर्शी है।

81. *कर्म सकारण होते हैं या निष्कारण?*

उ. कर्म सकारण होते हैं, निष्कारण नहीं।

82. *कर्म के प्रदेश अधिक हैं या आत्मा के प्रदेश अधिक हैं?*

उ. कर्म के प्रदेश। एक जीव की अपेक्षा आत्मप्रदेश असंख्यात है। जीव संख्या में अनन्त हैं। अत: सब जीवों की अपेक्षा आत्मा के प्रदेश भी अनन्त हो जाते हैं। प्रत्येक संसारी जीव के एक-एक आत्म प्रदेश पर अनन्त-अनन्त कर्म वर्गणाएं चिपकी हुई हैं। एक-एक कर्म वर्गणा में अनन्त-अनन्त प्रदेश है अत: कर्म प्रदेश अधिक हैं।

83. *आत्मा के साथ बंधने वाले कर्म कितने प्रदेशी होते हैं?*

उ. अनन्त प्रदेशी।

84. *कर्म और जीव का सम्बन्ध कब से हैं?*

उ. आत्मा के साथ कर्मों का अनादि सम्बन्ध है। संसारी आत्मा अनादिकाल से कर्मों से बंधी हुई है। यद्यपि प्रत्येक बंधने वाले कर्म की एक काल मर्यादा होती है। पहले वाले कर्म टूटते हैं नये बंधते रहते हैं। व्यक्ति रूप से कोई भी कर्म अनादि नहीं हो सकता, यह अनादि सम्बन्ध प्रवाह रूप से है।

85. *क्या जीव और कर्म का सम्बन्ध जीव और आकाश की तरह अनादि अनन्त है या स्वर्ण और उपल की तरह अनादि सान्त है?*

उ. जीव और कर्म में दोनों प्रकार का सम्बन्ध है। जैसे अभव्य प्राणी में जीव और कर्म का सम्बन्ध जीव और आकाश की तरह अनादि अनन्त है और भव्य प्राणी में जीव और कर्म सम्बन्ध स्वर्ण और उपल की तरह अनादि सान्त है।

86. *जो अनादि होता है वह अनन्त होता है। अगर हम आत्मा एवं कर्म के सम्बन्ध को अनादि मानें तो उसका अन्त कैसे संभव है?*

उ. अनादि का अन्त नहीं होता, यह एक सामुदायिक नियम है और जाति से सम्बन्ध रखता है। व्यक्ति विशेष पर यह लागू नहीं भी होता है। प्राग्भाव अनादि है पर उसका अन्त होता है। स्वर्ण और मिट्टी का, घी और दूध का सम्बन्ध अनादि है फिर भी वे पृथक् होते हैं ऐसे ही आत्मा और कर्म के सम्बन्ध का अन्त होता है। क्योंकि आत्मा और कर्म का सम्बन्ध प्रवाह रूप से अनादि है व्यक्ति रूप से नहीं। प्रत्येक कर्म एक काल मर्यादा के साथ बंधता है और उसके बाद वह आत्मा से अलग हो जाता है। आत्मा जब अपने पुरुषार्थ से कर्म आने के द्वारों को निरुद्ध कर देता है तथा ध्यान जप आदि से पूर्व अर्जित कर्मों की निर्जरा कर देता है तो एक समय ऐसा आता है कि आत्मा कर्म से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार अनादि कर्मबद्ध आत्मा कर्ममुक्त बन सकती है।

87. *क्या कभी कर्म और आत्मा का संबंध टूट सकता है या नहीं?*

उ. जिस प्रकार तिल और तेल, फूल और खुशबू, सोना और मिट्टी, दही और घी आपस में मिले हुए हैं वैसे ही आत्मा और कर्म आपस में मिले हुए हैं। जिस प्रकार कोल्हू के द्वारा तिल और तेल अलग-अलग हो जाते हैं, अग्नि के द्वारा सोना और मिट्टी पृथक् हो जाते हैं, दही और घी मथनी के द्वारा अलग हो जाते हैं; वैसे ही आत्मा और कर्म तपस्या के द्वारा अलग हो जाते हैं।

88. *क्या पहले कर्म और बाद में जीव, यह बात सही है?*

उ. नहीं। कर्म का कर्ता जीव है। जीव के अभाव में कर्म कौन करेगा?

89. *क्या पहले जीव और बाद में कर्म, यह बात सही है?*

उ. नहीं। कर्मों के बिना जीव कहाँ रहा, मुक्त जीव पुनः संसार में नहीं आता।

90. *क्या जीव और कर्म की उत्पत्ति युगपत् (साथ-साथ) होती है या स्वतंत्र?*

उ. जीव और कर्म की उत्पत्ति युगपत् नहीं होती। युगपत् होने पर 'यह जीव कर्ता है' और 'यह ज्ञानावरणीय आदि कर्म उसका कार्य है'—ऐसा व्यपदेश नहीं हो सकता।

91. *क्या सांसारिक जीव कर्मरहित है?*

उ. नहीं। यदि जीव कर्मरहित है तो भवभ्रमण कैसे होगा, कौन करेगा? यदि जीव कर्मरहित हो तो करणी (तपस्या) किसलिए करेगा?

92. *जीव और कर्म का मिलाप कैसे होता है?*

उ. अपश्चानुपूर्वीतया—न पहले और न पीछे। अनादिकाल से जीव और कर्म का सम्बन्ध चला रहा है। कर्मबद्ध आत्मा ही बार-बार कर्मों से बंधती है।

93. *आत्मा मूर्त है या अमूर्त?*

उ. अमूर्त।

94. *कर्म मूर्त है या अमूर्त?*

उ. मूर्त।

95. *आत्मा अमूर्त है और कर्म मूर्त है फिर अमूर्त आत्मा मूर्त कर्मों का कर्ता कैसे हो सकता है?*

उ. आत्मा अपने भावों का कर्ता है। उदय में आये हुए कर्मों का अनुभव करता हुआ जीव जैसे भाव परिणाम करता है वह उन भावों का कर्ता है। कर्म के उदय के बिना जीव के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम भाव हो ही नहीं सकते, क्योंकि यदि कर्म ही न हो तो उदय आदि किसका हो? अतः उदय आदि चारों भाव कर्मकृत हैं। प्रश्न हो सकता है कि यदि ये भाव कर्मकृत हैं तो जीव उनका कर्ता कैसे? इसका समाधान यह कि भाव कर्म के निमित्त से उत्पन्न है और कर्म भावों के निमित्त से। जीव के भाव कर्मों के उपादान कारण नहीं हैं न कर्म भावों के उपादान कारण हैं। स्वभाव को करता हुआ जीव अपने ही भावों का कर्ता है निश्चय ही पुद्गल कर्मों का नहीं! जीव के भाव कर्म के निमित्त से नये कर्मों का बंध कर लेते हैं।

96. *कर्म अदृष्ट है फिर उसे मूर्त कैसे माना जाता है?*

उ. जिस प्रकार परमाणु सूक्ष्म है, अदृष्ट है लेकिन मूर्त है। तिल में तेल अदृष्ट है, फिर भी मूर्त है उसी प्रकार शरीर मूर्त होने से कर्म भी मूर्त है।

97. *आत्मा अमूर्त है और कर्म मूर्त है फिर इन दो विरोधी वस्तुओं का सम्बन्ध कैसे हो सकता है?*

उ. अमूर्त आत्मा मूर्त कर्म से नहीं बंधती बल्कि अनादिकाल से कर्मबद्ध मूर्त आत्मा से ही कर्म बंधते हैं।

98. *आत्मा स्वतंत्र है या परतंत्र?*

उ. कर्म ग्रहण करने में जीव स्वतंत्र है और उसका फल भोगने में परतंत्र। जैसे कोई वृक्ष पर चढ़ता है, वह चढ़ने में स्वतंत्र है, इच्छानुसार चढ़ता है। प्रमादवश गिर जाए तो वह गिरने में परतंत्र है। इच्छा से गिरना नहीं चाहता, फिर भी गिर जाता है इसलिए गिरने में परतंत्र है। इसी प्रकार विष खाने में वह स्वतंत्र है और उसका फल भोगने में परतंत्र।

कर्मफल भोगने में जीव स्वतंत्र नहीं है, यह कथन आपेक्षिक है। कहीं-कहीं जीव उसमें स्वतंत्र भी होते हैं। जीव और कर्म का संघर्ष चलता रहता है। जीव के काल, पुरुषार्थ आदि लब्धियों की अनुकूलता होती है, तब वह कर्मों को पछाड़ देता है और कर्मों की बहुलता होती है, तब वह जीव उनसे दब जाता है। इसलिए यह माना जा सकता है कि कहीं जीव कर्म के अधीन है और कहीं कर्म जीव के अधीन। निकाचित कर्मोदय की अपेक्षा जीव कर्मों के अधीन ही होता है। दलिक की अपेक्षा जहाँ कर्मों को अन्यथा करने का कोई प्रयत्न नहीं होता वहाँ कर्मों के अधीन और जहाँ पुरुषार्थ आदि होते हैं वहाँ कर्म उसके अधीन होते हैं।

99. *कर्म रूपी आत्मा अरूपी है। रूपी व अरूपी का संबंध कैसे संभव है?*

उ. अनादिकाल से संसारी आत्मा कार्मण शरीर से निरन्तर सम्बन्धित है। इस दृष्टि से आत्मा को कथंचित् रूपी माना गया है। रूपी आत्मा के साथ रूपी कर्म पुद्गलों के चिपकने में कोई विसंगति नहीं है।

100. *कर्मबंध के मुख्य हेतु क्या हैं?*

उ. आश्रव।

101. *आश्रव किसे कहते हैं और उसके कितने प्रकार हैं?*

उ. जिन आत्म परिणामों से कर्मों का आगमन होता है, उसे आश्रव कहते

हैं। आश्रव के पांच प्रकार हैं—1. मिथ्यात्व, 2. अव्रत, 3. प्रमाद, 4. कषाय, 5. योग।

102. मिथ्यात्व आश्रव किसे कहते हैं?

उ. तत्त्व के प्रति विपरीत श्रद्धा को मिथ्यात्व आश्रव कहते हैं।

103. अव्रत आश्रव किसे कहते हैं?

उ. अव्रत अर्थात् अत्याग भाव। इसका संबंध चारित्रमोह के परमाणुओं से है। अव्रत आश्रव देशव्रत एवं सर्वव्रत का बाधक है।

104. प्रमाद आश्रव किसे कहते हैं?

उ. अध्यात्म के प्रति होने वाले आन्तरिक अनुत्साह का नाम प्रमाद है। यह भी चारित्र मोह के परमाणुओं के उदय का प्रभाव है।

105. कषाय आश्रव किसे कहते हैं?

उ. जीव की क्रोध, मान, माया, लोभ रूप परिणति कषाय आश्रव है। आत्म प्रदेशों में जो कषायों की तप्तता है वह कषाय आश्रव है। यह भी चारित्रमोह के परमाणुओं के उदय से है।

106. योग आश्रव किसे कहते हैं?

उ. मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। मिथ्यात्व, अव्रत आदि चारों आश्रव भाव रूप हैं पर योग आश्रव प्रवृत्ति रूप है। योग शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का होता है। बाकी चारों आश्रव एकान्त पापकारी हैं। मन, वचन एवं काय प्रवृत्ति से एवं अन्तराय कर्म के क्षयोपशम, क्षय से आत्म प्रदेशों में जो क्रिया रूप परिणति होती है उससे कर्मबंध होना योग आश्रव है।

107. आश्रव कर्म पुद्गलों को कैसे खींचता है?

उ. जिस प्रकार दीपक में बाती तेल को खींचती है उसी प्रकार आश्रव कर्म पुद्गलों को खींचता है।

108. कर्म ग्रहण करने का सर्वाधिकार किस आश्रव को है?

उ. कर्म पुद्गलों को ग्रहण करने का सर्वाधिकार योग आश्रव को प्राप्त है। पांच आश्रव में प्रथम चार आश्रव अव्यक्त हैं और योग आश्रव व्यक्त है।

109. कर्म बीज कौनसे हैं?

उ. कर्म बीज दो हैं—राग[1] और द्वेष[2, 3]।

---

1. कथा नं. 1
2. कथा नं. 2
3. कथा नं. 3

110. शास्त्रों में राग के कितने प्रकार बताये गये हैं?

उ. शास्त्रों में राग के तीन प्रकार बताये गये हैं—

1. स्नेह राग[1], 2. काम राग[2], 3. दृष्टि राग।

111. राग-द्वेष से कर्मबंध कैसे होता है?

उ. राग हिमपात है जबकि द्वेष दावानल है। दावानल से वृक्षों की हानि होती है तो हिमपात से भी कम नहीं होती। अग्नि जलाती है तो बर्फ भी दाह पैदा कर देती है। अन्तर इतना है कि एक गरम और एक ठण्डी। द्वेष से व्यक्ति जलता है तो राग भी व्यक्ति को जला देती है। द्वेषी को देखने से खून उबलने लगता है तो राग के विरह में हृदय जलता है। राग-द्वेष दोनों ही आत्म-विकास में बाधक हैं।

बिजली दो प्रकार की होती है। एक अपनी ओर खींचती है तो दूसरी झटका देकर फेंक देती है। दोनों ही प्रकार की बिजली मारक होती है। दोनों का दुष्परिणाम मनुष्य को भोगना पड़ता है। दोनों का स्वरूप घातक है। इसी प्रकार राग अपनी ओर खींचता है—द्वेष झटका देकर दूर फेंकता है। अतः दोनों कर्मबंध के कारण हैं।

112. कर्म की कर्ता आत्मा है या कर्म?

उ. कर्म की कर्ता आत्मा है। कर्म का मूल कषाय है। कषाय आत्मा का ही एक पर्याय है।

113. सिद्ध करें कि जीव कर्मों का कर्ता है?

उ. संसारी जीव अनन्तकाल से कर्मबद्ध है। उन कर्मों की उदय, उपशम आदि अवस्थाएं होती हैं, जिससे जीव में नाना प्रकार के भाव-परिणाम उत्पन्न होते हैं। जैसे मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद आदि। जब जीव कर्मों के उदय से उत्पन्न मिथ्यात्वादि भावों में प्रवर्तन करता है, तब पुनः नये कर्मों का बंध होता है। जब इनमें प्रवर्तन नहीं करता तब कर्म नहीं होते, अर्थात् आत्मा कर्म करता है तभी कर्म होते हैं, नहीं करता तब कर्म नहीं होते। इससे आत्मा कर्मों का कर्ता सिद्ध होता है।

भगवती सूत्र में कहा गया है—"अकर्मा के कर्म ग्रहण और बंध नहीं होता। पूर्व कर्म से बंधा हुआ जीव ही नये कर्मों का ग्रहण और बंध करता है। अगर ऐसा न हो तो मुक्त जीव भी कर्म से बंधे बिना न रहे। इससे संसारी जीव कर्मों का कर्ता सिद्ध होता है।

---

1. कथा नं. 4
2. कथा नं. 5

114. जीव कर्मों का उपादान कारण है या प्रेरक कारण?

उ. जीव के मिथ्यात्व आदि भावों द्वारा जो अजीव पुद्गल द्रव्यात्मा के साथ संसर्ग में आ उसे बंधनबद्ध करते हैं, वे कर्म कहलाते हैं। जीव के मिथ्यात्व आदि भाव आश्रव हैं, कर्म उनके फल। आश्रव कारण है और कर्म कार्य। जीव ही अपने भावों से कर्मों को ग्रहण करता है, इसलिए वह कर्मों का उपादान कारण नहीं अपितु प्रेरक कारण है।

115. आत्मा और शरीर एक है या दो?

उ. चेतन शरीर का निर्माता है। शरीर आत्मा का अधिष्ठान है। एक दूसरे की क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रभाव दोनों पर है। अतः आत्मा और शरीर एक नहीं दो हैं।

116. जीव चेतन है, पुद्गल जड़ है इन दोनों में परस्पर सीधा संबंध नहीं है। संबंध के लिए जीव किसका सहारा लेता है?

उ. लेश्या का।

117. आत्मा बोलती है या पुद्गल?

उ. न अकेली आत्मा बोलती है न अकेला पुद्गल। जब दोनों का योग होता है तब एक प्राण-शक्ति पैदा होती है। वह प्राण-शक्ति ही बोलती है, सोचती है, श्वास लेती है, खाना खाती है।

118. कर्म और आत्मा में बलवान कौन है?

उ. अज्ञानी के लिए कर्म बलवान होते हैं और ज्ञानी के लिए आत्मा बलवान होती है।

119. कर्म परमाणु आत्मा के साथ किस प्रकार एकीभूत हो जाते हैं?

उ. दूध और पानी, अग्नि और लोहा, मिट्टी और सोना, तिल और तेल की तरह कर्म परमाणु आत्मा के साथ एकीभूत हो जाते हैं।

120. आत्मा कर्म परमाणुओं को कैसे आकृष्ट करता है?

उ. जिस प्रकार गर्म घी में डाली हुई पुड़ी घी को खींचती है, चुम्बक लोहे को अपनी ओर आकृष्ट करता है, कपड़ा पानी को सोख लेता है, गुरुत्वाकर्षण से धरती हर वस्तु को नीचे की ओर खींच लेती है उसी प्रकार राग-द्वेष के परिणामों से युक्त जीव कर्म पुद्गलों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। ये कर्म पुद्गल आत्मा के प्रकाश को आच्छादित कर देते हैं पर आत्म-शक्ति को समूल नष्ट नहीं करते।

121. आत्मा पर लगे कर्म दिखाई नहीं देते फिर कैसे मानें कि कर्म हैं?

उ. आंखों की देखने की शक्ति सीमित होती है। निकट पड़ी वस्तु को भी आंखें देख नहीं पाती। जैसे आंख में अंजे हुए काजल को आंख स्वयं नहीं देख सकती। चार अंगुल की दूरी पर स्थित कान को नहीं देख सकती। सूर्य के प्रकाश में स्थित तारों को देख नहीं सकती। इसी प्रकार कर्म का अस्तित्व होने पर भी कर्म परमाणु आंख से दिखाई नहीं देते। केवलज्ञानी, सर्वज्ञ प्रभु ही आत्मा पर लगे कर्म परमाणुओं को देख सकते हैं।

122. क्या आत्मा और कर्म सहगामी हैं?

उ. जब तक आत्मा कर्ममुक्त नहीं होती तब तक आत्मा और कर्म साथ-साथ रहते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि—पराधीन आत्मा द्विपद, चतुष्पद, खेत, घर, धन, धान्य, वस्त्र आदि सब कुछ छोड़कर अपने किये हुए कर्मों को साथ लेकर सुखद या दु:खद परभव में जाता है।

123. कर्म के दो प्रकार कौनसे हैं?

उ. द्रव्यकर्म और भावकर्म।

124. द्रव्यकर्म और भावकर्म क्या हैं?

उ. जब तक कर्म बंधे रहते हैं तब तक द्रव्य कर्म कहलाते हैं और उदयावस्था को प्राप्त कर्म भाव कर्म कहलाते हैं। इनमें निमित्त नैमित्तिक भाव है। भाव कर्म से द्रव्य कर्म का संग्रह एवं द्रव्य कर्म के उदय से भाव कर्म तीव्र होता है। भाव कर्म जीवात्मा के परिणाम होने से जीव एवं द्रव्य कर्म पौद्गलिक होने से अजीव है।

125. भावकर्म बंध के कितने कारण हैं?

उ. भावकर्म बंध के पांच कारण हैं—पांच आश्रव। संक्षिप्तिकरण करें तो दो कारण होते हैं—कषाय और योग। इन दोनों को भी और अधिक संक्षिप्त कहा जाए तो कषाय ही कर्मबंध का कारण है।

126. द्रव्य कर्मों का कितने भागों में वर्गीकरण किया जाता है?

उ. चार भागों में—1. प्रकृतिबंध, 2. स्थितिबंध, 3. अनुभाग बंध और 4. प्रदेशबंध।

127. आठ कर्मों का बंध एक साथ ही होता है या अलग-अलग भी होता है?

उ. जैन दर्शन के अनुसार कम से कम एक कर्म का और अधिक से अधिक आठों कर्मों का बंध एक साथ हो सकता है।

128. किस गुणस्थान में कितने कर्मों का बंध होता है?

उ. कर्म बंध के चार विकल्प हैं—

1. ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें गुणस्थान में एक सातवेदनीय कर्म का बंध होता है।
2. दसवें गुणस्थान में छह कर्मों (मोहनीय और आयुष्य को छोड़कर) का बंध।
3. तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थान में सात कर्मों (आयुष्य को छोड़कर) का बंध।
4. पहले, दूसरे, चौथे, पांचवें, छठे और सातवें गुणस्थान में सात-आठ कर्मों का बंध।

129. कर्म का बंध कितने गुणस्थान तक होता है?

उ. तेरहवें गुणस्थान तक।

130. कर्मबंध को किसकी उपमा दी गई है?

उ. कर्मबंध को 'सूची कलाप' की उपमा से उपमित किया गया है। सूची-कलाप से उपमित कर्मबंध के तीन प्रकार हैं—

1. धागे से बंधे हुए सूची-कलाप के समान कर्मों की बद्ध अवस्था है।
2. लोहपट्ट से बद्ध सूची-समूह के समान बद्ध स्पष्ट अवस्था है।
3. अग्नि में तपाकर घन से पीटकर सूची समूह को एकमेक कर देने के समान है बद्धस्पृष्ट निकाचित अवस्था।

131. आठों कर्मों की जघन्य स्थिति का बंध कौन करते हैं?

उ. * मोहनीय कर्म की जघन्य स्थिति का बंध—अनिवृत्ति बादर नामक गुणस्थानवर्ती जीव।

* आयुष्य कर्म की जघन्य स्थिति का बंध—मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य।

* ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय इन छह कर्मों की जघन्य स्थिति का बंध—सूक्ष्म सम्पराय नामक दसवें गुणस्थानवर्ती जीव।

यह जघन्य स्थिति बंध कषाय प्रत्ययिक है। योग प्रत्ययिक जघन्य स्थिति बंध उपशान्त मोह आदि गुणस्थानों में होता है।

132. क्या अन्तराल गति में कर्मबंध होता है?

उ. अन्तराल गति में भी कर्म का बंध होता है। सात कर्मों का (आयुष्य को

छोड़कर) बंध वहां भी होता है। जीव के साथ अव्रत कषाय आदि रहते ही हैं तथा तैजस, कार्मण शरीर भी साथ में होते हैं। वहाँ अध्यवसायों से कर्मों का बंध होता है। वैसे कर्मों का बंध तो कार्मण शरीर के ही होता है।

133. *अन्तराल गति में स्थूल शरीर नहीं होता, स्थूल योग नहीं रहता, फिर कर्मबंध कैसे व किसके होता है?*

उ. अन्तराल गति दो प्रकार की होती है—ऋजु और वक्र। अन्तराल गति में स्थूल शरीर तो नहीं होता। योगजन्य प्रवाह (धक्का) रहता है। वक्र गति में कार्मण काययोग की चंचलता रहती है। अव्रत व कषाय तो जीव के साथ अन्तराल गति में भी विद्यमान रहते हैं। कर्म पुद्गलों को आकर्षित करने के लिए तो इतना काफी है। कर्मों का बंधन सर्वदा कार्मण शरीर के ही होता है। वह वहाँ मोजूद रहता है।

134. *कर्म के क्या कार्य हैं?*

उ.

ज्ञानावरणीय	-	ज्ञान प्राप्ति में बाधा
दर्शनावरणीय	-	दर्शन प्राप्ति में बाधा
वेदनीय	-	सुख व दुःख की अनुभूति
मोहनीय	-	मूढ़ता की उत्पत्ति
आयुष्य	-	भव स्थिति
नाम	-	शरीर निर्माण की प्रकृष्टता व निकृष्टता
गोत्र	-	अच्छी व बुरी दृष्टि से देखा जाना
अन्तराय	-	आत्म-शक्ति की उपलब्धि में बाधक।

135. *कर्म का आत्मा पर किस रूप में असर होता है?*

उ. निम्नोक्त चार प्रकार से कर्मों का असर आत्मा पर होता है—

आवरण	-	आत्मा के मूल गुणों को आच्छादित करना।
विकार	-	आत्मा के मूल गुणों को विकृत करना।
अवरोध	-	आत्मा के विकास में बाधा डालना।
शुभाशुभ का संयोग	-	आत्मा के शुभ और अशुभ संयोग में निमित्त बनना।
1. आवरण	-	ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय।
2. अवरोध	-	आयुष्य, अन्तराय।
3. विकार	-	मोहनीय।
4. शुभाशुभ संयोग	-	वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र।

136. कर्म का भोग स्वतः होता है या दूसरों के सहयोग से?

उ. जो कर्म परिपक्व होकर स्वतः भोग में आते हैं वह स्वतः भोग है। घात-प्रतिघात आदि निमित्त से जो कर्मों की उदीरणा होती है वह परतः होता है।

137. क्या कर्म आत्मा के सभी प्रदेशों से बंधते हैं?

उ. जीव असंख्यात प्रदेशी द्रव्य है। आत्मा के असंख्य प्रदेशों से प्रवृत्ति होती है और सभी आत्म प्रदेशों के कर्मों की अनन्त वर्गणाएं बंधती है। जीव कर्म-ग्रहण किसी एक प्रदेश से ही नहीं, सभी प्रदेशों से करता है।

138. जीव कितनी दिशाओं से कर्म ग्रहण करता है?

उ. जीव सभी दिशाओं से कर्म ग्रहण करता है—ऊपर-नीचे, दायें-बायें, आगे-पीछे सभी दिशाओं से होता है।

139. आत्मा-चेतन पर कर्म-जड़ का प्रभाव कैसे पड़ता है?

उ. कर्म का मन, वचन व काया पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन तीनों का सीधा संबंध आत्मा से है, इसलिए कर्म आत्मा द्वारा आकर्षित होते हैं। स्थूल रूप से भी यह देखा जाता है—शराब पीने वाला व्यक्ति अपनी चेतना को भूल बैठता है, पागल सदृश बन जाता है। अचेतन-शराब का चेतन-व्यक्ति पर इतना प्रभाव पड़ता है, फिर कर्म का आत्मा पर प्रभाव क्यों नहीं हो सकता।

140. कर्म मूर्त है, जीव अमूर्त है, इस स्थिति में कर्म जीव का अनुग्रह-निग्रह कैसे कर सकता है?

उ. जैसे मदिरापान और विषभक्षण आदि से विज्ञान, जिज्ञासा, धृति, स्मृति आदि जीव के अमूर्त गुणों का उपघात तथा दूध, शर्करा, धृतपूर्ण, भेषज आदि उनका अनुग्रह होता है, वैसे ही मूर्त कर्म से अमूर्त जीव का उपधात और निग्रह होता है।

141. संसारी आत्मा मूर्त है या अमूर्त?

उ. संसारी जीव एकान्त रूप से सर्वथा अमूर्त नहीं है। अनादिकाल से कर्म सन्तति जीव के साथ वैसे ही एकमेक है, जैसे लोहपिण्ड में अग्नि। मूर्त कर्म के साथ जीव का कथंचित् अनन्य सम्बन्ध होने से जीव कथंचित् मूर्त है।

142. कर्म की मूर्तता को कैसे जाना जा सकता है?

उ. कर्म की मूर्तता को जानने के चार हेतु हैं—

(1) सुख संवित्ति—कर्म का सम्बन्ध होने पर सुख का संवेदन होता है।

जिसके संबंध में सुख का संवेदन होता है वह मूर्त है। जैसे आहार से क्षुधा-शान्ति रूप सुख का संवेदन होता है।

(2) वेदना का उद्भव—कर्म के संबंध में वेदना का उद्भव होता है। जैसे अग्नि से ताप का अनुभव।

(3) बाह्यबल का आधान—मिथ्यात्व आदि हेतुभूत बाह्य सामग्री से कर्म का उपचय होता है। इससे कर्म की शक्ति बढ़ जाती है। जैसे—स्नेह से अभिषिक्त घट परिपक्व होता है।

(4) परिणामित्व—शरीर आदि के रूप में कर्म परिणामित्व परिलक्षित होता है। जैसे—दही का तक्र के रूप में परिणमन होने से दूध का परिणामित्व जाना जाता है।

143. कर्मों का अस्तित्व (सत्ता) कौनसे गुणस्थान तक है?

उ. मोहनीय कर्म का अस्तित्व ग्यारहवें गुणस्थान तक रहता है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म का बारहवें गुणस्थान तक अस्तित्व रहता है। शेष चार अघात्य कर्म का चौदहवें गुणस्थान तक अस्तित्व रहता है।

144. क्या शुभ-अशुभ कर्मों का बंध एक साथ होता है?

उ. शुभ प्रवृत्ति के समय अशुभ व अशुभ प्रवृत्ति के समय शुभ कर्म का बंध नहीं होता। एक समय में एक का ही बंध होता है। यह योग से संबंधित है। कषाय, प्रमाद, अव्रत आदि से समय-समय पर अशुभ कर्म बंधता है, इस दृष्टि से शुभ-अशुभ दोनों कर्म साथ में बंध सकते हैं।

145. बंध के दो प्रकार कौनसे हैं?

उ. ईर्यापथिक और साम्परायिक।

146. सूक्ष्म साम्परायिक बंध किसे कहते हैं?

उ. सूक्ष्म का अर्थ है अल्प। वह अल्प इसलिए कि आयुष्य और मोहनीय को छोड़कर शेष छह कर्म प्रकृतियों का बंध शिथिल, अल्प कालस्थिति वाला, मंद अनुभाव वाला तथा अल्प प्रदेशाग्र वाला होता है।

147. क्या वीतराग के कर्म का बंध होता है?

उ. वीतराग के कर्म का बंध होता भी है और नहीं भी। 11वें व 12वें तथा 13वें गुणस्थानों में योगों की चंचलता से दो समय की स्थिति का सातवेदनीय का बंध होता है इसे ईर्यापथिक बंध कहते हैं। 14वें गुणस्थान में अयोग अवस्था आ जाती है। अतः कर्मबंध भी नहीं होता है। ईर्यापथ बंध केवल वीतराग के ही होता है।

148. वीतराग कौन होता है?

उ. जिसके राग-द्वेष (मोहकर्म) सर्वथा उपशम या क्षय हो जाते हैं वह वीतराग होता है। अन्तिम चार गुणस्थान वीतराग के हैं। अकषायी वीतराग का पर्यायवाची शब्द है। 11वें व 12वें गुणस्थान वाले छद्मस्थ वीतराग एवं 13वें, 14वें गुणस्थान वाले केवली वीतराग होते हैं।

149. क्या छद्मस्थ अकषायी होता है?

उ. छद्मस्थ सकषायी अकषायी दोनों होते हैं। जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता तब तक जीव छद्मस्थ कहलाता है। पहले से दसवें गुणस्थान वाले जीव सकषायी छद्मस्थ एवं ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान वाले अकषायी छद्मस्थ कहलाते हैं।

150. सात कर्मों का बंध नौवें गुणस्थान तक निरन्तर होता है, क्या इन सात कर्मों की सभी उत्तरप्रकृतियों का बंध भी निरन्तर होता है?

उ. सभी उत्तरप्रकृतियों का बंध एक साथ नहीं होता। शुभ प्रवृत्ति से अशुभ एवं अशुभ प्रवृत्ति से शुभ कर्म का बंध नहीं होता। जो विरोधी स्वभाव वाली प्रकृतियां हैं उनका भी एक साथ एक समय में बंध नहीं होता। गतिनाम कर्म की (आयुष्य कर्म की) किसी समय किसी एक प्रकृति का ही बंध हो सकता है। त्रस दशक के साथ स्थावर दशक का बंध नहीं होता।

151. कर्म वर्गणा का बंध होता है, वे एक कर्म से संबंधित होती हैं, या आठों कर्मों से?

उ. कर्म वर्गणा प्रति समय जीव के बंधती है, उनका क्रम इस प्रकार है— सामान्यतया आयुष्य कर्म को छोड़कर सात कर्मों से वे वर्गणाएं सम्बन्धित हो जाती हैं। जीवन में एक बार आयुष्य कर्म बंधता है, उस समय में बंधने वाली वर्गणाएं आठों कर्मों से सम्बन्धित हो जाती हैं।

152. बंधने वाली कर्म वर्गणाएं क्या आठों कर्मों में समान रूप में विभक्त होती हैं या न्यूनाधिक?

उ. जिस कर्म की स्थिति ज्यादा हो उसके हिस्से में कर्म पुद्गल ज्यादा आयेंगे किन्तु वेदनीय कर्म कम स्थिति के होंगे, फिर भी उसके हिस्से में कर्म प्रदेश ज्यादा आयेंगे। आयुष्य कर्म एक बार बंधता है, उस समय में भी सबसे थोड़े कर्म पुद्गल उसके साथ जुड़ते हैं। उससे विशेषाधिक नाम व गोत्र दोनों के परस्पर में बराबर बंधते हैं। इनसे विशेषाधिक ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय कर्म परस्पर में तुल्य बंधते हैं। इनसे विशेषाधिक मोहकर्म के साथ पुद्गल बंधते हैं। इनसे विशेषाधिक वेदनीय कर्म के हिस्से में आते हैं।

153. *कायस्पर्श से प्राणीवध होने पर क्या कर्म का एक जैसा बंध होता है?*

उ. कर्म का बंध व्यक्ति के कषाय की तीव्रता-मंदता की भावधारा के अनुरूप होता है। जैसे—

(1) शैलेशी दशा प्राप्त मुनि के कर्मबंध नहीं होता।

(2) मन, वचन एवं काया की प्रवृत्ति वाले वीतराग के दो समय की स्थिति वाला सातवेदनीय कर्म का बंध होता है।

(3) अप्रमत्त मुनि के जघन्यत: अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टत: बारह मुहूर्त की स्थिति का कर्म बंध होता है।

(4) विधिपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले प्रमत्त मुनि के जघन्यत: अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टत: आठ वर्ष की स्थिति वाला कर्मबंध होता है। वे वर्तमान में वेदन कर क्षीण कर देते हैं।

(आयारो अध्ययन 5 उद्देशक 4)

154. *क्या कर्म के अशुभ फल को रोका जा सकता है?*

उ. जप, ध्यान आदि के द्वारा अशुभ फल को रोका जा सकता है। जपादि से कर्मों की निर्जरा होती है। जब कर्मों का निर्जरण हो जाता है तब फल देने की बात स्वत: समाप्त हो जाती है। जप आदि के समय तीव्र शुभ अध्यवसायों से भी उस समय बंधने वाली शुभ प्रकृतियों के साथ पहले बंधी हुई अशुभ प्रकृतियां शुभ में संक्रमित हो जाती हैं। ऐसा होने से अशुभ का फल जीव को नहीं मिलता।

155. *शुभ कर्म को कैसे तोड़ा जा सकता है?*

उ. शुभ कर्म को तोड़ने का वैसे कोई प्रशस्त साधन नहीं है। केवली समुद्घात के समय ही शुभ कर्म तोड़े जाते हैं। यदि पुण्य भोगने में आसक्ति नहीं रहती, तो पुण्य भोगने में पाप का बंध नहीं होता। अशुभ प्रवृत्ति से पुण्य का क्षय तीव्रता से होता है, पर उसी के साथ पाप का बंध भी उतनी ही तीव्रता से होता है, अत: आत्मा हलकी नहीं हो पाती।

156. *कर्मों के सादि, अनादि, सांत आदि कितने विकल्प बनते हैं?*

उ. कर्मों के सादि, आदि की दृष्टि से चार विकल्प बनते हैं—

* पहला विकल्प—'अनादि अनन्त'! अभव्य जीव, जो कभी मुक्त नहीं होंगे.उनके साथ कर्मों का अनादि-अनन्त संबंध है।
* दूसरा विकल्प—सादि सान्त! एक जीव ने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया। दर्शन मोह का उपशम कर उपशम श्रेणी ली। ग्यारहवें गुणस्थान में एक

कर्म का बंध किया। वह वापस नीचे के गुणस्थानों में आकर पुनः दूसरे कर्मों को बांधता है यह आगे मोक्ष जायेगा। तब सभी कर्मों का अन्त करेगा अतः यह सादि-सान्त है।

* तीसरा विकल्प—अनादि सान्त! जो भव्य जीव अनादिकाल से तो कर्मों से बंधे हैं, पर आगे मोक्ष जाने वाले हैं उनकी अपेक्षा अनादि सांत है।
* चौथा विकल्प—सादि अनन्त! यह विकल्प नहीं बनता है। किसी जीव ने एक बार दर्शन मोह को उपशान्त कर दिया वह निश्चित रूप से मोक्ष जायेगा ही। अतः सादि अनन्त का विकल्प नहीं बनता।

157. *कार्मण शरीर का संबंध आत्मा के साथ अनादिकाल से है। अनादिकाल से सम्बन्धित इस शरीर का अलगाव कैसे होगा?*

उ. कार्मण शरीर कर्म वर्गणा के संघात को कहते हैं। कर्म वर्गणा का संबंध अवधिपूर्वक होता है। अवधि समाप्त होते ही वे कर्म वर्गणा आत्मा से पृथक् हो जाती है। स्थिति परिपाक के साथ कर्म वर्गणा छूटती रहती है तथा नई कर्म वर्गणा का बंधन चालू रहता है। प्रवाह रूप में कर्म वर्गणा आत्मा के साथ निरन्तर चलती रहती है। यह प्रवाह जब पूर्णतया रुक जाता है, तब नई कर्म वर्गणा के आगमन का द्वार बंद हो जाता है और पुरानी कर्म वर्गणा आत्मा से अलग हो जाती है।

158. *कार्मण शरीर और कर्म एक ही है या दो?*

उ. स्थूल रूप में कार्मण शरीर और कर्म एक ही हैं। इस शरीर का उपादान कर्म ही है। सूक्ष्मता में कर्म वर्गणा के संघात को कार्मण शरीर कहते हैं। संघात में कुछ और पुद्गल स्कंधों की अपेक्षा रहती है। इसमें वर्गणाओं का वर्गणा के साथ एकीभाव जरूरी होता है। अलग-अलग स्थिति, अनुभाग आदि से प्रत्येक कर्मवर्गणा भिन्न-भिन्न है। यहीं दोनों में अन्तर है।

159. *कर्म और शरीर का संबंध सादि है या अनादि?*

उ. प्रवाह रूप से अनादिकालीन कर्म और शरीर में परस्पर हेतु-हेतुमद्भाव है। कर्म से शरीर और शरीर से कर्म उत्पन्न होते हैं। जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से बीज पैदा होता है।

160. *कार्मण शरीर और बंध एक है या दो?*

उ. एक है। कार्मण शरीर स्वयं ही बंध है और बंध ही कार्मण शरीर है। पुण्य-पाप कार्मण शरीर की ही प्रक्रिया है।

161. नो कर्म किसे कहते हैं?

उ. कर्मरूप में भोगने के बाद आत्मा से छूटे हुए कर्म पुद्गल-द्रव्य नो कर्म कहलाते हैं।

162. 'कर्म' वर्ण, गंध, रस और स्पर्शवान क्यों हैं?

उ. इसलिए कि कर्म पुद्गल है। पुद्गल की परिभाषा ही वर्ण, गंध, रस और स्पर्शवान है।

163. ज्ञानावरणीय आदि कर्म में स्कन्ध देश, प्रदेश और परमाणु में से कितने?

उ. तीन-स्कन्ध, देश, प्रदेश। (परमाणु अति सूक्ष्म होने से ग्रहण होता ही नहीं है।)

164. ज्ञानावरणीय आदि कर्म कंठ से नीचे या ऊपर अथवा पूरे शरीर के किस भाग में है?

उ. सर्व प्रदेश की अपेक्षा से दोनों हैं। पूरे शरीर में व्याप्त है।

165. ज्ञानावरणीय आदि कर्म किस क्षेत्र के पुद्गल लेते हैं?

उ. जो जीव जिस क्षेत्र में होते हैं उस क्षेत्र के ही पुद्गल लेते हैं। (आत्म-प्रदेश से स्पर्श किये हुए कर्म वर्गणाओं को ही ग्रहण करते हैं।)

166. ज्ञानावरणीय आदि कर्म निरन्तर बंधते हैं या अन्तर रहित?

उ. सात कर्म निरन्तर बंधते हैं। आयुष्य कर्म जीवन में एक बार बंधता है।

167. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एवं अन्तराय ये तीन कर्म भाषक के बंधते हैं या अभाषक के?

उ. समुच्चय रूप से भाषक-अभाषक दोनों के ही बंधते हैं। भाषक में सरागी एवं अभाषक में एकेन्द्रिय जीवों तथा विग्रह गति में इनका बंध होता है। केवली समुद्घात एवं अयोगी अवस्था में जीव अभाषक होता है पर ये कर्म उसके नहीं बंधते हैं। वीतरागी इन दो अवस्थाओं को छोड़कर भाषक होता है पर ये तीनों कर्म वीतरागी के उस अवस्था में भी नहीं बंधते हैं। मोह कर्म का बंध नौवें गुणस्थान से आगे नहीं होता। अत: दसवें गुणस्थान वाले सरागी के भी मोह का बंध नहीं होता है। आगे तो बंधता ही नहीं है।

168. चरम और अचरम जीवों के कर्मबंध किस रूप में होते हैं?

उ. चरम-अचरम दोनों के समुच्चय रूप से आठों कर्मों का बंध होता है। यदि भेद करें तो अचरम जीवों सिद्धों के कर्मों का बंध नहीं होता है। अभव्य भी अचरम होते हैं। उनके आठों कर्मों का बंध होता है। चरम के दो भेद

हैं—सयोगी तथा अयोगी। अयोगी के किसी भी कर्म का बंध नहीं होता। सयोगी चरम के वीतराग अवस्था में एक सातवेदनीय का बंध होता है तथा सरागी अवस्था में चरम के आठ, सात, छः कर्म का बंध होता है। जो कभी संसार का अन्त करेंगे वे चरम कहलाते हैं। जो अन्तिम चरम शरीरी है उनके सात ही कर्म का बंध हो सकता है। आयु का बंध उस भव में उनके नहीं होता है।

169. *क्या चरम शरीरी (भावी सिद्ध) के नरक गति आदि कर्म प्रकृतियां सत्ता में रहती हैं?*

उ. हां, वर्तमान शरीर में, भव में सिद्धगति को प्राप्त करने वाले मुनियों के भी नरक गति आदि कर्म प्रकृतियां सत्ता में रहती हैं। उनका अनुभव किये बिना वे कभी क्षीण नहीं होतीं। तद्भवसिद्धिक जीव नरक आदि जन्मों के विपाकोदय के रूप में उनका अनुभव नहीं करता किन्तु प्रदेशोदय में उनका अनुभव कर तपस्या से उनको क्षीण कर देता है।

170. *साधु के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट कर्म कितने?*

उ. जघन्य-चार, मध्यम-सात, उत्कृष्ट आठों ही कर्म होते हैं।

171. *द्रव्य तीर्थंकर के कर्म कितने तथा भाव तीर्थंकर के कर्म कितने?*

उ. द्रव्य तीर्थंकर के कर्म आठ या सात होते हैं। भाव तीर्थंकर के कर्म चार अघाति ही हैं।

172. *कर्मों की अवगाहना जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट कितनी है?*

उ. चार घाति कर्म जिस जीव में पाते हैं, उसके अनुरूप उनकी अवगाहना है। चार अघाति कर्म जिस जीव में पाते हैं—जघन्य तो उस जीव के अनुरूप अवगाहना और उत्कृष्ट लोक प्रमाण केवली समुद्घात की अपेक्षा से।

173. *एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय के जीवों में कितने कर्म होते हैं?*

उ. आठ। (मनुष्य के आठ, सात, चार कर्म भी होते हैं)

174. *सिद्धों के कितने कर्म होते हैं?*

उ. एक भी नहीं।

175. *वीतराग के कितने कर्म होते हैं?*

उ. 11वें गुणस्थान की अपेक्षा—8 कर्म। 12वें गुणस्थान की अपेक्षा—7 कर्म (मोहनीय कर्म को छोड़कर), 13वें, 14वें गुणस्थान की अपेक्षा—4 कर्म। सिद्धों के कर्म नहीं होता।

176. *क्या एक, दो, तीन, पांच, छः कर्म किसी के होते हैं?*

उ. किसी के नहीं।

177. *सबसे कम कौनसे कर्म के जीव हैं?*

उ. मोहनीय कर्म के।

178. *सबसे अधिक कौनसे कर्म के जीव हैं?*

उ. चार अघाति कर्म के।

179. *श्रावक के एक साथ कितने कर्मों का बंध होता है?*

उ. श्रावक के एक साथ सात तथा आठ कर्मों का बंध हो सकता है। जब आयुष्य का बंध होता है तो आठ कर्मों का अन्यथा सात कर्म का निरन्तर बंध होता रहता है।

180. *बंध सप्रदेशी है या अप्रदेशी?*

उ. सप्रदेशी।

181. *ज्ञानावरणीय कर्म को पहला स्थान क्यों दिया गया है?*

उ. ज्ञान के द्वारा कर्म विषय शास्त्र या अन्य शास्त्र का बोध किया जा सकता है। जब कोई लब्धि प्राप्त होती है तो जीव ज्ञानोपयोगयुक्त ही होता है। मोक्ष की प्राप्ति भी ज्ञानोपयोग के समय में ही होती है अतः ज्ञान के आवरणभूत कर्म को पहला स्थान दिया गया है।

182. *दर्शनावरणीय कर्म को दूसरा स्थान क्यों दिया गया है?*

उ. दर्शन की प्रवृत्ति मुक्त जीवों को ज्ञान के अनन्तर होती है। अतः उसे दूसरा स्थान दिया गया है।

183. *वेदनीय कर्म का स्थान दर्शनावरणीय कर्म के बाद क्यों रखा गया?*

उ. दर्शन से सामान्य का बोध होता है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय के उदय से जीव अंधा, गूंगा, बहरा और बुद्धिहीन होता है, इसके कारण वह दुःखी होता है। इन दोनों कर्मों के विशिष्ट क्षयोपशम से सुख की अनुभूति होती है। यह सुख-दुःख का अनुभव वेदनीय कर्म के उदय से होता है, अतः वेदनीय कर्म का तीसरा स्थान है।

184. *वेदनीय कर्म के बाद मोह कर्म का स्थान क्यों?*

उ. वेदनीय कर्म के अनन्तर मोहनीय कर्म को रखने का हेतु यह है कि सुख दुःख का वेदन करते समय अवश्य राग-द्वेष का उदय होता है जिसका संबंध मोह कर्म के साथ है।

185. *मोह कर्म के बाद आयुष्य कर्म को रखने का हेतु क्या है?*

उ. मोह व्याकुल जीव आरम्भ आदि करके आयु का बंध करता ही है। मोह कर्म जिनका क्षय हो गया उनके आयु का बंध होता ही नहीं है। मोह कर्म की तीव्रता, मंदता के आधार पर भावों में निर्मलता, निकृष्टता आती है। आयु का बंध भी भावों की हीनता, उत्कृष्टता के आधार पर होता है।

186. *आयुष्य कर्म के बाद नाम कर्म क्यों?*

उ. जिसके आयु का उदय होगा उसे गति, स्थिति आदि नाम कर्म की प्रकृतियों को भोगना ही पड़ता है अत: आयुष्य के बाद नाम कर्म को रखा गया है।

187. *गोत्र कर्म का स्थान नाम कर्म के बाद क्यों?*

उ. गति आदि नाम कर्म के उदय वाले जीव को उच्च व नीच गोत्र के विपाक को भोगना पड़ता है इसलिए नाम कर्म के बाद गोत्र कर्म को रखा गया है।

188. *अन्तराय कर्म का स्थान गोत्र कर्म के बाद क्यों?*

उ. उच्च गोत्र कर्म वाले जीवों के दानान्तराय, लाभान्तराय आदि का ज्यादा क्षयोपशम होता है तथा नीच गोत्र वाले जीवों के दानान्तराय आदि का उदय अधिक रहता है। इसी आशय को बताने के लिए गोत्र के बाद अन्तराय कर्म को स्थान दिया गया है। वैसे अन्तराय कर्म का क्षयोपशम सभी कर्मों के लिए जुड़ा हुआ है। अन्तराय कर्म घाती होते हुए भी देशघाती है सर्वघाती नहीं।

189. *मोक्ष प्राप्ति के कितने चरण हैं?*

उ. मोक्ष प्राप्ति के दो चरण हैं—

(1) नये कर्मों का संचय न होने देना। (2) पुराने कर्मों को पूरा करना। अर्थात् संवर प्रथम चरण है और निर्जरा दूसरा चरण।

190. *कर्मों के संयोग या वियोग से होने वाली जीव की अवस्था विशेष का नाम क्या है?*

उ. भाव।

191. *भाव के कितने प्रकार हैं?*

उ. पांच—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक।

192. *कर्मों का उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम किसके आश्रित होता है?*

उ. कर्मों का उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के आश्रित होता है।

193. *औदयिक भाव किसे कहते हैं?*

उ. कर्मों के उदय से होने वाली आत्मा की अवस्था को औदयिक भाव कहते हैं।

194. *आठ कर्मों में से कितने कर्मों का उदय होता है?*

उ. उदय आठों कर्म प्रकृतियों का होता है।

195. *उदय के कितने प्रकार हैं?*

उ. * जीव के उदय-निष्पन्न के तैंतीस प्रकार हैं—

चार गति, छह काय, छह लेश्या, चार कषाय, तीन वेद, मिथ्यात्व, अविरति, अमनस्कता, अज्ञानित्व, आहारता, संयोगिता, संसारता, असिद्धता, अकेवलित्व, छद्मस्थता।

* अजीवोदय निष्पन्न के तीस प्रकार हैं—

पांच शरीर, पांच शरीर के प्रयोग में परिणत पुद्गल द्रव्य, पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श। ये वैसे जीवाश्रित होते हैं।

196. *उदय के तैंतीस बोलों में सावद्य कितने? निरवद्य कितने?*

उ. * सावद्य—4 कषाय, तीन वेद, 3 अशुभ लेश्या, मिथ्यात्व, अव्रत—ये 12 बोल सावद्य हैं।

* 3 शुभ लेश्या-निरवद्य हैं।

* आहारता, संयोगिता—ये 2 बोल सावद्य-निरवद्य दोनों हैं।

* 4 गति, 6 काय, अमनस्कता, अज्ञानता, संसारता, असिद्धता, अकेवलित्व, छद्मस्थता—ये सोलह बोल सावद्य-निरवद्य दोनों हैं।

197. *उदय के तैंतीस बोल किस-किस कर्म के उदय से हैं?*

उ. * 4 गति, 6 काय, 3 शुभ लेश्या—ये 13 बोल नाम कर्म के उदय से हैं।

* 4 कषाय, 3 वेद, 3 अशुभ लेश्या, मिथ्यात्व, अव्रत—ये बारह बोल मोहनीय कर्म के उदय से।

* अमनस्कता, अज्ञानता—ये दो बोल ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से हैं।

* आहारता, संयोगिता—ये दो बोल नामकर्म और मोहनीय कर्म के उदय से।

* अकेवलित्व, छद्मस्थता—ये दो बोल ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय—इन तीन कर्मों के उदय से।

* संसारता, असिद्धता—ये दो बोल वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुष्य इन 4 कर्मों के उदय से।

198. *आठ कर्मों का उदय छह द्रव्य में कौन? नौ तत्त्व में कौन?*

उ. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय—इन चार कर्मों का उदय-छह में-पुद्गल। नौ में 3—अजीव, पाप, बंध।

* वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुष्य इन चार कर्मों का उदय छह में पुद्गल। नौ में चार—अजीव, पुण्य, पाप और बंध।

199. *आठ कर्मों का उदय निष्पन्न छह द्रव्य में कौन? नौ तत्त्व में कौन?*

उ. * ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, आयुष्य, गोत्र और अन्तराय—इन छः कर्मों का उदय निष्पन्न छह में—जीव। नौ में—जीव।

* मोहनीय, नाम—इन दो कर्मों का उदय निष्पन्न छह में—जीव। नौ में–2 जीव, आश्रव।

200. *आठ कर्मों का उदय निष्पन्न किस-किस गुणस्थान तक?*

उ. * ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय—इन तीन कर्मों का उदय निष्पन्न—पहले से बारहवें गुणस्थान तक।

* मोहनीय कर्म के दो भेद—दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय का उदय निष्पन्न—पहले से सातवें गुणस्थान तक। चारित्र मोहनीय का उदय निष्पन्न—पहले से दसवें गुणस्थान तक।

* वेदनीय, नाम, गोत्र, आयुष्य—इन चार कर्मों का उदय निष्पन्न-पहले से चौदहवें गुणस्थान तक।

201. *औपशमिक भाव किसे कहते हैं?*

उ. मोहकर्म के उपशम से होने वाली आत्मा की अवस्था को औपशमिक भाव कहते हैं।

202. *उपशम कितने कर्मों का होता है?*

उ. एक—मोहनीय कर्म का।

203. *उपशम के कितने भेद हैं?*

उ. उपशम के ग्यारह प्रकार हैं—

(1) उपशांत क्रोध, (2) उपशांत मान, (3) उपशांत माया, (4) उपशांत लोभ, (5) उपशांत राग, (6) उपशांत द्वेष, (7) उपशांत दर्शनमोह, (8) उपशांत चारित्रमोह, (9) औपशमिक सम्यक्त्व, (10) औपशमिक चारित्र, (11) उपशांत कषाय—छद्मस्थ वीतराग।

औपशमिक के संक्षिप्त दो प्रकार भी मिलते हैं—

(1) औपशमिक सम्यक्त्व, (2) औपशमिक चारित्र।

204. मोहनीय कर्म का उपशम छह द्रव्य में कौन? नौ तत्त्व में कौन?

उ. मोहनीय कर्म का उपशम छह में पुद्गल। नौ में तीन—अजीव, पाप, बंध। सात कर्मों का उपशम होता नहीं है।

205. मोहनीय कर्म का उपशम निष्पन्न छह द्रव्य में कौन? नौ तत्त्व में कौन?

उ. मोहनीय कर्म का उपशम निष्पन्न छह में जीव। नौ में तीन—जीव, संवर निर्जरा। शेष सात कर्मों का उपशम निष्पन्न नहीं होता।

206. मोहनीय कर्म का उपशम निष्पन्न किस-किस गुणस्थान तक?

उ. मोहनीय कर्म के दो भेद हैं—दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय।
दर्शन मोहनीय का उपशम निष्पन्न—चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक।
चारित्र मोहनीय का उपशम निष्पन्न—एक ग्यारहवें गुणस्थान में।

207. क्षायोपशमिक भाव किसे कहते हैं?

उ. चार घाति कर्मों के हलकेपन से होने वाली आत्मा की अवस्था को क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। अर्थात् उदयावलिका में प्रविष्ट घाति कर्मों का क्षय और उदय में न आये हुए घाति कर्म का उपशम अर्थात् विपाक रूप से उदय नहीं होता है उसे क्षयोपशम कहते हैं।

208. क्षायोपशम कितने कर्मों का होता है?

उ. चार घातिकर्मों का।

209. क्षायोपशम के कितने भेद हैं?

उ. क्षयोपशम के 32 प्रकार हैं—

(1) ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से आठ—प्रथम चार ज्ञान, तीन अज्ञान, और भणन-गुणन।

(2) दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से आठ—पांच इन्द्रियां, चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन और अवधि दर्शन।

(3) मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से आठ—प्रथम चार—चारित्र, देश विरति और तीन दृष्टियां।

(4) अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से आठ—(1) दान लब्धि, (2) लाभ लब्धि, (3) भोग लब्धि, (4) उपभोग लब्धि, (5) वीर्य लब्धि, (6) बाल वीर्य, (7) पण्डित वीर्य, (8) बाल-पंडित वीर्य।

210. क्षयोपशम छह द्रव्य में कौन? नौ तत्त्वों में कौन?

उ. क्षयोपशम छह में पुद्गल। नौ में 3—अजीव, पाप, बंध।

211. चार घाति कर्मों का क्षयोपशम निष्पन्न—छह द्रव्य में कौन? नौ तत्त्व में कौन?

उ. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन तीन कर्मों का क्षयोपशम निष्पन्न–छह में जीव। नौ में दो—जीव, निर्जरा।

मोहनीय कर्म का क्षयोपशम निष्पन्न छह में जीव। नौ में 3—जीव, संवर, निर्जरा।

212. चार घाति कर्मों का क्षयोपशम निष्पन्न किस-किस गुणस्थान तक?

उ. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय इन तीन कर्मों का क्षयोपशम निष्पन्न—पहले से बारहवें गुणस्थान तक। मोहनीय कर्म के दो भेद-दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय का क्षयोपशम निष्पन्न—पहले से सातवें गुणस्थान तक और चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम निष्पन्न—पहले से दसवें गुणस्थान तक।

213. उपशम और क्षयोपशम में क्या अन्तर है?

उ. उपशम और क्षयोपशम में दो अन्तर हैं—

(1) उपशम में उदय प्राप्त कषाय क्षीण हो जाता है तथा शेष कषाय का उदय रहता है। क्षयोपशम में क्षय और उपशम होने पर भी सूक्ष्म उदय यानी प्रदेशोदय चालू रहता है।

(2) उपशम में विद्यमान कर्म का वेदन नहीं होता। क्षयोपशम में विद्यमान कर्म का प्रदेशोदय में वेदन होता है, विपाकोदय में वेदन नहीं होता है।

(3) क्षयोपशम में प्रदेशोदय रहता है। जबकि उपशम में प्रदेशोदय नहीं रहता है।

214. क्षय किसे कहते हैं?

उ. कर्मों का समूल रूप से नाश हो जाना क्षय है। क्षय से होने वाली आत्मा की अवस्था को क्षायिक भाव कहते हैं।

215. क्षायिक भाव के कितने प्रकार हैं?

उ. क्षायिक भाव के आठ प्रकार हैं—

ज्ञानावरणीय	–	केवलज्ञान
दर्शनावरणीय	–	केवलदर्शन
वेदनीय	–	आत्मिक सुख
मोहनीय	–	क्षायिक सम्यक्त्व
आयुष्य	–	अटल अवगाहन

नाम	–	अमूर्तिकपन
गोत्र	–	अगुरुलघुपन
अन्तराय	–	क्षायिक लब्धि।

216. आठ कर्मों का क्षायिक छह द्रव्य में कौन? नौ तत्त्व में कौन?

उ. क्षायिक–छह में–पुद्गल। नौ में 4—अजीव, पुण्य, पाप, बंध।

217. आठों कर्मों का क्षायिक निष्पन्न छह द्रव्य में कौन? नौ तत्त्व में कौन?

उ. * ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय—इन तीन कर्मों क्षायिक निष्पन्न-छह में जीव। नौ में 2—जीव, निर्जरा।

* मोहनीय कर्म का क्षायिक निष्पन्न—छह में जीव। नौ में 3—जीव, संवर, निर्जरा।

* वेदनीय, नाम, गोत्र, आयुष्य—इन चार कर्मों का क्षायिक निष्पन्न-छह में जीव। नौ में—2 जीव, मोक्ष।

218. आठ कर्मों का क्षायिक निष्पन्न किस-किस गुणस्थान तक?

उ. * ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय—इन तीन कर्मों का क्षायिक निष्पन्न—तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में।

* दर्शन मोहनीय का क्षायिक निष्पन्न-चौथे से चौदहवें गुणस्थान तक।

* चारित्र मोहनीय का क्षायिक निष्पन्न–बारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक।

* वेदनीय, नाम, गोत्र, आयुष्य—इन चार कर्मों का क्षायिक निष्पन्न—गुणस्थानों में नहीं, सिद्धों में पाता है।

219. पारिणामिक भाव किसे कहते हैं?

उ. कर्मों के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के द्वारा जीव की जिन-जिन अवस्थाओं में परिणति होती है, वह पारिणामिक भाव है।

220. पारिणामिक छह द्रव्य में कौन? नौ तत्त्व में कौन?

उ. पारिणामिक छह में छह। नौ में नौ।

221. पारिणामिक भाव के कितने प्रकार हैं?

उ. पारिणामिक भाव के दो प्रकार हैं—

(1) सादि सहित पारिणामिक—दिशादाह, विद्युत् आदि।

(2) अनादि पारिणामिक—षड् द्रव्य, लोक, अलोक, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि। पारिणामिक जीवाश्रित व अजीवाश्रित दोनों होता है।

222. *कर्म परिणमन से जीव में कितने प्रकार के पारिणामिक भाव उत्पन्न होते हैं?*

उ. कर्म परिणमन से जीव में दस प्रकार के पारिणामिक भाव उत्पन्न होते हैं। इन्हें जीवाश्रित पारिणामिक भाव कहते हैं। गति, इन्द्रिय, कषाय, लेश्या, योग, उपयोग, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वेद—ये जीवाश्रित पारिणामिक के भेद हैं।

223. *उपयोग कौनसे कर्म का क्षायक-क्षायोपशमिक भाव है?*

उ. ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म का।

224. *प्राण कौनसे कर्म का क्षय-क्षयोपशम भाव है?*

उ. अन्तराय कर्म का।

225. *इन्द्रियां किस कर्म के उदय से मिलती हैं?*

उ. इन्द्रियों की प्राप्ति में शरीर नाम कर्म का उदय और दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम का युगपत् योग रहता है।

226. *कर्म-मुक्ति की साधना में कौनसी गति को श्रेष्ठ माना गया है?*

उ. मनुष्य गति को।

227. *कर्मक्षय करने के साधन कौनसे हैं?*

उ. कर्मक्षय करने के तीन साधन हैं—

(1) सम्यक् दर्शन, (2) सम्यक् ज्ञान, (3) सम्यक् चारित्र।

228. *प्राणी स्वकृत सुख-दु:ख का भोग करता है अथवा परकृत?*

उ. प्राणी अपने द्वारा कृत सुख-दु:ख का भोग करता है, परकृत का नहीं। दु:ख और सुख आत्मकृत हैं परकृत नहीं, दूसरा तो मात्र निमित्त बन सकता है।

229. *मुक्त होते समय जीव की अवस्था ज्ञानमय रहती है या दर्शनमय?*

उ. ज्ञानमय।

230. *कर्म-किल्विष का क्या तात्पर्य है?*

उ. कर्मों से मलिन अथवा जिनके कर्म मलिन हों, वे कर्म किल्विष कहलाते हैं।

231. *परावर्तमान प्रकृति किसे कहते हैं, वे कितनी हैं?*

उ. जो प्रकृतियां दूसरी प्रकृतियों के बंध, उदय अथवा दोनों को रोक कर अपना बंध, उदय अथवा बंधोदय करती हैं वे परावर्तमान प्रकृतियां हैं। परावर्तमान प्रकृतियां 91 हैं। जो निम्न प्रकार हैं—

दर्शनावरणीय की—5 (पांचों निद्राएं), वेदनीय की दो (साता-असाता), मोहनीय की—23 (16 कषाय और भय, जुगुप्सा को छोड़कर सात, नौ कषाय), आयुकर्म की 4, नामकर्म की 55 (औदारिक, वैक्रिय, आहारक—तीन शरीर, इन तीन शरीरों के अंगोपांग, छह संस्थान, छः संहनन, पांच जाति, चार गति, शुभ-अशुभ विहायो गति, चार आनुपूर्वी आतप, उद्योत, त्रस दशक और स्थावर दशक) गोत्र कर्म की–2 ये 91 प्रकृतियां परावर्तमान हैं।

232. अपरावर्तमान प्रकृति किसे कहते हैं?

उ. किसी दूसरी प्रकृति के बंध, उदय अथवा बंधोदय दोनों को रोके बिना जिस प्रकृति के बंध, उदय या दोनों होते हैं, वे अपरावर्तमान हैं। उपरोक्त 91 प्रकृतियों के सिवाय शेष 29 प्रकृतियां अपरावर्तमान हैं।

ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय 4, मोहनीय की 3 (भय, जुगप्सा, मिथ्यात्व), नामकर्म की 12 (वर्ण चतुष्क, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात, पराघात, उच्छ्वास और तीर्थंकर नाम), अन्तराय की 5।

233. पुण्य कर्म की कितनी प्रकृतियां हैं?

उ. पुण्य कर्म की 46 प्रकृतियां हैं।

सातवेदनीय, सम्यक्त्व मोहनीय, हास्य, पुरुषवेद, रति मोहनीय, आयुष्य त्रिक् (तिर्यंच, मनुष्य, देव), देवगति, देवानुपूर्वी, मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, पांच शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण), तीन अंगोपांग (औदारिक, वैक्रिय, आहारक), वज्रऋषभनाराच संहनन, समचतुरस संस्थान, शुभ वर्ण, शुभ गंध, शुभ रस, शुभ स्पर्श, अगुरुलघु, पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश, निर्माण और तीर्थंकर नाम तथा उच्च गोत्र—ये 46 पुण्य कर्म की प्रकृतियां हैं।

234. पाप कर्म की कितनी प्रकृतियां हैं?

उ. पाप प्रकृतियां 82 हैं—

ज्ञानावरण-5, दर्शनावरण-9, वेदनीय-1 (असाता), मोहनीय-26 (चारित्र मोह-25, दर्शनमोह-1), आयुष्य-1 (नरक), नाम-34, गोत्र-1 (नीच), अन्तराय-5। ये 82 पाप प्रकृतियां हैं। दर्शन मोहनीय की तीन

प्रकृतियां मानी जाए तो चौरासी पाप प्रकृतियां होती हैं। दर्शन मोहनीय की मूल प्रकृति एक मिथ्यात्व ही है। सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय प्रकृति का स्वतंत्र बंध नहीं होता। ये दोनों प्रकृतियां मिथ्यात्व के पुद्गलों का शोधित रूप हैं।

235. *सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय को पाप प्रकृतियों में क्यों नहीं लिया गया?*

उ. ये दोनों प्रकृतियां जीव के सत्ता रूप में विद्यमान रहती हैं पर उनका स्वतंत्र बंध नहीं होता। ये मिथ्यात्व मोहनीय की क्षीणता से उत्पन्न होती हैं। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि ये दोनों मिथ्यात्व के पुद्गलों का शोधित रूप हैं इसलिए इन दोनों को पाप प्रकृतियों में नहीं गिना जाता।

236. *विपाक के कितने प्रकार हैं?*

उ. विपाक के दो प्रकार हैं—हेतु विपाक और रस विपाक।

* हेतु विपाकी प्रकृतियों के 4 भेद हैं—

(1) पुद्गल विपाकी, (2) क्षेत्र विपाकी, (3) भव विपाकी और (4) जीव विपाकी।

* रस विपाक के चार भेद हैं—

(1) एकस्थानक, (2) द्विस्थानक, (3) त्रिस्थानक, (4) चतुःस्थानक।

237. *पुद्गल विपाकी प्रकृति किसे कहते हैं और वे कितनी हैं?*

उ. जो प्रकृतियां शरीर रूप में परिणत हुए पुद्गल परमाणुओं में अपना फल देती हैं, वे पुद्गल विपाकी हैं। ऐसी पुद्गल विपाकी प्रकृतियां 36 हैं—

1. निर्माण, 2. स्थिर, 3. अस्थिर, 4. अगुरुलघु, 5. शुभ, 6. अशुभ, 7. तैजस, 8. कार्मण, 9. वर्ण, 10. गंध, 11. रस, 12. स्पर्श, 13-15. औदारिक आदि तीन शरीर, 16-18. तीन अंगोपांग, 19-24. छह संस्थान, 25-30. छह संहनन, 31. उपघात, 32. साधारण, 33. प्रत्येक, 34. उद्योत, 35. आतप और 36. पराघात।

238. *क्षेत्रविपाकी प्रकृति किसे कहते हैं और वे कितनी हैं?*

उ. आकाश प्रदेश रूप क्षेत्र में जो प्रकृति मुख्य रूप से अपना फल देती है, वह क्षेत्रविपाकी है। आनुपूर्वी नामकर्म क्षेत्रविपाकी है। नरकानुपूर्वी, मनुष्य-आनुपूर्वी, तिर्यञ्चानुपूर्वी और देवानुपूर्वी, ये चारों प्रकृतियां क्षेत्रविपाकी हैं। जब जीव परभव के लिए गमन करता है, तब विग्रहगति के अन्तराल

क्षेत्र में आनुपूर्वी अपना विपाक दिखाती है, उसे उत्पत्तिस्थान के अभिमुख करती है।

239. भवविपाकी प्रकृति किसे कहते हैं और ये कितनी हैं?

उ. परभव में उदय योग्य होने के कारण चार प्रकार की आयुकर्म प्रकृतियां भवविपाकी कही जाती हैं। नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु ये चार प्रकृतियां भवविपाकी हैं।

240. जीवविपाकी प्रकृति किसे कहते हैं और ये कितनी हैं?

उ. जो प्रकृतियां जीव में ही साक्षात् फल दिखाती हैं, वे जीव विपाकी हैं। 78 प्रकृतियां जीवविपाकी हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

ज्ञानावरण-5, दर्शनावरण-9, मोहनीय-28, नामकर्म की-27, तीर्थंकर नाम, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश:कीर्ति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयश:कीर्ति, उच्छ्वास नाम, एकेन्द्रियादि पांच जाति, नरकादि चार गति, शुभ-अशुभ विहायोगति, दो गोत्र और पांच अन्तराय।

241. ध्रुवबंधिनी प्रकृति किसे कहते हैं और वे कितनी हैं?

उ. अपने कारण के होने पर जिस कर्म प्रकृति का बंध अवश्य होता है, उसे ध्रुवबंधिनी प्रकृति कहते हैं। ऐसी प्रकृति अपने बंधविच्छेदपर्यन्त प्रत्येक जीव को प्रतिसमय बंधती है। एक सौ बीस कर्म प्रकृतियों में से 47 प्रकृतियां ध्रुवबंधिनी हैं, जो इस प्रकार हैं—

ज्ञानावरणीय-5, दर्शनावरणीय-9, मोहनीय-19 (मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी चतुष्क, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, प्रत्याख्यानावरण चतुष्क, संज्वलन चतुष्क, भय, जुगुप्सा), नामकर्म-9, (वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात), अन्तराय-पांच।

242. अध्रुवबंधिनी प्रकृति किसे कहते हैं और वे कितनी हैं?

उ. बंध के कारणों के होने पर भी जो प्रकृति बंधती भी है और नहीं भी बंधती है, उन्हें अध्रुवबंधिनी प्रकृति कहते हैं। ऐसी प्रकृति अपने बंधविच्छेदपर्यन्त बंधती भी है और नहीं भी बंधती है। ऐसी अध्रुवबंधिनी प्रकृतियां 73 हैं। बंधयोग्य 120 प्रकृतियों में उपरोक्त 47 प्रकृतियों को छोड़कर शेष 73 प्रकृतियां अध्रुवबंधिनी हैं।

243. ध्रुवोदया प्रकृति किसे कहते हैं और वे कितनी हैं?

उ. जिस प्रकृति का उदय अविच्छिन्न हो अर्थात् अपने उदयकाल पर्यन्त

प्रत्येक जीव को जिस प्रकृति का उदय बराबर बिना रुके होता रहता है, उसे ध्रुवोदया कहते हैं। उदययोग्य 122 प्रकृतियों में से निम्नलिखित 27 प्रकृतियां ध्रुवोदया प्रकृतियां हैं —

ज्ञानावरण-5, दर्शनावरण-4 (चक्षुदर्शन यावत् केवलदर्शन), मोहनीय-1 मिथ्यात्व, नामकर्म—निर्माण, स्थिर, अस्थिर, अगुरुलघु, शुभ, अशुभ, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श और अन्तराय-पांच।

244. अध्रुवोदया प्रकृति किसे कहते हैं और वे कितनी हैं?

उ. जिसका उदय अपने उदयकाल के अन्त तक बराबर नहीं रहता है, कभी उदय होता है, कभी नहीं, वे अध्रुवोदया प्रकृतियां हैं। उदययोग्य 122 प्रकृतियां में से ध्रुवोदया की 27 प्रकृतियों को छोड़कर शेष रही हुई 95 प्रकृतियां अध्रुवोदया हैं।

245. ध्रुवसत्ताक प्रकृति किसे कहते हैं और वे कितनी हैं?

उ. अनादि मिथ्यादृष्टि जीव की जो प्रकृति निरन्तर सत्ता में रहती है, उसे ध्रुवसत्ताक कहते हैं। सत्तायोग्य प्रकृतियां 158 होती हैं। इनमें नामकर्म की 103 प्रकृतियां गिनी गई हैं। सत्तायोग्य 158 प्रकृतियों में से सम्यक्त्व, मिश्र, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, वैक्रिय-संघातन, वैक्रिय-वैक्रियबंधन, वैक्रिय-तैजसबंधन, वैक्रिय-कार्मणबंधन, वैक्रिय-तैजस-कार्मण-बंधन, तीर्थंकर नामकर्म, चार आयु और आहारक सप्तक (आहारक शरीर, आहारक-अंगोपांग, आहारक-संघातन, आहारक-आहारक बंधन, आहारक-तैजसबंधन, आहारक-कार्मणबंधन, आहारक-तैजस-कार्मणबंधन) और उच्चगोत्र। इन अठाईस प्रकृतियों को छोड़ शेष 130 प्रकृतियां ध्रुवसत्ताक हैं।

246. अध्रुवसत्ताक प्रकृति किसे कहते हैं और वे कितनी हैं?

उ. मिथ्यात्व दशा में जिन प्रकृति सत्ता का नियम नहीं अर्थात् कभी हो और कभी न हो, ये अध्रुवसत्ताक प्रकृतियां हैं। उपरोक्त कही गई 28 प्रकृतियां अध्रुवसत्ताक हैं।

247. कर्म प्रकृतियों में सर्वघातिनी, देशघातिनी और अघातिनी प्रकृतियां कितनी-कितनी हैं?

उ. सर्वघातिनी—आत्मा के गुणों को पूरी तरह घात करने वाली प्रकृतियां सर्वघातिनी प्रकृतियां हैं। ये बीस हैं—

1. केवलज्ञानावरण	2. केवलदर्शनावरण
3. निद्रा	4. निद्रा-निद्रा
5. प्रचला	6. प्रचला-प्रचला
7. स्त्यानर्द्धि	8. अनन्तानुबंधी क्रोध
9. अनन्तानुबंधी मान	10. अनन्तानुबंधी माया
11. अनन्तानुबंधी लोभ	12. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध
13. अप्रत्याख्यानावरण मान	14. अप्रत्याख्यानावरण माया
15. अप्रत्याख्यानावरण लोभ	16. प्रत्याख्यानावरण क्रोध
17. प्रत्याख्यानावरण मान	18. प्रत्याख्यानावरण माया
19. प्रत्याख्यानावरण लोभ	20. मिथ्यात्व।

देशघातिनी प्रकृतियां—जो प्रकृतियां आत्मगुणों की घातक अवश्य हैं, लेकिन उनके अस्तित्व में भी न्यूनाधिक रूप में आत्मगुणों का प्रकाश होता रहता है। देशघातिनी प्रकृतियां 25 हैं—

1. ज्ञानावरणीय की 4–मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यवज्ञान।
2. दर्शनावरणीय की 3–चक्षु, अचक्षु और अवधि दर्शनावरण।
3. मोहनीय की 13–संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद।
4. अन्तराय की 5–दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य अन्तराय।

यहाँ सर्वघाति की 20 और देशघाति की 25 प्रकृतियां जो कुल मिलाकर 45 हैं, वे बंध की अपेक्षा से समझना चाहिए। जब उदय की अपेक्षा से विचार करते हैं तो सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय को मिलाने पर 47 प्रकृतियां होती हैं। सम्यक्त्व मोहनीय का देशघाति में और मिश्र मोहनीय का सर्वघाति प्रकृतियों में समावेश होता है। तब सर्वघाती 21 और देशघाती 26 प्रकृतियां होती हैं।

* अघाति प्रकृतियां–

बंधयोग्य 120 और उदययोग्य 122 प्रकृतियों में से क्रमश: उपर्युक्त 45 और 47 घाति प्रकृतियों को कम करने पर शेष 75 प्रकृतियां अघाति हैं।

वेदनीय की दो–साता वेदनीय, असाता वेदनीय।

आयुकर्म की चार–नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवायु।

नामकर्म की 67, पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु तीर्थंकर, निर्माण, उपघात, पांच शरीर, तीन अंगोपांग, छ: संस्थान, छ: संहनन,

पांच जाति, चार गति, विहायोगति दो, आनुपूर्वी-चतुष्क, त्रसदशक, स्थावर दशक, वर्णादि चार।

गोत्र कर्म की—2 उच्चगोत्र और नीच गोत्र।

248. *आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी हैं?*

उ.

उत्तर प्रकृतियां	**उत्कृष्ट स्थिति**
* स्त्रीवेद, सातवेदनीय, मनुष्यगति—मनुष्यगति आनुपूर्वी	पन्द्रह कोटि सागरोपम
* सोलह कषाय	चालीस कोटि सागरोपम
* नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा	बीस कोटाकोटि सागरोपम
* पुरुषवेद, हास्य, रति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी प्रथम संहनन, प्रथम संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय यशोकीर्ति, उच्च गोत्र, न्यग्रोध संस्थान, ऋषभनाराच संहनन	दस कोटाकोटि सागरोपम
* सादि संस्थान, नाराच संहनन	चौदह कोटाकोटि सागरोपम
* कुब्ज, अर्धनाराच संहनन	सोलह कोटाकोटि सागरोपम
* वामन संस्थान, कीलिका संहनन द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, सूक्ष्म, पर्याप्त साधारण	अठारह कोटाकोटि सागरोपम
* तिर्यञ्च	तीन पल्योपम
* शेष प्रकृतियों की स्थिति	मूल प्रकृतिवत्

249. *उत्तर प्रकृतियों की जघन्य स्थिति कितनी?*

उ.

उत्तर प्रकृतियां	**जघन्य स्थिति**
* निद्रा पंचक, असातवेदनीय	पल्योपम का असंख्ये भाग न्यून 3/7 सागरोपम
* सात वेदनीय	बारह मुहूर्त
* मिथ्यात्व	पल्योपम का असंख्येय भाग न्यून एक *सागरोपम*

उत्तर प्रकृतियां		जघन्य स्थिति
* अनन्तानुबंधी चतुष्क,	—	पल्योपम का असंख्येय भाग
* अप्रत्याख्यान चतुष्क,		कम 4/3 सागरोपम।
* प्रत्याख्यान चतुष्क		
* संज्वलन क्रोध		दो मास
* संज्वलन मान	—	एक मास
* संज्वलन माया	—	पंद्रह दिन
* संज्वलन लोभ	—	अन्तर्मुहूर्त
* पुरुषवेद	—	आठ वर्ष
* पुरुषवेद वर्जित नोकषाय से नीच गोत्र पर्यंत 66 प्रकृतियां	—	पल्योपम का असंख्येय भाग कम 2/7 सागरोपम।
* वैक्रिय षट्क	—	पल्योपम का असंख्येय भाग कम 2/1000 सागरोपम।
* आहारक शरीर, अहारक अंगोपांग, तीर्थंकर नाम	—	अन्तः कोटा-कोटि सागरोपम।

250. ज्ञान, दर्शन, चारित्र की विराधना किससे होती है?

उ. राग, द्वेष और मिथ्यादर्शन से।

251. साधु के बाईस परीषह किस-किस कर्म के उदय से हैं?

उ.				
	1.	प्रज्ञा	—	ज्ञानावरणीय
	2.	अज्ञान	—	ज्ञानावरणीय
	3.	अलाभ	—	अन्तराय
	4.	अरति	—	चारित्र मोहनीय
	5.	अचेल	—	चारित्र मोहनीय
	6.	स्त्री	—	चारित्र मोहनीय
	7.	निषद्या	—	चारित्र मोहनीय
	8.	याचना	—	चारित्र मोहनीय
	9.	आक्रोश	—	चारित्र मोहनीय
	10.	सत्कार पुरस्कार	—	चारित्र मोहनीय
	11.	दर्शन	—	दर्शन मोहनीय
	12.	क्षुधा	—	वेदनीय

13.	पिपासा	—	वेदनीय
14.	शीत	—	वेदनीय
15.	ऊष्ण	—	वेदनीय
16.	दंशमशक	—	वेदनीय
17.	चर्या	—	वेदनीय
18.	शय्या	—	वेदनीय
19.	वध	—	वेदनीय
20.	रोग	—	वेदनीय
21.	तृणस्पर्श	—	वेदनीय
22.	जल्ल	—	वेदनीय

252. केवली होने के पश्चात् कौनसे कर्म शेष रहते हैं?

उ. केवली होने के पश्चात् भवोपग्राही (जीवन धारण के हेतुभूत) कर्म शेष रहते हैं, तब तक वह इस संसार में रहते हैं। इसकी काल-मर्यादा जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः देशोन (नौ वर्ष कम) करोड़ पूर्व की है।

253. कर्मशास्त्र में करण किसे कहा गया है और वे कितने हैं?

उ. जो जीव अपने वीर्य विशेष के द्वारा कर्मों में विविध प्रकार की स्थितियों का निर्माण करता है उन्हें कर्मशास्त्र में करण कहा गया है। वे आठ हैं—

1. बंधनकरण
2. संक्रमणकरण
3. उद्वर्तनाकरण
4. अपवर्तनाकरण
5. उदीरणाकरण
6. उपशमनाकरण
7. निधतिकरण
8. निकाचनाकरण

254. बंधनकरण किसे कहते हैं?

उ. आत्म प्रदेशों के साथ कर्मों को क्षीर-नीर की तरह मिलाने वाला जीव का वीर्य विशेष बन्धनकरण है।

255. संक्रमणकरण किसे कहते हैं?

उ. जिस करण के द्वारा पूर्व में बंधे हुए कर्म की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश किसी सजातीय प्रकृति के रूप में रूपान्तरित हो जाते हैं उस करण को संक्रमण-करण कहते हैं।

256. उद्वर्तनाकरण किसे कहते हैं?

उ. कर्मों की पूर्वबद्ध स्थिति और अनुभाग में वृद्धि करने वाला जीव का वीर्य विशेष उद्वर्तनाकरण है।

257. अपवर्तनाकरण किसे कहते हैं?

उ. कर्मों की पूर्वबद्ध स्थिति और अनुभाग में कमी करने वाला जीव का वीर्य विशेष अपवर्तनाकरण है।

258. उदीरणाकरण किसे कहते हैं?

उ. जो कर्मदलिक उदय प्राप्त नहीं है, उन्हें विशेष प्रयत्न से उदयवलिका में प्रवेश कराने वाला जीव का वीर्य विशेष उदीरणा करण है।

259. उपशमनाकरण किसे कहते हैं?

उ. जिस वीर्य विशेष के द्वारा कर्मदलिक उदय, उदीरणा, निधत्ति और निकाचना के अयोग्य हो जाए, वह उपशमनाकरण कहते हैं। अर्थात् कर्मदलिकों के सत्ता में बने रहने पर भी उनके प्रभाव को रोक देना उपशमनाकरण है।

260. निधतिकरण किसे कहते हैं?

उ. जिस वीर्य विशेष से कर्म उद्वर्तना और अपवर्तना करण को छोड़कर शेष करणों के अयोग्य हो जाये, वह वीर्य विशेष निधति-करण है।

261. निकाचनाकरण किसे कहते हैं?

उ. जो कर्मदलिक सब प्रकार के करणों के अयोग्य हो और जिस रूप में, जिस स्थिति में, जिस रस में या जितने प्रदेशों के परिमाण के रूप में बंधा हो, उसी रूप में जो अवश्य ही भोगा जाता है, जिसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं रहती, जो भोगने से ही छूट सकता है, अन्यथा नहीं। अध्यवसायों के कारण कर्मों की ऐसी गाढ़ रूपता पैदा करना निकाचनाकरण है।

कर्म की दस अवस्थाएं

कर्म की दस अवस्थाएं

262 कर्म की कितनी अवस्थाएं हैं?

उ. मुख्यरूप से कर्म की दस अवस्थाएं हैं—
(1) बंध, (2) उद्वर्तन, (3) अपवर्तना, (4) सत्ता, (5) उदय, (6) उदीरणा, (7) संक्रमण, (8) उपशम, (9) निधत्ति और (10) निकाचना।

263. कर्म की अवस्थाओं में उदयकालीन व बंधकालीन अवस्थाएं कितनी-कितनी हैं?

उ. उदयकालीन अवस्थाएं—उदय, उदीरणा।
बंधकालीन अवस्थाएं—बंध, सत्ता, उपशम।
उदय व बंध दोनों—अवशिष्ट पांच।
उदीरणा वैसे उदय में लाने की प्रक्रिया है।

264. बंध किसे कहते हैं?

उ. आत्म-प्रदेशों के साथ कर्म पुद्गलों का चिपक जाना बंध है। जीव के असंख्य प्रदेश हैं। उनमें मिथ्यात्व, अव्रत आदि पांच आश्रवों के निमित्त से कम्पन पैदा होता है। इस कम्पन के फलस्वरूप जिस क्षेत्र में आत्मप्रदेश है, उस क्षेत्र में विद्यमान अनन्तानंत कर्मयोग्य पुद्गल जीव के एक-एक प्रदेश के साथ चिपक जाते हैं। इस प्रकार आत्मप्रदेशों के साथ पुद्गलों का इस प्रकार चिपक जाना, दूध-पानी की तरह एकमेक हो जाना ही बंध कहलाता है।

265. बंध के कितने प्रकार हैं?

उ. बंध के चार प्रकार हैं—

(1) प्रकृति बंध,	—	कर्मों का स्वभाव,
(2) स्थिति बंध,	—	कर्मों का कालमान,
(3) अनुभाग बंध और	—	कर्मों की फल देने की शक्ति,
(4) प्रदेश बंध।	—	कर्मों का दलसंचय।

266. प्रकृतिबंध किसे कहते हैं?

उ. कर्म पुद्गलों में अलग-अलग स्वभाव का उत्पन्न होना प्रकृतिबंध है। जैसे-मैथी का लड्डू वायु के विकार को, सोंठ का लड्डू कफ-विकार को, काली-

मिर्च आदि का लड्डू पित्त विकार को दूर करता है, उड़द का लड्डू पौष्टिकता देता है; इसी प्रकार कर्म पुद्गलों में अलग-अलग स्वभाव का पैदा होना जैसे ज्ञानावरणीय कर्म में ज्ञान को आवृत करने का, दर्शनावरणीय कर्म में दर्शन को आवृत्त करने का, वेदनीय में सुख-दुःख देने का, मोहनीय में सम्यक्त्व एवं चारित्र को रोकने का, आयु में नियत भव में रोक रखने का नाम में विविध आकृतियां रचने का, गोत्र में ऊंची-नीची अवस्थाएं बनाने का और अन्तराय में जीव की शक्ति को रोकने का स्वभाव पड़ जाना प्रकृतिबंध कहलाता है।

267. *स्थितिबंध किसे कहते हैं?*

उ. जैसे कोई मोदक दो-चार दिन तक टिकता है, कोई मोदक सप्ताह तक, कोई पक्ष तक और कोई चार मास तक टिक सकता है, इसी प्रकार कोई कर्म दस हजार वर्ष तक आत्मा के साथ रहता है तो कोई पल्योपम और कोई सागरोपम तक आत्मा के साथ रहता है। भिन्न-भिन्न काल मर्यादा तक आत्मा के साथ रहना स्थितिबंध है। जब जीव के भाव अधिक संक्लिष्ट होते हैं तो स्थितिबंध भी अधिक होता है और जब भाव कम संक्लिष्ट होते हैं तो स्थितिबंध भी कम होता है। इसीलिए जितनी भी प्रशस्त प्रकृतियां हैं प्रायः सभी की स्थिति अप्रशस्त प्रकृतियों की स्थिति से कम है क्योंकि उसका बंध प्रशस्त परिणाम वाले जीवों के ही होता है।

268. *अनुभागबंध किसे कहते हैं?*

उ. जैसे कोई मोदक मधुर रस वाला होता है, कोई कटुक रस वाला होता है, कोई चरपरा या कसैला होता है; इसी प्रकार कर्मदलिकों में शुभ या अशुभ, तीव्र या मंद रस का पैदा होना अनुभाग बंध कहलाता है। अशुभ कर्मों का रस नीम, करेला आदि के रस के समान कटुक और शुभ कर्मों का रस इक्षुरस की तरह मीठा होता है।

269. *तीव्र एवं मंद अनुभाग बंध कैसे होता है?*

उ. शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार की प्रकृतियों का तीव्र एवं मंद अनुभाग बंध होता है। संक्लेश परिमाणों से अशुभ प्रकृतियों का तीव्र अनुभाग बंध एवं विशुद्ध परिणामों से शुभ प्रकृतियों का तीव्र अनुभाग बंध होता है। विशुद्ध भावों से अशुभ प्रकृतियों का अनुभाग बंध एवं संक्लेश परिणामों से शुभ प्रकृतियों का मंद अनुभाग बंध होता है।

270. *कर्म प्रकृतियों का रस किस प्रकार का होता है?*

उ. शुभ प्रकृतियों का रस क्षीर और खांड जैसा तथा अशुभ प्रकृतियों का रस घोषातकी (चिरायता) और नीम जैसा होता है।

271. *कर्म के अनुभाग का प्रदेश परिमाण क्या है?*

उ. कर्मों के अनुभाग सिद्ध आत्माओं के अनन्तवें भाग जितने होते हैं। सब अनुभागों का प्रदेश-परिमाण-रस विभाग का परिमाण सब जीवों से अधिक होता है।

272. *प्रदेश बंध किसे कहते हैं?*

उ. पुद्गल के एक परमाणु को प्रदेश कहते हैं। जैसे कोई मोदक 50 ग्राम का होता है और कोई 100 ग्राम का, इसी तरह बंधने वाले कर्मदलिकों के परिमाण में न्यूनाधिकता का होना प्रदेश बंध है। अथवा ग्रहण किये जाने पर भिन्न-भिन्न स्वभाव में परिणत होने वाली कर्मपुद्गल राशि अमुक-अमुक परिमाण में बँट जाती है, यह परिमाण विभाग ही प्रदेश बंध है।

273. *प्रकृतिबंध एवं प्रदेशबंध में क्या अन्तर है?*

उ. कर्म पुद्गलों का जीव के साथ बंधते समय अलग-अलग स्वभाव में परिणत होना प्रकृतिबंध कहलाता है तथा किस कर्म के हिस्से में कितने परमाणु पुद्गल आयेंगे यह संख्या विभाग प्रदेशबंध कहलाता है।

274. *एक समय में गृहीत (ग्रहण किये हुए) कर्म प्रदेशों का परिमाण क्या है?*

उ. एक समय में गृहीत सब कर्मों का प्रदेशाग्र अनन्त है। वह अभव्य जीवों से अनन्त गुणा अधिक और सिद्ध आत्माओं के अनन्तवें भाग जितना होता है।

275. *प्रकृति आदि चारों बंध किसके आश्रित है?*

उ. प्रकृति बंध और प्रदेश बंध योग के आश्रित है। योग के तरतमभाव पर प्रकृति और प्रदेश बंध का तरतमभाव अवलम्बित है।

स्थिति बंध और अनुभाग बंध का आधार है कषाय। क्योंकि कषायों की तीव्रता या मंदता पर ही स्थिति और अनुभाग की न्यूनाधिकता अवलम्बित है। कषाय यदि मंद है तो कर्म की स्थिति और अनुभाग भी मंद होंगे और यदि कषाय तीव्र होंगे तो कर्म की स्थिति और अनुभाग भी तीव्र होगा।

276. *कर्म बंध के चार प्रकारों का क्रम क्या है?*

उ. बंध के चारों प्रकार एक साथ ही होते हैं। जीव कोई भी शुभाशुभ प्रवृत्ति करता है, तो उसके ये चारों बंध एक साथ शुरू होते हैं। इसको एक दृष्टान्त के द्वारा सम्यक् रूप से समझा जा सकता है। डॉक्टर रोगी के इंजेक्शन लगाता है, तो चारों कार्य एक साथ फलित होने प्रारम्भ हो जाते हैं। उन

फलितों के साथ इन चार बंध की तुलना की जा सकती है—

1. प्रकृति बंध—इंजेक्शन का स्वभाव गर्म है या ठंडा, कठोर है या सरल।
2. स्थिति बंध—इंजेक्शन का अमुक समय तक असर।
3. अनुभाग बंध—इंजेक्शन के कार्य करने की शक्ति।
4. प्रदेश बंध—इंजेक्शन का पूरे शरीर में खून में मिल जाना।

277. *कर्म बंध का मूल कारण क्या है?*

उ. कर्म बंध का मूल कारण है अध्यवसाय, भाव, परिणाम। आत्मा के शुभाशुभ भाव या अध्यवसाय की धाराएं चाहे तीव्र हों, मंद हों, मध्यम हों शुभाशुभ कर्मबंध इन्हीं अध्यवसायों पर निर्भर है और कर्म का क्षय आत्मा के शुद्ध अध्यवसाय पर आधारित है।

शुभ-अशुभ अध्यवसाय शुभाशुभ कर्म बंध का कारण कैसे बनता है तथा शुभ से शुद्ध अध्यवसाय में व्यक्ति कैसे पहुंच जाता है इसे भगवान महावीर द्वारा कथित प्रसन्नचंद्र राजर्षि के कथानक से समझा जा सकता है।

278. *क्या तिर्यंच के शुभ अध्यवसाय होते हैं?*

उ. हां, तिर्यंच के भी शुभ अध्यवसाय हो सकते हैं। केवल पंचेन्द्रिय तिर्यंच ही नहीं एकेन्द्रिय जीवों में भी शुभ अध्यवसाय होते हैं। अनेक वनस्पतिकाय के जीव मरकर मनुष्य गति प्राप्त करके मोक्ष में जाते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय आत्मा के भी निमित्त मिलने पर शुभ अध्यवसाय जाग्रत् होते जाते हैं। जिसका आगम प्रसिद्ध उदाहरण है—

(1) भगवान महावीर का अनन्य श्रावक नन्द मणियार का। (2) भगवान द्वारा प्रतिबोध मिलने से और पूर्वजन्म की स्मृति होने से क्रोध-मूर्ति चण्डकौशिक क्षमामूर्ति बन गया।

279. *कर्म बंध के दो प्रकार कौनसे हैं?*

उ. द्रव्य बंध और भाव बंध।

280. *द्रव्य बंध किसे कहते हैं?*

उ. कर्म पुद्गलों का आत्मप्रदेशों से सम्बन्ध होना द्रव्य बंध कहलाता है। द्रव्य बंध दो प्रकार का होता है—पुद्गल का पुद्गल के साथ और पुद्गल का आत्म प्रदेशों के साथ। जैसे घी और आटे का बंध पुद्गल का पुद्गल के साथ बंध है। कर्म और जीव का बंध पुद्गल का आत्म प्रदेशों के साथ है।

281. भाव बंध किसे कहते हैं?

उ. मोह आदि भावों से जो कर्म का बंध होता है, उसे भाव बंध कहते हैं। भावबंध भी दो प्रकार का है—भाव का भाव के साथ और भाव का द्रव्य के साथ। आत्मा के क्रोधादि भाव को देखकर भय आदि का होना भाव का भाव के साथ बंध है। दृश्यमान पदार्थों को देखकर उनके प्रति हर्ष-शोक आदि का होना भाव का द्रव्य के साथ बंध है।

282. जीव द्वारा ग्रहण किये जाने वाले कर्म पुद्गलों की संख्या कितनी होती है?

उ. जीव संख्यात, असंख्यात परमाणुओं से बने कर्म वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण नहीं करता है। वह अनन्त परमाणुओं वाले कर्म वर्गणा के स्कंधों को ही कर्म रूप में ग्रहण करता है।

283. कर्म कौन बांधता है?

उ. कर्ममुक्त आत्मा के कर्म का बंध नहीं होता है। पूर्व में कर्मबद्ध आत्मा ही नये कर्मों को बांधती है। जीव के साथ कर्म का प्रवाह रूप में अनादि संबंध चला आ रहा है।

284. कर्मबंध के हेतु क्या हैं?

उ. कर्म सम्बन्ध के अनुकूल आत्मा की परिणति (योग्यता) ही कर्म बंध का हेतु है। मोह कर्म के उदय से जीव राग-द्वेष में परिणत होता है तब अशुभ कर्म का बंध होता है। मोहकर्म रहित प्रवृत्ति करते समय शरीर नामकर्म के उदय से जीव शुभ प्रवृत्ति करता है तब शुभ कर्म का बंध करता है।

285. कर्म के कर्म लगता है या आत्मा के कर्म लगता है?

उ. कर्म के कर्म लगता है आत्मा के नहीं। क्योंकि संसारी आत्मा कर्म विमुक्त नहीं है, अत: हर कर्म वर्गणा से आत्मा प्रभावित होती है। इसलिए आत्मा के कर्म लगे, ऐसा व्यवहार में कहा जाता है।

286. क्या शुभ एवं अशुभ कर्म एक साथ बंधते हैं?

उ. कर्म बंध के दो हेतु हैं—योग एवं कषाय। योग (मन, वचन, काया का व्यापार) शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार का होता है। जिस समय योग शुभ होते हैं उस समय योग से शुभ प्रकृतियों का बंध होता है एवं साथ ही दसवें गुणस्थान तक कषाय का उदय रहने के कारण पाप प्रकृतियों का भी साथ में बंध होता है। अशुभ योग होता है तब योग एवं कषाय से एकान्त पाप कर्म का बंध होता है। पहले से छठे गुणस्थान तक योग (स्थूल योग) शुभ-अशुभ दोनों में से कोई एक हो सकता है। सातवें से आगे (स्थूल

योग) योग अशुभ नहीं होते हैं अत: उससे केवल (योग से) शुभ का ही बंध होता है पर दसवें गुणस्थान तक कषाय रहने से अशुभ का भी बंध होता है। 11वें, 12वें तथा 13वें गुणस्थानों में मोह का उदय एवं अस्तित्व न होने से पाप का बंध नहीं होता है। योग से केवल दो समय की स्थिति का सात वेदनीय कर्म का ही बंध होता है। 14वें गुणस्थान में योग न होने से कर्म बंध होता ही नहीं है।

287. बंध से क्या नये कर्मों का भी बंध होता है?

उ. बंध से कर्मों का बंध नहीं होता। वह तो केवल बंधनात्मक अवस्था मात्र है।

288. फिर बंध को बाधक क्यों माना गया?

उ. बंध से आत्मा विकृत तो नहीं होती, पर बंधन स्वयं बाधा है। जब तक बंध है, तब तक ही संसार है।

289. बंध से पूर्व कर्म वर्गणा ज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों में विभक्त होती है?

उ. नहीं। बंधते समय केवल कर्म वर्गणा आकर्षित होती है, फिर प्रकृति का निर्धारण होता है। जैसी प्रवृत्ति होती है वैसी प्रकृति निर्धारित हो जाती है।

290. क्या बंधी हुई कर्म वर्गणा का परोक्षज्ञानी ज्ञान या अनुभव कर सकते हैं?

उ. परोक्षज्ञानी बंध का ज्ञान या अनुभव नहीं कर सकते, क्योंकि वर्गणा चतु:स्पर्शी है।

291. क्या बंध आत्मा की स्वतंत्र क्रिया है?

उ. बंध के दो प्रकार भी हैं—अशुभ बंध और शुभ बंध। अशुभ बंध की स्वतंत्र क्रिया है। शुभ बंध की स्वतंत्र क्रिया नहीं है, वह तो निर्जरा की क्रिया का ही प्रासंगिक फल है।

292. कर्म बंध के हेतु कौन-कौन से हैं?

उ. प्रत्येक कर्म-बंध के कई हेतु हैं। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

ज्ञानावरणीय कर्म—ज्ञान और ज्ञानी के प्रति असद् व्यवहार।

दर्शनावरणीय कर्म—दर्शन और दर्शनी के प्रति असद् व्यवहार।

वेदनीय कर्म—दु:ख देने और न देने की प्रवृत्ति।

मोहनीय कर्म—कषाय और नोकषायजन्य प्रवृत्ति।

आयुष्य कर्म—

(1) नरकायुष्य-क्रूर व्यवहार। (2) तिर्यञ्चायुष्य-वंचनापूर्ण व्यवहार।

(3) मनुष्य आयुष्य-ऋजु व्यवहार। (4) देवायुष्य-संयत व्यवहार।

नामकर्म—कथनी-करनी में समानता और असमानता।

गोत्र कर्म—अहंकार करना और न करना।

अन्तराय कर्म—बाधा पहुंचाना।

293. *ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का बंध क्या स्त्री करती है? पुरुष करता है? नपुंसक करता है? नो स्त्री-नो पुरुष-नो नपुंसक करता है?*

उ. आयुष्य कर्म को छोड़कर ज्ञानावरणीय आदि सात कर्मों का बंध स्त्री भी करती है, पुरुष भी करता है, नपुंसक भी करता है; नो स्त्री-नो पुरुष-नो नपुंसक कर्म का बंध करता भी है और नहीं भी करता।

294. *आयुष्य कर्म का बंध क्या स्त्री करती है? पुरुष करता है? नपुंसक करता है? नो स्त्री-नो पुरुष-नो नपुंसक करता है?*

उ. आयुष्य कर्म का बंध-स्त्री, पुरुष और नपुंसक करता भी है और नहीं भी करता, अर्थात् भजना है। नो स्त्री-नो पुरुष-नो नपुंसक आयुष्य कर्म का बंध नहीं करता।

295. *ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का बंध क्या संयत करता है? असंयत करता है? संयतासंयत करता है? नो संयत-नो असंयत-नो संयतासंयत करता है?*

उ. आयुष्य कर्म को छोड़कर ज्ञानावरणीय आदि सात कर्मों का बंध संयत करता भी है और नहीं भी करता। असंयत और संयतासंयत बंध करता है। नो संयत-नो असंयत और नो संयतासंयत सिद्ध होता है। उसके कर्मबंध का कोई हेतु नहीं है इसलिए कर्मबंध नहीं करता।

संयत, असंयत और संयतासंयत के आयुष्य का बंध होता भी है और नहीं भी होता। सिद्ध के आयुष्य का बंध नहीं होता।

296. *ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का बंध सम्यक्दृष्टि करता है? मिथ्यादृष्टि करता है? सम्यक्-मिथ्यादृष्टि करता है?*

उ. सम्यक्दृष्टि के दो प्रकार हैं—सराग-सम्यग्दृष्टि और वीतराग सम्यक्दृष्टि। सराग सम्यक् दृष्टि के ज्ञानावरण आदि का बंध होता है, वीतराग सम्यग्दृष्टि के नहीं होता। मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि बंध करता है।

इसी प्रकार आयुष्य कर्म को छोड़कर सातों ही कर्मप्रकृतियों का बंध तीनों दृष्टि वालों के लिए जानना चाहिए। प्रथम दोनों सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि आयुष्य कर्म का बंध करते भी हैं और नहीं भी करते हैं अर्थात् भजना है। सम्यग्-मिथ्यादृष्टि बंध नहीं करता।

297. ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का बंध क्या संज्ञी (समनस्क) करता है? असंज्ञी (अमनस्क) करता है? नो संज्ञी-नो असंज्ञी (केवली और सिद्ध) करता है?

उ. वेदनीय और आयुष्य को छोड़कर शेष छह कर्मों का बंध संज्ञी करता भी है और नहीं भी करता। (वीतराग संज्ञी के ज्ञानावरणादि छः कर्मप्रकृतियों का बंध नहीं होता, सराग संज्ञी के होता है।) असंज्ञी बंध करता है।

नो संज्ञी-नो असंज्ञी केवली और सिद्ध होते हैं। उनके ज्ञानावरण आदि का बंध नहीं होता। संज्ञी और असंज्ञी वेदनीय कर्म का बंध करते हैं। केवली के वेदनीय का बंध होता है, सिद्ध के नहीं होता।

संज्ञी और असंज्ञी के आयुष्य कर्म के बंध की भजना है। नोसंज्ञी और नो-असंज्ञी बंध नहीं करता।

298. ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का बंध क्या भवसिद्धिक करता है? अभवसिद्धिक करता है? नो भवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक करता है?

उ. आयुष्य कर्म को छोड़कर सात कर्मों का बंध भवसिद्धिक करता भी और नहीं भी करता। (भवसिद्धिक के दो प्रकार हैं—वीतराग भवसिद्धिक और सराग भवसिद्धिक। वीतराग भवसिद्धिक ज्ञानवरण आदि का बंध नहीं करता, सराग भवसिद्धिक करता है। अभवसिद्धिक बंध करता है। नो-भवसिद्धिक नो-अभवसिद्धिक बंध नहीं करता।

भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक आयुष्य कर्म का बंध करते भी हैं और नहीं भी करते। नो-भवसिद्धिक नो-अभवसिद्धिक बंध नहीं करता।

299. ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का बंध क्या चक्षुदर्शनी करता है? अचक्षुदर्शनी करता है? अवधिदर्शनी करता है? केवल दर्शनी करता है?

उ. वेदनीय कर्म को छोड़कर ज्ञानावरणादि सात कर्मों का बंध चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी करता भी है और नहीं भी करता। केवल दर्शनी बंध नहीं करता। (वीतराग छद्मस्थ ज्ञानावरण का बंध नहीं करते, शेष करते हैं; इसलिए चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शनी में कर्म बंध की भजना है।)

प्रथम तीनों वेदनीय कर्म का बंध करते हैं। केवल दर्शनी बंध करता भी है और नहीं भी करता। (सयोगी केवलदर्शनी के वेदनीय का बंध होता है, अयोगी केवली और सिद्ध के नहीं होता, इसलिए भजना है।)

300. ज्ञानावरणीय आदि आठों कर्मों का बंध क्या पर्याप्तक करता है? अपर्याप्तक करता है? नो-पर्याप्तक नो-अपर्याप्तक करता है?

उ. आयुष्य कर्म को छोड़कर ज्ञानावरणादि सात कर्मों का बंध पर्याप्तक करता

भी है और नहीं भी करता। (वीतराग पर्याप्तक ज्ञानावरण कर्म का अबंधक है। सराग पर्याप्तक उसका बंध करता है।) अपर्याप्तक बंध करता है। नो पर्याप्तक-नो अपर्याप्तक बंध नहीं करता। पर्याप्तक और अपर्याप्तक में आयुष्य कर्मबंध की भजना है। नो पर्याप्तक-नो अपर्याप्तक बंध नहीं करता।

301. *ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का बंध क्या भाषक (भाषा पर्याप्ति सम्पन्न) करता है? अभाषक करता है?*

उ. वेदनीय को छोड़कर सात कर्मों का बंध दोनों करते भी हैं, और नहीं भी करते। (वीतराग भाषक ज्ञानावरण का बंध नहीं करता, सराग करता है। द्वितीय विकल्प के स्वामी चार हैं—अयोगी केवली, सिद्ध, एकेन्द्रिय और विग्रहगति समापन्नक जीव। इसमें अयोगी केवली और सिद्ध ज्ञानावरण का बंध नहीं करते, एकेन्द्रिय और विग्रहगति समापन्नक जीव करते हैं)।

भाषक वेदनीय कर्म का बंध करता है। अयोगी केवली और सिद्ध वेदनीय कर्म के अबंधक हैं, एकेन्द्रिय और विग्रहगति समापन्नक जीव उसका बंध करते हैं।

302. *ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का बंध क्या परीत करता है? अपरीत करता है? नो परीत-नो अपरीत करता है?*

उ. आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का बंध परीत करता भी है और नहीं भी करता। (परीत के दो अर्थ हैं—प्रत्येक शरीरी जीव और परिमित संसार (जन्म-मरण) वाला जीव। अपरीत का अर्थ है साधारण शरीर वाला जीव और अनंत संसार वाला जीव। वीतराग परीत ज्ञानावरण का अबंधक है, सराग परीत उसका बंधक है।) अपरीत बंध करता है। नो परीत और नो अपरीत बंध नहीं करता।

आयुष्य कर्म का बंध परीत और अपरीत दोनों ही करते भी हैं और नहीं भी करते। नो परीत और नो अपरीत बंध नहीं करता।

303. *ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का बंध क्या मतिज्ञानी करता है? श्रुतज्ञानी करता है? अवधिज्ञानी करता है? मन:पर्यवज्ञानी करता? केवलज्ञानी करता है?*

उ. वेदनीय कर्म को छोड़कर सातों ही कर्म का बंध प्रथम चार ज्ञानधारियों के होता भी है और नहीं भी होता।

प्रथम चारों वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष सातों कर्म का बंध करते भी हैं और नहीं भी करते, भजना है। (मतिज्ञानी आदि चार विकल्पों में यदि वीतराग है, तो वह अबंधक है, और यदि सराग है तो वह बंधक है।)

वेदनीय कर्म का बंध प्रथम चारों करते हैं। (केवलज्ञानी करते भी हैं और नहीं भी करते।) (पांचवें विकल्प के स्वामी तीन हैं—सयोगी केवली, अयोगी केवली और सिद्ध। सयोगी केवली बंधक है, शेष दो अबंधक हैं। वीतराग और सयोगी केवली ज्ञानावरण आदि का बंध नहीं करते, इसलिए भजना है।)

304. *ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का बंध क्या मति-अज्ञानी करता है? श्रुतअज्ञानी करता है? विभंगज्ञानी करता है?*

उ. आयुष्य कर्म को छोड़कर सातों ही कर्म प्रकृतियों का बंध वे करते हैं। आयुष्य कर्म का बंध करते भी हैं और नहीं भी करते, भजना है।

305. *ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का बंध क्या मनोयोगी करता है? वचनयोगी करता है? काययोगी करता है? अयोगी करता है?*

उ. प्रथम तीनों वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का बंध करते भी हैं और नहीं भी करते, भजना है। अयोगी नहीं करता।
वेदनीय कर्म का बंध प्रथम तीनों करते हैं, नियमा है। अयोगी नहीं करता।

306. *ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का बंध क्या साकार उपयोग वाला करता है? अनाकार उपयोग वाला करता है?*

उ. आठों ही कर्म-प्रकृतियों का बंध वे करते भी हैं और नहीं भी करते, भजना है। (साकार और अनाकार उपयोग वाले सयोगी जीव कर्म का बंध करते हैं। साकार और अनाकार उपयोग वाले अयोगी जीव कर्म का बंध नहीं करते।)

307. *ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का बंध क्या आहारक करता है? अनाहारक करता है?*

उ. आहारक और अनाहारक वेदनीय और आयुष्य को छोड़कर शेष छः कर्मों का बंध करते भी हैं और नहीं भी करते, भजना है। वीतराग और केवली आहारक के ज्ञानावरणादि कर्म का बंध नहीं होता, सराग आहारक के उसका बंध होता है। वेदनीय कर्म का बंध आहारक करता है। अनाहारक करते भी हैं और नहीं भी करते, भजना है। (समुद्घातगत केवली और विग्रहगति-समापन्नक जीव अनाहारक अवस्था में वेदनीय कर्म का बंध करते हैं, अयोगी केवली और सिद्ध के उसका बंध नहीं होता।
आयुष्य कर्म का बंध आहारक करता भी है और नहीं भी करता, भजना है। अनाहारक बंध नहीं करता।)

308. ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का बंध क्या सूक्ष्म करता है? बादर करता है? नो सूक्ष्म-नो बादर करता है?

उ. आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का बंध सूक्ष्म करता है। बादर करता भी है और नहीं भी करता, भजना है। (एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और बादर दोनों प्रकार के होते हैं, शेष जीव केवल बादर होते हैं। सूक्ष्म नामकर्म के उदय से सूक्ष्म जीवों की शारीरिक रचना बहुत सूक्ष्म होती है। उनके शरीर समुदित होकर भी दृष्टिगोचर नहीं बनते। वीतराग बादर जीव ज्ञानावरण कर्म का अबंधक है। सराग बादर जीव उसका बंधक है। नो सूक्ष्म-नो बादर सिद्ध होता है, वह अबंधक है।

आयुष्य कर्म का बंध सूक्ष्म और बादर करते भी हैं और नहीं भी करते, भजना है। नो सूक्ष्म और नो बादर नहीं करता।

309. ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का बंध क्या चरम करता है? अचरम करता है?

उ. चरम और अचरम ज्ञानावरणीय आदि कर्म का बंध करता भी है, और नहीं भी करता, भजना है।

जिसका भव चरम होगा, वह चरम है। जिसका भव चरम नहीं होगा, वह अचरम है। सयोगी चरम यथायोग आठों कर्मों का बंध करता है। अयोगी चरम अबंधक होता है, इसलिये भजना है।

संसारी अचरम जीव आठों कर्मों का बंध करता है, मुक्त जीव का पुनर्भव नहीं होता, इस अपेक्षा से वह भी अचरम है, वह कर्म का अबंधक होता है, इसलिये अचरम में भी भजना है।

310. आठ कर्मों की उत्तरप्रकृतियों में कितनी प्रकृतियां बंध योग्य हैं?

उ. आठ कर्मों की उत्तरप्रकृतियों में बंध योग्य 120 प्रकृतियां हैं।

311. उदय योग्य 122 और बंधने वाली 120 प्रकृतियां ही हैं, ऐसा क्यों

उ. सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय एवं मिश्र मोहनीय, मोहनीय कर्म की ये तीन प्रकृतियां उदय की अपेक्षा से हैं। बंध केवल मिथ्यात्व मोहनीय प्रकृति का ही होता है। इसका उदय एवं बंध केवल प्रथम गुणस्थान में होता है। बाकी दोनों प्रकृतियां इसी के हलके रूप हैं जो केवल उदय योग्य हैं। इसलिए बंध योग्य प्रकृतियां 120 ही हैं।

312. प्रथम गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का समुच्चय दृष्टि से बंध हो सकता है?

उ. समुच्चय की दृष्टि से प्रथम गुणस्थान में तीर्थंकर नाम, आहारक शरीर नाम

तथा आहारक अंगोपांग इन तीन उत्तर प्रकृतियों को छोड़कर 117 प्रकृतियों का बंध हो सकता है।

313. *दूसरे गुणस्थान में समुच्चय की दृष्टि से कितनी प्रकृतियों का बंध हो सकता है?*

उ. पहले गुणस्थान में जो 117 प्रकृतियों का बंध हो सकता है। उनमें से 16 उत्तरप्रकृतियों का बंध विच्छेद प्रथम गुणस्थान के अन्तिम समय में हो जाने से दूसरे गुणस्थान में 101 कर्म प्रकृतियों का बंध संभव है। बंध विच्छेद वाली प्रकृतियां हैं—

1. नरकगति, 2. नरकानुपूर्वी नाम, 3. नरकायुष्य, 4-7. एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय जाति नाम, 8. स्थावर नाम, 9. सूक्ष्म नाम, 10. साधारण नाम, 11. अपर्याप्त नाम, 12. हुण्डक संस्थान, 13. आतपनाम, 14. सेवार्त संहनन, 15. नपुंसक वेद, 16. मिथ्यात्व मोहनीय। ये सभी कर्म प्रकृतियां मिथ्यात्व मोह के उदय से बंधती हैं। दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व का उदय न होने से इनका बंध नहीं होता है।

314. *तीसरे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध हो सकता है?*

उ. दूसरे गुणस्थान में बंध योग्य 101 प्रकृतियों में से 27 प्रकृतियों को तीसरे गुणस्थान वाला नहीं बांधता अतः समुच्चय दृष्टि से 74 उत्तर प्रकृतियों का बंध हो सकता है। जो 27 प्रकृतियां तीसरे गुणस्थान में नहीं बंधती हैं वे हैं—1-4. अनन्तानुबंधी चतुष्क, 5. निद्रानिद्रा, 6. प्रचलाप्रचला, 7. स्त्यानर्द्धि, 8. तिर्यञ्चगति, 9. तिर्यञ्चायु, 10. तिर्यञ्चानुपूर्वीनाम, 11. दुर्भगनाम, 12. दुःस्वरनाम, 13. अनादेय नाम, 14. ऋषभनाराच संहनन, 15. नाराच संहनन, 16. अर्धनाराच संहनन, 17. कीलिका संहनन, 18. न्यग्रोध परिमण्डल, 19. सादि संस्थान, 20. वामन संस्थान, 21. कुब्ज संस्थान, 22. नीच गोत्र, 23. उद्योतनाम, 24. अशुभविहायोगति नाम, 25. स्त्रीवेद, 26. देवायु, 27. मनुष्यायु। इन 27 प्रकृतियों के घटाने से 74 प्रकृतियों का बंध तीसरे गुणस्थान में होता है।

315. *चौथे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?*

उ. तीसरे गुणस्थान में जो 74 प्रकृतियां बंध योग्य हैं उनमें तीर्थंकर नाम, देवायु तथा मनुष्यायु इन तीन प्रकृतियों को चौथे गुणस्थान वाला बांध सकता है। अतः इनको मिलाने से 74 + 3 = 77 प्रकृतियां चौथे गुणस्थान में बांधी जा सकती हैं।

316. पांचवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों को बांधा जा सकता है?

उ. पांचवें गुणस्थान में 67 प्रकृतियों का बंध हो सकता है। चौथे गुणस्थान के अन्तिम समय में इन दस प्रकृतियों का बंध-विच्छेद हो जाने से पांचवें गुणस्थानवर्ती जीव इन्हें नहीं बांधता है। ये प्रकृतियां हैं—

(1) वज्रऋषभनाराचसंहनन, (2) मनुष्य गति, (3) मनुष्य आनुपूर्वीनाम, (4) मनुष्यायु, (5) औदारिक शरीर नाम, (6) औदारिक अंगोपांग नाम, (7)-(10) अप्रत्याख्यानी चतुष्क। चौथे गुणस्थान में जो 77 प्रकृतियों का बंध हो सकता है उनमें से इन दस को घटाने से 67 प्रकृतियां पांचवें गुणस्थान में बांधी जा सकती हैं।

317. छठे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध हो सकता है?

उ. छठे गुणस्थान में प्रत्याख्यानी चतुष्क का बंध नहीं हो सकता। पांचवें गुणस्थान में बंधयोग्य 67 प्रकृतियों में से इन चार को घटाने से 63 प्रकृतियों को छठे गुणस्थान में बांधा जा सकता है।

318. सातवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध संभव है?

उ. छठे गुणस्थान के अन्तिम समय में (1) शोक, (2) अरति, (3) अस्थिर नाम, (4) अशुभ नाम, (5) अयशकीर्ति नाम, (6) असातावेदनीय इन छः प्रकृतियों का बंधविच्छेद होने से 57 प्रकृतियों का बंध सातवें गुणस्थान में होता है। जो जीव छठे गुणस्थान में देवायु को प्रारम्भ कर उसी में पूर्ण कर देते हैं उनके 56 प्रकृतियों का बंध होता है पर जो छठे गुणस्थान में देवायु को प्रारम्भ कर बीच में ही सातवें गुणस्थान में प्रवेश कर जाते हैं उनके 57 प्रकृतियों का बंध हो सकता है। सातवें गुणस्थान में आहारक शरीर नाम तथा आहारक अंगोपांग इन दो प्रकृतियों का बंध संभव होने से सातवें गुणस्थान में 58 या 59 प्रकृतियों को बांधा जा सकता है।

319. आठवें गुणस्थान में कर्म प्रकृतियों के बंध का क्या क्रम है?

उ. आठवें गुणस्थान के सात भाग होते हैं। पहले भाग में 58 प्रकृतियों का बंध हो सकता है। निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियां पहले भाग से आगे नहीं बंधती हैं। अतः दूसरे से छठे भाग पर्यन्त 56 प्रकृतियों का बंध संभव है, पर छठे भाग में 30 प्रकृतियों का बंधविच्छेद हो जाने से सातवें भाग में 26 प्रकृतियों का बंध होता है। जो तीस प्रकृतियां छठे भाग से आगे नहीं बंधती हैं वे हैं—(1) देवगति, (2) देवानुपूर्वी, (3) अशुभ विहायोगति (4) त्रसनाम, (5) बादर नाम, (6) पर्याप्त नाम, (7) प्रत्येक नाम,

(8) स्थिरनाम, (9) शुभनाम, (10) सुभगनाम, (11) सुस्वरनाम, (12) आदेयनाम, (13) आहारक शरीर नाम, (14) तैजस शरीर नाम, (15) वैक्रिय शरीर नाम, (16) कार्मण शरीर नाम, (17) वैक्रिय अंगोपांग नाम, (18) आहारक अंगोपांग नाम, (19) समचतुरस संस्थान, (20) निर्माण नाम, (21) तीर्थंकर नाम, (22) वर्णनाम, (23) गंधनाम, (24) रसनाम, (25) स्पर्शनाम, (26) अगुरुलघुनाम, (27) उपघातनाम, (28) पराघातनाम, (29) उच्छ्वासनाम, (30) पंचेन्द्रिय जातिनाम। इन तीस नाम कर्म की प्रकृतियों का बंध छठे भाग से आगे नहीं होता है। तथा कषाय मोहनीय की चार प्रकृतियों का बंध सातवें भाग से आगे नहीं होता है। वे प्रकृतियां हैं—(1) हास्य, (2) रति, (3) जुगुप्सा, (4) भय। अत: 26 में से इन 4 प्रकृतियों को घटा देने से नौवें गुणस्थान में 22 प्रकृतियों का बंध हो सकता है।

320. नौवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. नौवें गुणस्थान के पांच भाग होते हैं। पहले भाग में 22 प्रकृतियों का बंध होता है। पहले भाग के अन्तिम समय में पुरुषवेद, दूसरे भाग के अन्तिम समय में संज्वलन क्रोध, तीसरे भाग के अन्तिम समय में संज्वलन मान, चौथे भाग के अन्तिम समय में संज्वलन माया एवं पांचवें भाग के अन्तिम समय में संज्वलन लोभ का बंधविच्छेद हो जाने से दसवें गुणस्थान में 17 प्रकृतियों का बंध होता है।

321. दसवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. दसवें गुणस्थान में 17 प्रकृतियों का बंध होता है। दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 4, अन्तराय कर्म की पांच तथा यशः कीर्तिनाम, उच्चगोत्र कर्म, कुल 16 प्रकृतियों का बंध विच्छेद हो जाने से आगे मात्र एक प्रकृति सातावेदनीय का बंध होता है।

322. 11वें, 12वें तथा 13वें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियां बंधती हैं?

उ. इन तीन गुणस्थानों में मोह का अभाव हो जाने से योग से एक साता वेदनीय का 2 समय की स्थिति का बंध होता है। 14वें गुणस्थान में योग का अभाव हो जाने से किसी भी प्रकृति का बंध नहीं होता है।

323. कर्म बंध की चार अवस्थाएं कौन-कौनसी हैं?

उ. (1) स्पष्ट कर्मबंध, (2) बद्ध कर्मबंध,
(3) निधत्त कर्मबंध, (4) निकाचित कर्मबंध।

324. कर्म की उत्तर प्रकृतियों में कौन-कौनसी प्रकृतियां परस्पर विरोधी हैं?

उ.

तीन शरीर	—	परस्पर विरोधी
तीन अंगोपांग	—	परस्पर विरोधी
दो विहायोगति	—	परस्पर विरोधी
दो गोत्र	—	परस्पर विरोधी
साता-असाता	—	परस्पर विरोधी
हास्य-रति	—	परस्पर विरोधी
शोक-अरति	—	परस्पर विरोधी
वेद-तीन	—	परस्पर विरोधी
चार-गति	—	परस्पर विरोधी
चार-आयु	—	परस्पर विरोधी
चार गत्यानुपूर्वी	—	परस्पर विरोधी
पांच जाति	—	परस्पर विरोधी
छः संहनन	—	परस्पर विरोधी
छः संस्थान	—	परस्पर विरोधी
त्रसदशक-स्थावरदशक	—	परस्पर विरोधी

325. उद्वर्तना किसे कहते हैं?

उ. कर्मस्थिति का दीर्घीकरण और रस का तीव्रीकरण उद्वर्तना है। यह स्थिति एक नये पैसे के कर्जदार को हजारों रुपयों का कर्जदार बनाने जैसी है।

326. अपवर्तना किसे कहते हैं?

उ. स्थितिबंध एवं अनुभाग बंध के घटने को अपवर्तना कहते हैं। यह स्थिति हजारों के कर्जदार को एक नये पैसे से मुक्त बनाने जैसी है। उद्वर्तना और अपवर्तना के कारण कोई कर्म देर से फल देता है और कोई शीघ्र। किसी कर्म का भोग तीव्र हो जाता है और किसी का मंद। शुभ परिणामों से अशुभ कर्मों की स्थिति और अनुभाग कम होता है तथा अशुभ परिणामों से शुभ कर्मों का स्थिति एवं अनुभाग कम होता है।

327. सत्ता किसे कहते हैं?

उ. कर्म का बंध होने के बाद उसका फल तुरन्त नहीं मिलता है कुछ समय पश्चात् मिलता है। प्रत्येक कर्म की अपनी एक काल मर्यादा होती है। अमुक-अमुक बंधने वाले कर्म पुद्गल जब तक पूरी तरह से आत्मा से

अलग नहीं हो जाते, आत्मा के साथ संपृक्त रहते हैं वह अमुक-अमुक कर्म की सत्ता है। सत्ता में अबाधाकाल एवं योगकाल दोनों का समावेश हो जाता है। सत्ता की स्थिति शान्तसागर की सी अथवा अरणि की लकड़ी में आग जैसी है।

328. अबाधाकाल किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म प्रकृति जितने काल की बंधी हुई है, उसके एक निश्चित कालमान तक उदय में न आने को अबाधाकाल कहते हैं। कोई कर्म प्रकृति एक करोड़ा-करोड़ सागर की बंधी है तो उसका अबाधाकाल सौ वर्ष होगा।

329. अबाधाकाल और सत्ता में क्या अन्तर है?

उ. अबाधाकाल व सत्ता के अन्तर को एक उपनय से भली भांति समझा जा सकता है। एक कुंड पानी से लबालब भरा है। उसमें से पानी निकालने के लिए मशीन लगा दी। पानी कुंड से निकलना शुरू हो गया और वह चौबीस घण्टे में खाली हो गया। पानी निकलने से पूर्व जितने समय कुण्ड में पानी भरा था, उसके सदृश अबाधाकाल है। कर्म प्रकृति के उदय के प्रथम समय में ही अबाधाकाल पूरा हो जाता है। उस कुंड से पानी एक साथ नहीं निकलता, पर निकलना शुरू हो गया। जब तक पानी अंदर है, तब तक वह सत्ता रूप है। कर्म प्रकृति का उदय शुरू हो गया और वह एक हजार वर्ष तक चलने वाला है। उस प्रकृति की हजार वर्ष तक सत्ता रहेगी।

330. कितने कर्म प्रकृतियों की सत्ता मानी गयी है?

उ. आठ कर्मों की 158 या 148 प्रकृतियों की सत्ता मानी गयी है। जो इस प्रकार हैं—

1. ज्ञानावरणीय कर्म की–5, 2. दर्शनावरणीय कर्म की–9, 3. वेदनीय कर्म की–2, 4. मोहनीय कर्म की–28, 5. आयुकर्म की–4, 6. नामकर्म की–103, 7. गोत्रकर्म की–2, 8. अन्तराय कर्म की–5

कुल 158 प्रकृतियां सत्तायोग्य होती हैं। इस संख्या में बंधन नामकर्म के पन्द्रह भेद मिलाये गये हैं। यदि 15 की जगह 5 भेद ही बंधन नामकर्म के समझें जाए तो सत्तायोग्य प्रकृतियों की संख्या 148 होगी। वर्तमान में जितनी प्रकृतियां सत्ता में है उसे स्वरूप सत्ता एवं जिनका बंध संभव है उसे संभव सत्ता कहते हैं।

331. पहले गुणस्थान में कितने कर्मों की सत्ता संभव है?

उ. पहले गुणस्थान में 148 प्रकृतियों की सत्ता मानी गयी है।

332. दूसरे एवं तीसरे गुणस्थानों में कितने कर्मों की सत्ता होती है?

उ. इन दो गुणस्थानों में तीर्थंकर नामकर्म की सत्ता न होने से 147 प्रकृतियों की सत्ता संभव है। तीर्थंकर गोत्र बांध कर कोई जीव दूसरे एवं तीसरे गुणस्थान को प्राप्त नहीं कर सकता। अत: 148 प्रकृतियां सत्तायोग्य मानी गयी है।

333. चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक सत्ता में कितनी प्रकृतियां संभव हैं?

उ. चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक जो क्षायिक सम्यक्त्वी है तथा चरम-शरीरी है उनके अनन्तानुबंधी कषाय की चार, दर्शन मोह की तीन एवं देव, नरक व तिर्यञ्च आयु की संभव सत्ता न होने से 138 प्रकृतियों की सत्ता मानी गयी है। जो चरम शरीरी हैं एवं जिसे अभी तक क्षायक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हुई है उनके 145 प्रकृतियों की सत्ता मानी गयी है। (तीन आयु को छोड़कर) क्षयोपशम सम्यक्त्वी तथा औपशमिक सम्यक्त्वी जो अचरम शरीरी है उनके 148 प्रकृतियों की संभव सत्ता मानी गयी है। जो क्षायिक सम्यक्त्वी अचरम-शरीरी है उनके 141 प्रकृतियों की सत्ता होती है। (संभव सत्ता) (अनन्तानुबंधी कषाय की 4 एवं दर्शन मोह की तीन प्रकृतियों को छोड़कर)।

334. आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों की सत्ता हो सकती है?

उ. आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान पर्यन्त अनन्तानुबंधी की चार तथा नरक एवं तिर्यञ्च आयु को छोड़ 142 प्रकृतियों की सत्ता इन चार गुणस्थानों में संभव है।

335. क्षपक श्रेणी लेने वाले जीवों के नवमें गुणस्थान में सत्ता का क्या कम है?

उ नवमें गुणस्थान के प्रथम भाग में क्षपक श्रेणी वाले जीवों में 138 प्रकृतियों की सत्ता होती है। नवमें गुणस्थान के नव भाग होने हैं। दूसरे भाग में 122 प्रकृतियों की सत्ता होती है। तीसरे भाग में 114 एवं चौथे भाग में 109 प्रकृतियों की, सातवें भाग में 105, आठवें भाग में 104 एवं नवमें भाग में 103 प्रकृतियां सत्तागत होती हैं।

336. दसवें, ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता होती हैं?

उ. दसवें गुणस्थान में 102 प्रकृतियों की, बारहवें गुणस्थान में द्विचरम समय पर्यंत 101 प्रकृतियां सत्ता में होती है। द्विचरम समय में निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियां क्षय हो जाने से अन्तिम समय में 99 प्रकृतियां सत्तागत होती हैं।

337. तेरहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता होती है?

उ. ज्ञानावरणीय की-5, दर्शनावरण की-4 तथा अन्तराय की-5, कुल इन 14 प्रकृतियों की उदय एवं सत्ता 12वें गुणस्थान तक होने एवं आगे न होने से 85 प्रकृतियों की सत्ता तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम समय पर्यंत रहती है।

338. चौदहवें गुणस्थान में सत्ता का क्या क्रम है?

उ. चौदहवें गुणस्थान के प्रथम समय में 85 प्रकृतियों की सत्ता होती है। चौदहवें गुणस्थान के द्विचरम समय में 72 प्रकृतियों का क्षय होने से 13 प्रकृतियों की संभव सत्ता अन्तिम समय में रहती है। इनका अस्तित्व अन्तिम समय तक ही रहता है उसके बाद आत्मा निष्कर्म होकर सर्वथा मुक्त हो जाती है। (कई आचार्य चौदहवें गुणस्थान में मनुष्यानुपूर्वी की सत्ता नहीं मानते हैं।

339. उदय किसे कहते हैं?

उ. अबाधाकाल पूर्ण होने पर जब कर्म शुभ-अशुभ रूप में फल देता है, उसे उदय कहते हैं।

340. उदय से पूर्व कर्म की अवस्थाएं कितने प्रकार की होती हैं?

उ. उदय से पूर्व कर्म की अवस्थाएं चार प्रकार की होती हैं—

1. योग्य—जो कर्म पुद्गल बंध परिणाम के अभिमुख हैं।
2. बध्यमान—जिन कर्म पुद्गलों की बंध क्रिया प्रारम्भ हो चूकी हैं।
3. बद्ध-जिन कर्म पुद्गलों की बंध क्रिया सम्पन्न हो चूकी है।
4. उदीरणावलिका प्राप्त—जो कर्म पुद्गल उदीरणाकरण द्वारा उदीरणावलिका को प्राप्त हैं, लेकिन उदयावलिका को प्राप्त नहीं हुए हैं।

341. उदय के कितने प्रकार हैं?

उ. उदय के दो प्रकार हैं—प्रदेशोदय और विपाकोदय।

342. प्रदेशोदय किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म बिना कोई फल दिये नष्ट हो जाता है, केवल आत्म-प्रदेशों में भोग लिये जाते हैं उसे प्रदेशोदय कहते हैं। प्रदेशोदय से आत्मा को सुख-दुःख की स्पष्ट अनुभूति नहीं होती और न ही सुख-दुःख का स्पष्ट संवेदन। क्लोरोफार्म चेतना से शून्य किये गये शरीर के अवयवों को काट देने पर व्यक्ति को पीड़ा की अनुभूति नहीं होती वैसे ही स्थिति है। प्रदेशोदय सभी कर्मों का होता है पर उसके उदय के समय उनका अनुभव हो ही यह जरूरी नहीं है।

343. विपाकोदय किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाता है, उसे विपाकोदय कहते हैं। कोई भी कर्म बिना विपाकोदय के फल नहीं दे सकता। विपाकोदय से आत्मा को सुख-दुःख की स्पष्ट अनुभूति एवं संवेदना होती है। यह स्थिति फूल-शूल के स्पर्श का स्पष्ट अनुभव लिये होती है।

344. कर्म के विपाकोदय में क्या कोई निमित्त भी कार्यकारी बनता है?

उ. कर्म के विपाकोदय में चार निमित्त कार्यकारी बनते हैं—

(1) क्षेत्र विपाक—क्षेत्र विशेष में कर्म का विपाकोदय होना। यथा-किसी व्यक्ति के बैंगलूर जाने से वह श्वास का रोगी हो जाता है, मद्रास जाने से स्वस्थ हो जाता है।

(2) जीव विपाक—बिना किसी बाहरी हेतु के क्रोधित होना, द्वेष के भाव उभरना आदि।

(3) भाव विपाक—भावना के उतार चढ़ाव के साथ कर्मों का विपाकोदय होना।

(4) भव विपाक—अमुक भव में कर्म की अमुक प्रकृति का विशेष रूप से विपाकोदय होना। यथा-बंदर के भव में वासना; सर्प के भव में क्रोध की प्रकृति का विशेषतः उदय रहता है।

345. कर्मों का उदय सहेतुक होता है या निर्हेतुक?

उ. कर्मों का परिपाक और उदय अपने आप भी होता है और दूसरों के द्वारा भी। सहेतुक भी होता है और निर्हेतुक भी। बाहरी कारण नहीं मिला और क्रोध वेदनीय पुद्गलों के तीव्र विपाक से अपने आप क्रोध आ गया; यह निर्हेतुक उदय है। किसी ने गाली दी और क्रोध आ गया-यह क्रोध वेदनीय-पुद्गलों का सहेतुक विपाकोदय है।

346. अपने आप उदय में आने वाले कर्म के हेतु कौनसे हैं?

उ. अपने आप उदय में आने वाले विपाक हेतुक हैं—

(1) गति हेतुक उदय—नरक गति असात का तीव्र उदय होता है यह गति हेतुक विपाकोदय है।

(2) स्थिति हेतुक उदय—मोहकर्म की सर्वोत्कृष्ट स्थिति में मिथ्यात्व का तीव्र उदय होता है, यह स्थिति-हेतुक विपाक-उदय है।

(3) भव हेतुक उदय—दर्शनावरणीय कर्म का उदय सबके होता है। इसके उदय से नींद आती है पर मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों को आती है यह भव (जन्म)

हेतुक विपाक उदय है। गति, स्थिति और भव के निमित्त से कई कर्मों का अपने आप विपाक उदय हो जाता है।

347. दूसरों के द्वारा उदय में आने वाले विपाक हेतु कौन-से हैं?

उ. (1) पुद्गल हेतुक उदय—किसी ने पत्थर फेंका, चोट लगी और असात वेदनीय का विपाक उदय हो गया, यह पुद्गल हेतुक विपाक उदय है।

(2) किसी ने गाली दी और क्रोध वेदनीय पुद्गलों का उदय हो गया, क्रोध आ गया यह सहेतुक विपाक उदय है।

भोजन किया, पचा नहीं अजीर्ण हो गया उससे रोग पैदा हो गया, यह असात वेदनीय का पुद्गल-परिमाण से होने वाला विपाक उदय है। मदिरा पी, उन्माद छा गया—ज्ञानावरणीय कर्म का विपाक उदय हो गया। यह भी पुद्गल परिणमन हेतुक विपाक उदय है। इस प्रकार अनेक हेतुओं से कर्मों का विपाक उदय होता है। अगर ये हेतु नहीं मिलते तो उन कर्मों का विपाक रूप में उदय नहीं होता।

348. कर्म किस रूप में फल देता है?

उ. कर्म की जिस प्रकृति का उदय होता है, उसी प्रकृति के अनुरूप वह फल देता है।

349. जिन स्थानों में प्राणी अपने किये हुए कर्मों का फल भोगते हैं, उन्हें क्या कहते हैं?

उ. दण्डक।

350. क्या बंधे हुए कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता?

उ. कर्म उदय के दो प्रकार हैं—प्रदेश कर्म एवं अनुभाग कर्म। जो प्रदेश कर्म हैं वे नियमतः अवश्य भोगे जाते हैं पर जो अनुभाग कर्म है वो कुछ भोगे जाते हैं कुछ नहीं भी भोगे जाते। जो कर्म बंधते हैं उनका आत्म-प्रदेशों में उदय निश्चित होता है। पर सब कर्मों का विपाक हो, अनुभव हो यह जरूरी नहीं है।

351. कर्म पुद्गल जो जड़ है, अचेतन हैं वे अपने आप फल कैसे देते हैं?

उ. जैन दर्शन के अनुसार कर्म परमाणुओं में जीवात्मा के संबंध से एक विशिष्ट परिणमन होता है। पुद्गलों का यह परिणमन-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव, गति, स्थिति, पुद्गल परिमाण आदि उदयानुकूल सामग्री से विपाक प्रदर्शन में समर्थ हो जीवात्मा के संस्कारों को विकृत करता है, उससे उनका फलाभोग होता है। आत्मा अपने किये का फल स्वयं भोगता

है। कर्म परमाणु सहकारी का काम करते हैं। विष और अमृत, पथ्य और अपथ्य भोजन को कुछ भी ज्ञान नहीं होता फिर भी जीव के संयोग से उनकी वैसी परिणति हो जाती है। उनका परिपाक होते ही खाने वाले को इष्ट या अनिष्ट फल मिल जाता है।

352. *क्या कर्म के अशुभ फल को रोका जा सकता है?*

उ. जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि शुभ प्रवृत्ति से अशुभ फल को रोका जा सकता है। जप आदि से कर्म-निर्जरा होती है। जब कर्मों का निर्जरण हो जाता है, तब कर्मों के फल देने की बात स्वत: समाप्त हो जाती है।

353. *क्या उदय के बिना बंधे हुए कर्म फल दे सकते हैं?*

उ. उदय के बिना बंधे हुए कर्म फल नहीं दे सकते। फल देने की अवस्था मात्र उदयकाल ही है। उसी समय वे जीव को सुख-दु:ख का अनुभव करवाते हैं।

354. *क्या कर्म के उदय के बिना भी कर्म का बंध हो सकता है?*

उ. उदय के बिना कर्म का बंध नहीं होता। संसारी जीवों के निरन्तर कर्मों का उदय चलता है और प्रतिक्षण बंध भी होता है।

355. *कर्म उदय में चल रहा है, किन्तु उसका बंध नहीं हो रहा है। क्या ऐसा भी हो सकता है?*

उ. बंध के लिए उदय जरूरी है पर उदय के समय बंध हो ही, यह जरूरी नहीं हैं। दसवें गुणस्थान में मोह का उदय है पर बंध नहीं। 11वें तथा 12वें गुणस्थानों में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एवं अन्तराय कर्म का उदय रहता है पर मोह के उदय के अभाव में उनका बंध नहीं होता है। नाम गोत्र कर्म का उदय सभी गुणस्थानों में है पर दसवें गुणस्थान के आगे ये बंधते नहीं है। वेदनीय कर्म का उदय सभी गुणस्थानों में है पर वह 14वें गुणस्थान में नहीं बंधता है। आयुष्य कर्म का उदय तो जीवन भर रहता पर बंध जीवन में एक बार ही होता है (अगले भव के आयुष्य का)। 14वें गुणस्थान में चार अघाति कर्मों का उदय रहता है पर कोई भी कर्म नहीं बंधता।

356. *क्या ऐसी भी कोई कर्म प्रकृति है, जिसका बंध हुए बिना अनन्त काल बीत गया?*

उ. तीर्थंकर नाम, आहारक नाम कर्म आदि कुछ ऐसी प्रकृतियां हैं जिन्हें बांधे बिना अनन्तकाल बीत चुका और आगे व्यतीत हो सकता है। इन प्रकृतियों को अभवी कभी नहीं बांधता। सम्यक्त्वी जीवों में भी कोई-कोई जीव के

उपरोक्त प्रकृतियों का बंध हो सकता है। अव्यवहार गत राशि के जीवों के भी अनन्त-अनन्त काल चक्रों में अनेक-अनेक प्रकृतियों का बंध नहीं हुआ है।

357. *कर्म का उदय चल रहा है, किन्तु उसका बंध नहीं होता, ऐसा समय कभी आता है?*

उ. चौदहवें गुणस्थान के पंच ह्रस्वाक्षर उच्चारण जितने समय में यह प्रसंग जरूर बनता है। जब कर्म का उदय तो चलता है, पर बंध नहीं होता क्योंकि वहाँ कर्म बंध का मुख्य हेतु आश्रव का पूर्ण निरोध हो चुका होता है।

358. *क्या कर्म फल व ग्रह फल एक है?*

उ. कर्मफल स्वकृत कर्मों का फल है। ग्रहफल जीव में होने वाली शुभ-अशुभ घटनाओं की भविष्यवाणी करने का माध्यम है। ग्रहफल ज्योतिष शास्त्र का विषय है। जैन दर्शन के अनुसार शुभ-अशुभ घटनाएं कर्मजन्य हैं। ग्रह उनकी अवगति में सहायक बनते हैं और कर्मफल के विपाकोदय की भूमिका निर्मित करते हैं।

359. *आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियां कितनी हैं? और उन उत्तर प्रकृतियों में बंध योग्य, उदय व उदीरणायोग्य, और सत्ता योग्य प्रकृतियां कितनी हैं?*

उ. उपरोक्त प्रश्न का उत्तर नीचे लिखे यंत्र से जाने—

	कर्म	बंध योग्य	उदय-उदीरणा योग्य	सत्तायोग्य
ज्ञानावरणीय	5	5	5	5
दर्शनावरणीय	9	9	9	9
वेदनीय	2	2	2	2
मोहनीय	28	26	28	28
आयुष्य	4	4	4	4
नाम	67	67	67	103
गोत्र	2	2	2	2
अन्तराय	5	5	5	5
	158	120	122	158

360. *आठ कर्मों की कितनी प्रकृतियां उदय योग्य होती हैं?*

उ. आठ कर्मों की 122 प्रकृतियों का उदय होता है।

361. पहले गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का समुच्चय की दृष्टि से उदय होता है?

उ. पहले गुणस्थान में उदय योग्य 122 प्रकृतियों में से मिश्रमोहनीय, सम्यक्त्व मोहनीय, आहारक शरीरनाम, आहारक अंगोपांगनाम एवं तीर्थंकरनाम इन पांच को छोड़कर 117 प्रकृतियों का उदय जीवों की दृष्टि से होता है।

362. दूसरे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियां उदययोग्य हैं?

उ. दूसरे गुणस्थानवर्ती जीवों के सूक्ष्मनाम, साधारणनाम, अपर्याप्तनाम, आतपनाम, नरकानुपूर्वीनाम तथा मिथ्यात्वमोहनीय इन छह प्रकृतियों का *उदय नहीं होता है, पहले गुणस्थान में उदय योग्य 117 प्रकृतियों में से इन* छः प्रकृतियों को घटा देने से 111 प्रकृतियों का उदय दूसरे गुणस्थान में हो सकता है।

363. तीसरे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियां उदय-योग्य मानी गयी हैं?

उ. तीसरे गुणस्थान में अनन्तानुबंधी कषाय की-4, जाति नामकर्म की-4 (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय), आनुपूर्वी नामकर्म की-3 (देवानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी तथा तिर्यंचानुपूर्वी), स्थावर नाम–इन 12 प्रकृतियों का उदय न होने से दूसरे गुणस्थान में उदययोग्य 111 प्रकृतियों में से इन्हें घटाने से 99 प्रकृतियां तथा तीसरे गुणस्थान में मिश्र मोहनीय प्रकृति का उदय होने से 100 प्रकृतियां उदय योग्य होती हैं।

364. चौथे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय संभव है?

उ. तीसरे गुणस्थान में उदय योग्य 100 प्रकृतियों में मिश्र मोह का उदय चौथे गुणस्थान में न होने से तथा चारों आनुपूर्वी नामकर्म की प्रकृतियों एवं सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति का उदय होने से 104 प्रकृतियां उदय योग्य मानी गयी हैं।

100-1 मिश्र मोहनीय = 99

99 + 5 = 104

(चारों आनुवूर्वियों तथा सम्यक्त्व मोहनीय का उदय होने से।)

365. पांचवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. चौथे गुणस्थान में उदय योग्य 104 प्रकृतियों में से 17 प्रकृतियों का उदय पांचवें गुणस्थान में नहीं होता है अतः 87 प्रकृतियों का उदय पांचवें गुणस्थानवर्ती जीवों में हो सकता है। पांचवें गुणस्थान में जिन

17 प्रकृतियों का उदय नहीं होता, वें हैं—अप्रत्याख्यानी कषाय की-4, देवगति, देवानुपूर्वी, देवायुष्य, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायुष्य, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगापांगनाम, दुर्भगनाम, अनादेयनाम, अयशः कीर्तिनाम, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी इन 17 प्रकृतियों का उदय पांचवें गुणस्थानवर्ती जीवों में नहीं होता है।

366. छठे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उ. छठे गुणस्थान में तिर्यंचायुष्य, तिर्यंचगतिनाम तथा प्रत्याख्यानी कषाय की चार, उद्योतनाम, नीचगोत्र—इन आठ प्रकृतियों का उदय न होने तथा आहारक शरीर एवं आहारक अंगोपांगनाम इन दो प्रकृतियों का उदय संभव होने से 81 प्रकृतियां उदय योग्य मानी गयी हैं। पांचवें गुणस्थान में जिन 87 प्रकृतियों का उदय होता है। उनमें से 8 घटाने से 79 + उनमें 2 जोड़ने से 81 प्रकृतियां उदययोग्य मानी गयी है।

367. सातवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय संभव है?

उ. छठे गुणस्थान में उदययोग्य 81 प्रकृतियों में से आहारक शरीरनाम, आहारक अंगोपांगनाम, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला एवं स्त्यानर्द्धि इन पांच प्रकृतियों का उदय सातवें गुणस्थान में न होने से 76 प्रकृतियों का उदय हो सकता है।

368. आठवें गुणस्थान में उदय योग्य कितनी प्रकृतियां हैं?

उ. सम्यक्त्व मोहनीय, अर्धनाराच संहनन, कीलिका संहनन, सेवार्त संहनन इन चार प्रकृतियों का उदय सातवें गुणस्थान से आगे नहीं होता है। सातवें गुणस्थान में उदय योग्य 76 प्रकृतियों में से इन्हें कम कर देने से 72 प्रकृतियों का उदय आठवें गुणस्थान में हो सकता है।

369. नवमें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियां उदय योग्य मानी गयी हैं?

उ. नो कषाय की 6 प्रकृतियों का—(1) हास्य, (2) रति, (3) अरति, (4) जुगुप्सा, (5) शोक, (6) भय-का उदय नवमें गुणस्थानवर्ती जीवों के नहीं होता है। *आठवें गुणस्थान में जिन 72 प्रकृतियों का उदय संभव है* उसमें से छह को कम करने से 66 प्रकृतियों का उदय नौवें गुणस्थान में होता है।

370. दसवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

उ. संज्वलन क्रोध, मान, माया मोह की तीन तथा नौ कषाय की स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा नपुंसकवेद ये 3 तीन प्रकृतियां कुल 6 प्रकृतियों का उदय

दसवें गुणस्थान में न होने से 9वें गुणस्थान की 66 प्रकृतियों में से इन्हें कम कर देने से 60 प्रकृतियों का उदय दसवें गुणस्थान में होता है।

371. *ग्यारहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियां उदय में रहती हैं?*

उ. ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीवों में संज्वलन लोभ का उदय न होने से 59 प्रकृतियों का उदय होता है।

372. *बारहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?*

उ. ऋषभनाराच एवं नाराच संहनन का उदय बारहवें गुणस्थान में न होने से 57 प्रकृतियों का उदय बारहवें गुणस्थान में होता है। बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय से पूर्व निद्रा एवं प्रचला इन दो प्रकृतियों का उदय होता है पर अन्तिम समय में नहीं होता अतः अन्तिम समय में 55 प्रकृतियों का उदय होता है।

373. *तेरहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है*

उ. ज्ञानावरणीय कर्म की 5, दर्शनावरणीय कर्म की 4 एवं अन्तरायकर्म की 5, कुल 14 प्रकृतियों का उदय तेरहवें गुणस्थान में न होने से बारहवें गुणस्थान में जिन 55 प्रकृतियों का उदय था उनमें से 14 प्रकृतियों को घटाने से 41 प्रकृतियों का उदय होता है। तीर्थंकरनाम का उदय भी इस गुणस्थान में हो सकता है अतः 41 + 1 = 42 प्रकृतियों का उदय 13वें गुणस्थान में संभव है।

374. *14वें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय माना गया है?*

उ. (1) औदारिक शरीर नाम, (2) औदारिक अंगोपांग नाम, (3) अस्थिर नाम, (4) अशुभ नाम, (5) शुभ विहायोगति नाम, (6) अशुभ विहायोगति नाम, (7) प्रत्येक नाम, (8) शुभ नाम, (9) स्थिर नाम, (10) समचतुरस संस्थान, (11) न्यग्रोधपरि मण्डल, (12) सादि संस्थान, (13) वामन संस्थान, (14) कुब्ज संस्थान, (15) हुण्डक संस्थान, (16) अगुरुलघु, (17) उपघात, (18) पराघात, (19) उच्छ्वासनाम, (20) वर्णनाम, (21) गंधनाम, (22) रसनाम, (23) स्पर्शनाम, (24) निर्माणनाम, (25) तैजस शरीर नाम, (26) कार्मण शरीर नाम, (27) वज्रऋषभनाराच संहनन, (28) दुःस्वरनाम, (29) सुस्वरनाम, (30) असातावेदनीय या सातावेदनीय में कोई एक–इन नाम कर्म की 30 प्रकृतियों का उदय 13वें गुणस्थान के अन्तिम समय तक ही होता है। अतः 14वें गुणस्थान में शेष 12 प्रकृतियों का उदय संभव है।

375. कर्म की उत्तर प्रकृतियों में उदययोग्य परस्पर विरोधी प्रकृतियां कौन-कौन सी हैं?

उ. उदय में परस्पर विरोध प्रकृतियां—

हास्य-शोक	परस्पर विरोधी
साता-साता	परस्पर विरोधी
निद्रा 5	परस्पर विरोधी
अनन्तानुबंधी चतुष्क	परस्पर विरोधी
चारों कषाय का एक साथ उदय नहीं	
हास्य-शोक	परस्पर विरोधी
हास्य रति-शोक अरति	परस्पर विरोधी
तीन वेद	परस्पर विरोधी
आयुष्य-चार	परस्पर विरोधी
गति-चार	परस्पर विरोधी
जाति-पांच	परस्पर विरोधी
शरीर-तीन (औदारिक, तैजस, कार्मण)	परस्पर विरोधी
अंगोपांग-तीन	परस्पर विरोधी
संस्थान-छः	परस्पर विरोधी
संहनन-छः	परस्पर विरोधी
विहायोगति-दो	परस्पर विरोधी
आनुपूर्वी-चार	परस्पर विरोधी
त्रस-चार	स्थावर चार
(त्रस, प्रत्येक, पर्याप्त, बादर)	(स्थावर, साधारण अपर्याप्त सूक्ष्म)
सुभग, सुस्वर, शुभ, आदेय	दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, अनादेय
दो गोत्र	परस्पर विरोधी

376. उदीरणा किसे कहते हैं?

उ. जो कर्मदलिक बाद में उदय में आने वाले हैं उनको प्रयत्न विशेष से खींचकर उदय प्राप्त दलिकों के साथ भोग लेना उदीरणा है। उदीरणा से पूर्व अपवर्तना जरूरी होता है, जिससे कर्मों की स्थिति और रस दोनों कमजोर हो जाते हैं। ये दोनों कम होने से शीघ्र उदय प्राप्त दलिकों के साथ भोग लिये जाते हैं।

377. उदीरणा कितनी कर्म प्रकृतियों की होती है और किन-किन गुणस्थानों में होती है?

उ. पहले से छठे गुणस्थान तक जिन-जिन कर्म प्रकृतियों का उदय होता है उन-उन प्रकृतियों की उदीरणा भी हो सकती है।

सातवें से 13वें गुणस्थान तक उदय योग्य प्रकृतियों में साता वेदनीय, असाता वेदनीय एवं मनुष्यायुष्य इन तीन प्रकृतियों की उदीरणा न होने से जितनी प्रकृतियों का उदय होता है उदीरणा इन तीन की कम होती है। 14वें गुणस्थान में किसी कर्म की उदीरणा नहीं होती है।

तीसरे गुणस्थान को छोड़कर पहले से छठे गुणस्थान तक सात या आठ कर्मों की उदीरणा होती है। जब आयु की उदीरणा नहीं होती है तब सात कर्मों की अन्यथा आठ कर्मों की उदीरणा होती है। उदयमान कर्म आवलिका प्रमाण शेष रहता है तब उसकी उदीरणा रुक जाती है। तीसरे गुणस्थान में मृत्यु नहीं होती है अत: वहाँ आठों ही कर्मों की उदीरणा मानी जाती है। दसवें गुणस्थान की अन्तिम आवलिका में मोहकर्म की उदीरणा नहीं होती है। उदीरणा के लिए नियम है कि जो कर्म उदय प्राप्त है, उसकी उदीरणा होती है दूसरे की नहीं। उदय प्राप्त कर्म भी आवलिका मात्र शेष रह जाता है तब उसकी उदीरणा नहीं होती है।

378. क्या उदीरणा सभी कर्मों की संभव है?

उ. उदीर्ण कर्म की जीव उदीरणा नहीं करता। उदीर्ण कर्म-पुद्गलों की फिर से उदीरणा हो तो उदीरणा की कहीं भी परिसमाप्ति नहीं होती। जिन कर्म पुद्गलों की उदीरणा सुदूर भविष्य में होने वाली है अथवा जिनकी उदीरणा नहीं ही होने वाली है, उन अनुदीर्ण कर्म पुद्गलों की भी उदीरणा नहीं होती। जो कर्म उदय में आ चुके हैं वे सामर्थ्यहीन बन गये हैं उनकी भी उदीरणा नहीं होती। जो कर्म पुद्गल वर्तमान में उदीरणा योग्य (अनुदीर्ण किन्तु उदीरणा योग्य) हैं, उन्हीं की ही उदीरणा होती है।

379. बंधे हुए कर्म कितने प्रकार के होते हैं?

उ. बंधे हुए कर्म दो प्रकार के होते हैं—दलिक और निकाचित।

380. दलिक कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म त्याग तपस्या व पुरुषार्थ के द्वारा तोड़े जा सकते हैं वे कर्म दलिक-कर्म कहलाते हैं।

381. निकाचित कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिन कर्मों का भोग–जीव को अवश्य भोगना पड़ता है वे कर्म निकाचित-कर्म कहलाते हैं।

382. संक्रमण किसे कहते हैं?

उ. जिस प्रयत्न विशेष से कर्म की उत्तर प्रकृतियों का अपनी सजातीय प्रकृतियों में बदल जाना संक्रमण है।

383. क्या सभी प्रकृतियों में संक्रमण होता है?

उ. ज्ञानावरणीय का मोहनीय आदि आठ कर्म प्रकृतियों का संक्रमण नहीं होता। आयुष्य कर्म की चारों उत्तर प्रकृतियों का आपस में संक्रमण नहीं होता। मोह कर्म की दर्शन मोह और चारित्र मोह का परस्पर संक्रमण नहीं होता। निधत्ति व निकाचित बंधी कर्म प्रकृतियों का संक्रमण नहीं होता। उदयावलि में प्रविष्ट कर्म का संक्रमण नहीं होता। शेष सभी कर्म प्रकृतियों का संक्रमण हो सकता है।

384. संक्रमण से क्या होता है?

उ. संक्रमण से प्रकृति, स्थिति, अनुभाग एवं प्रदेश का परिवर्तन होता है। एक कर्म अशुभ रूप में बंधता है एवं शुभ रूप में उदित होता है तथा एक कर्म शुभ रूप में बंधता है एवं अशुभ रूप में उदित होता है। कर्म के बंध और उदय में यह जो अन्तर माना है उसका कारण है संक्रमण (वध्यमान में कर्मान्तर का प्रवेश)।

संक्रमण में जीव अध्यवसायों से वध्यमान दलिकों के साथ पूर्वबद्ध कर्मों को संक्रान्त कर देता है, परिवर्तित कर देता है यही संक्रमण है। संक्रमण ही पुरुषार्थ के सिद्धान्त का ध्रुव आधार है। संक्रमण के अभाव में पुरुषार्थ का कोई महत्त्व नहीं रहता। संक्रमण की स्थिति हाइड्रोजन गैस से आक्सीजन और ऑक्सीजन से हाईड्रोजन गैस का परिवर्तन जैसी है।

385. उपशम किसे कहते हैं?

उ. मोहकर्म की सर्वथा अनुदयावस्था को उपशम कहते हैं। जिस समय मोहकर्म का प्रदेशोदय और विपाकोदय दोनों रुक जाते हैं वह अवस्था उपशम की है। यह स्थिति पूर्ण विराम के जैसी है।

386. उपशम कितने कर्मों का होता है?

उ. मात्र एक मोहनीय कर्म का।

387. उपशम में जब सर्वथा अनुदय है फिर इसे कर्म की अवस्थाओं में कैसे लिया गया?

उ. उपशम में सर्वथा अनुदय है, पर मोह कर्म सत्ता रूप में विद्यमान रहता है, इसलिए इसका कर्म की अवस्थाओं में ग्रहण किया गया है।

388. *उपशम कर्म की एक अवस्था है, फिर यह शुभ है या अशुभ, सावद्य है या निरवद्य?*

उ. मोहकर्म की उदयमान अवस्था के बीच में अन्तर्मुहूर्त तक सर्वथा अनुदय रहना उपशम है। उस समय में प्रकृति के अनुरूप सम्यक्त्व व चारित्र दोनों की प्राप्ति होती है, इसलिये वह अशुभ नहीं, शुभ है। सावद्य नहीं निरवद्य है।

389. *उपशम श्रेणी से गिरने के पश्चात् जीव संसार में उत्कृष्ट कितने काल तक भ्रमण कर सकता है?*

उ. अर्ध पुद्गल परावर्तन काल तक।

390. *उपशम श्रेणी वाला जीव यदि ग्यारहवें गुणस्थान में काल कर जाता है तो उसकी गति क्या है?*

उ. पांच अनुत्तर विमान।

391. *उपशम श्रेणी के अधिकारी कौन होते हैं?*

उ. उपशम श्रेणी में आरोहण करते समय जीव अप्रमत्तसंयत होता है। उपशम श्रेणी से गिरने पर वह पुनः प्रमत्त संयत अथवा अविरत हो जाता है।

कुछ आचार्य ऐसा भी मानते हैं कि अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत-इनमें से कोई भी जीव उपशम श्रेणी पर आरोहण कर सकता है।

392. *उपशम श्रेणी वाला जीव एक भव में उत्कृष्टतः उपशम श्रेणी कितनी बार ले सकता है?*

उ. दो बार। अनेक भवों की अपेक्षा चार बार।

393. *उपशम कौनसे गुणस्थान तक होता है?*

उ. दर्शन मोह का उपशम 4 से 11वें गुणस्थान तक होता है। चारित्र मोह का पूरा उपशम एक 11वें गुणस्थान में होता है। कुछ प्रकृतियों का उपशम 8वें, 9वें तथा 10वें गुणस्थानों में भी होता है। उपशान्त अवस्था को प्राप्त कर्म में उद्वर्तन, अपवर्तन एवं संक्रमण हो सकता है पर उसकी उदीरणा नहीं हो सकती है।

394. *उपशम श्रेणी से पतित होने पर गुणस्थानों में आने का क्रम क्या है?*

उ. उपशम श्रेणी चढ़ते समय जिस-जिस गुणस्थान में जिन-जिन प्रकृतियों का बंधविच्छेद किया था, उस-उस गुणस्थान में आने पर वे प्रकृतियां पुनः बंधने लगती है।

उपशम श्रेणी से पतित होते-होते जब जीव सातवें या छठे गुणस्थान में आया है उस समय संभल जाता है तो पुनः उपशम श्रेणी का आरोहण कर

सकता है। क्योंकि एक भव में दो बार उपशम श्रेणी चढ़ने का उल्लेख मिलता है।

यदि पतितोन्मुखी जीव सातवें या छठे गुणस्थान में नहीं संभलता है तो पांचवें और चौथे गुणस्थान में आ जाता है। यदि अनन्तानुबंधी चतुष्क का उदय आ जाता है तो सास्वादन सम्यक्दृष्टि होकर पुनः मिथ्यात्व में पहुंच जाता है।

395. निधत्ति किसे कहते हैं?

उ. कर्म की वह अवस्था जिसमें उदीरणा व संक्रमण नहीं होता, उद्वर्तना एवं संक्रमण हो सकते हैं, वह निधत्ति है। इसमें कर्म की वृद्धि एवं ह्रास को अवकाश रहता है। यह स्थिति तृणवनस्पति जैसी है, जो वर्षा में बढ़ती है और वर्षा के अभाव में घटती है।

396. निकाचना किसे कहते हैं?

उ. जिन कर्मों की जितनी स्थिति व विपाक है, उनको उसी रूप में भोगना निकाचना है। उनका आत्मा के साथ गाढ़ सम्बन्ध होता है।

397. निधत्ति व निकाचना में क्या अन्तर है?

उ. निकाचना में उद्वर्तन, अपवर्तन, उदीरणा, संक्रमण कुछ भी नहीं होता। यह स्थिति गोदरेज के ताले की सी है, जो दूसरी चाबियों से खुल नहीं सकता। निधत्ति में भी उदीरणा व संक्रमण नहीं होता पर उद्वर्तन और अपवर्तन होता है।

398. बंध, उदय, उदीरणा, वेदन, उद्वर्तन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्ति, निकाचना और निर्जरा ये कर्मों की अवस्थाएं हैं। ये आत्म-प्रदेशों से चलित कर्मों की होती है या अचलित कर्मों की?

उ. एक निर्जरा चलित कर्मों की होती है। शेष अवस्थाएं अचलित कर्मों में ही घटित होती है।[1]

399. किसी भी कार्य की निष्पत्ति में क्या केवल कर्म ही उत्तरदायी है?

उ. कार्य की निष्पत्ति में केवल कर्म ही उत्तरदायी नहीं है। इसके लिए कर्म सहित पांच कारण माने गए हैं—

(1) काल, (2) स्वभाव, (3) कर्म, (4) पुरुषार्थ, (5) नियति।

इन पांचों को समवाय कहा जाता है।

---

1. भ. श. 1, 3-1 सूत्र 28 से 31

400. काल को कारण क्यों कहा गया है?

उ. भाग्य, पुरुषार्थ एवं स्वभाव में काल की अपनी भूमिका है। कर्मों का बंध होने के बाद भी उनका फल एक निश्चित काल के बाद ही भोग में आता है। गुठली से वृक्ष बनने में मुख्य रूप से काल ही निमित्त बनता है। अव्यवहार राशिगत जीवों का व्यवहार राशि में आने में काल ही प्रमुख हेतु है। कृष्णपक्षी जीव के शुक्लपक्ष में आने में भी काल का परिपाक मुख्य है। किसी पुरुषार्थ, कर्म या स्वभाव से यह संभव नहीं है। प्रत्येक वस्तु को उत्पन्न करने वाला, स्थिर रखने वाला, संहार करने वाला तथा संयोग में वियोग एवं वियोग में संयोग कराने वाला काल ही तो है। इसीलिए काल को भी कारण के रूप में स्वीकार किया गया है।

401. स्वभाव को कारण क्यों माना गया है?

उ. प्रत्येक वस्तु का अपना स्वभाव होता है। आम की गुठली में अंकुरित होकर वृक्ष बनने का स्वभाव है अत: माली का पुरुषार्थ काम आता है। भाग्य फल देता है और काल के बल से अंकुर बनते हैं। पर बबूल का वृक्ष कभी आम उत्पन्न नहीं कर सकता।

402. कर्म को कारण क्यों माना गया है?

उ. दुनिया में जो विचित्रता दृष्टिगोचर हो रही है उसका एक मुख्य कारण कर्म भी है। एक ही मां के दो बच्चे जिसमें एक कुरूप है एक सुन्दर है, एक बुद्धिमान है एक मूर्ख, एक बलिष्ठ है एक कमजोर, ऐसा क्यों?

काल, पुरुषार्थ, स्वभाव, परिस्थिति आदि समान होने पर भी तथा एक ही मां-बाप के रज-वीर्य से उत्पन्न होने एवं एक जैसा लालन-पालन व वातावरण मिलने के बाद भी ये अन्तर क्यों? इसका एक ही उत्तर हो सकता है अपना-अपना कर्म। जिसके अच्छे कर्म हैं उसका शुभ के साथ संयोग है। जिसका कर्म बुरा है उसका अशुभ के साथ संयोग है। कर्म का हमारी आत्मा के साथ सर्वाधिक घनिष्ठ संबंध है। वातावरण, परिस्थिति आदि कर्म को प्रभावित कर सकते हैं सीधे आत्मा को नहीं। अत: कर्म को कारण माना गया है।

403. पुरुषार्थ को कारण क्यों माना गया है?

उ. संसार में भटकाने का काम है कर्म का, पर मुक्त करना कर्म का काम नहीं है। मुक्ति की प्राप्ति में सम्यक् पुरुषार्थ की सत्ता चलती है। पूर्व के अच्छे कर्म भी वर्तमान में बिना पुरुषार्थ अपना यथोचित परिणाम नहीं देते।

सामग्री उपलब्ध होने पर भी बिना पुरुषार्थ के कोई कार्य निष्पन्न नहीं होता। नियति को घड़ने वाला भी पुरुषार्थ ही तो है।

404. *नियति को कारण क्यों माना गया है?*

उ. नियति का अर्थ है होनहार, प्रकृतिगत व्यवस्था। निकाचित बंधने वाले कर्मों का समूह है नियति। पुरुषार्थ से नियति का निर्माण होता है। नियति के निर्मित होने के बाद पुरुषार्थ अकिंचित्कर हो जाता है। सही दिशा में पुरुषार्थ करने के बावजूद यदि उसका परिणाम विपरीत आता है, तो उसे नियति ही मानना होगा। इस प्रकार किसी भी कार्य की निष्पत्ति में पांचों कारणों की आवश्यकता होती है।

405. *जीवों की विचित्रता कर्मकृत है तो साम्यवाद कैसे? यदि वह अन्यकृत है तो कर्मवाद क्यों?*

उ. एक जीव की स्थिति दूसरे जीव से भिन्न है उसका कारण कर्म अवश्य है। पर केवल कर्म ही नहीं उसके अतिरिक्त काल, स्वभाव, नियति, उद्योग आदि अनेक का भी सहयोग है।

ज्ञानावरणीय कर्म

ज्ञानावरणीय कर्म

406. ज्ञान क्या है?

उ. जिससे जाना जाता है, वह ज्ञान है।

407. ज्ञान किसे कहते हैं?

उ. जो वस्तु के विशेष रूपों-भेदों का ग्राहक है, उसे ज्ञान कहते हैं।

408. ज्ञान का प्रयोजन क्या है?

उ. दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य आचार की सम्यक्-प्रवृत्ति व प्रयोग के लिए ज्ञान का प्रयोजन सिद्ध होता है।

409. ज्ञान की उत्पत्ति कैसे होती है?

उ. ज्ञान आत्मा का गुण है। ज्ञानावरण कर्म से वह गुण आवृत्त रहता है। ज्ञानावरण का जितना-जितना विलय होता है उतनी-उतनी जानने की क्षमता प्रकट होती है, यही ज्ञान की उत्पत्ति है।

410. ज्ञान के कितने प्रकार हैं?

उ. ज्ञान के पांच प्रकार हैं—(1) मतिज्ञान, (2) श्रुतज्ञान, (3) अवधिज्ञान, (4) मनःपर्यवज्ञान, (5) केवलज्ञान।

411. मतिज्ञान किसे कहते हैं?

उ. पांच इन्द्रियों व मन के निमित्त से जो ज्ञान होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं।

412. मतिज्ञान का दूसरा नाम क्या है?

उ. आभिनिबोधिक। अभि-सम्मुख-सामने, नि-निश्चयात्मक, बोध-ज्ञान अर्थात् प्रतिनियत अर्थ को ग्रहण करने वाला अर्थाभिमुखी ज्ञान अभिनिबोध है, इसे ही आभिनिबोधिक कहते हैं।

413. मतिज्ञान का कालमान कितना है?

उ. मतिज्ञानी जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त तक उपयुक्त रह सकता है। आवरण क्षयोपशम की अपेक्षा से जघन्य लब्धिकाल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। उत्कृष्ट काल साधिक छियासठ सागरोपम है।[1]

---

1. तैंतीस सागरोपम आयुष्य वाले विजय आदि अनुत्तरविमानों में दो बार अथवा बाईस सागरोपम आयुष्य वाले अच्युत आदि विमानों में तीन बार उत्पन्न होने वाले मतिज्ञानी देवों का लब्धिकाल छियासठ सागरोपम है। इसमें मनुष्य भव का कालमान मिलाने पर साधिक हो जाता है। यह कथन एक मतिज्ञानी की अपेक्षा से है। अनेक मतिज्ञानी जीवों की अपेक्षा मतिज्ञान का कालमान सर्वकाल है।

414. मतिज्ञान के कितने प्रकार हैं?

उ. मतिज्ञान के दो प्रकार हैं—श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित।

415. श्रुतनिश्रित मतिज्ञान किसे कहते हैं?

उ. जो मति श्रुत से संस्कारित है, किन्तु वर्तमान व्यवहारकाल में श्रुत से निरपेक्ष है, वह श्रुतनिश्रित मति है। अथवा जिसकी मति शास्त्राभ्यास से परिष्कृत हो गई है उस व्यक्ति को ज्ञान की उत्पत्ति के समय शास्त्र की पर्यालोचना के बिना जो मतिज्ञान उत्पन्न होता है, वह श्रुतनिश्रित है।

416. श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के कितने प्रकार हैं?

उ. श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के चार प्रकार हैं—

1. अवग्रह—इन्द्रिय और अर्थ का योग होने पर जो अस्तित्व का बोध होता है, उसे अवग्रह कहते हैं। जैसे—यह कुछ है।
2. ईहा—''अमुक होना चाहिए'' इस स्थिति तक पहुंचने का नाम ईहा है। जैसे—यह सर्प होना चाहिए।
3. अवाय—''अमुक ही है'' ऐसे निर्णयात्मक ज्ञान को अवाय कहते हैं। जैसे—यह सर्प ही है।
4. धारणा—निर्णयात्मक ज्ञान की अवस्थिति धारणा है। यह धारणा ही आगे चलकर स्मृति के रूप में परिणत हो जाती है। (इसके अतिरिक्त श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के 28[1] व 336[2] प्रकार भी हैं।)

417. अवग्रह के कितने प्रकार हैं?

उ. अवग्रह के दो प्रकार हैं—व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह।

* व्यंजनावग्रह—इन्द्रिय और अर्थ का संयोग होने से वस्तु का जो अव्यक्त बोध होता है, वह व्यंजनावग्रह है।

* अर्थावग्रह—व्यंजनावग्रह की अपेक्षा कुछ व्यक्त (स्पष्ट) बोध होना अर्थावग्रह है।

---

1. अट्ठाईस भेद—अवग्रह (अर्थावग्रह) ईहा, अवाय और धारणा के छह-छह (पांच इन्द्रियां और मन) भेद हैं। व्यञ्जनावग्रह के (चक्षु और मन को छोड़कर) चार भेद हैं। इस प्रकार श्रुतनिश्रित मति के अट्ठाईस भेद होते हैं।
2. तीन सौ छत्तीस भेद—श्रुतनिश्रित मति के अवग्रह आदि अट्ठाईस भेदों को बहु-अबहु, बहुविध-अबहुविध, क्षिप्र और अक्षिप्र, अनिश्रित-निश्रित, निश्चित-अनिश्चित, ध्रुव-अध्रुव इन बारह भेदों से गुणन करने पर मतिज्ञान के 28×12 = 336 भेद होते हैं।

418. व्यंजनावग्रह किनका नहीं होता?

उ. चक्षु और मन का व्यंजनावग्रह नहीं होता।

419. मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के क्रम से ही उत्पन्न होता है या इसमें व्यतिक्रम से?

उ. क्रम से ही उत्पन्न होता है। क्योंकि इनका उत्क्रम या व्यतिक्रम होने पर अथवा एक का भी अभाव होने पर वस्तु के स्वभाव का बोध नहीं होता।

420. अवग्रह आदि का कालमान क्या है?

उ. (1) अवग्रह-एक समय, (2) ईहा—अन्तर्मुहूर्त, (3) अवाय-अन्तर्मुहूर्त, (4) धारणा-संख्यात, असंख्यातकाल।

421. अश्रुतनिश्रित मति किसे कहते हैं?

उ. शास्त्राभ्यास के बिना क्षयोपशमजन्य मति का पर्यालोचन अश्रुतनिश्रित मति है।

422. अश्रुतनिश्रित मति के कितने प्रकार हैं?

उ. अश्रुतनिश्रित मति के चार प्रकार हैं—

(1) औत्पत्तिकी बुद्धि, (2) वैनयिकी बुद्धि, (3) कार्मिकी बुद्धि, (4) परिणामिकी बुद्धि।

423. औत्पत्तिकी बुद्धि किसे कहते हैं?

उ. जिसे कभी देखा नहीं, जिसके बारे में कभी सुना नहीं, उसके विषय में जो तत्काल ज्ञान हो जाता है, उसे औत्पत्ति बुद्धि कहते हैं। उदाहरण :

(1) औत्पत्तिकी बुद्धि—(1) भरतशीला, (2) शर्त, (3) वृक्ष, (4) मुद्रिका, (5) वस्त्रखण्ड, (6) गिरगिट, (7) कौआ, (8) उत्सर्ग, (9) हाथी, (10) भाण्ड, (11) लाख की गोली, (12) स्तम्भ, (13) क्षुल्लक, (14) मार्ग, (15) स्त्री, (16) पति, (17) पुत्र, (18) मधुमक्खियों का छाता, (19) मुद्रिका, (20) अंक, (21) रुपयों की नोली, (22) भिक्षु, (23) बालक का निधान, (24) शिक्षा, (25) अर्थशास्त्र, (26) मेरी इच्छा, (27) एक लाख, (28) मेढ़ा[1], (29) मुर्गा, (30) तिल, (31) बालुका (आव.नि.241), (32) हाथी,

1. देखें कथा सं. 6

(33) कूप, (34) वनखण्ड, (35) खीर, (36) अजिका, (37) पत्र, (38) बकरी की मेंगनी अथवा गिलहरी, (39) पांच पिता

नंदी 38/3, 4 आवश्यक निर्युक्ति 940, 942

424. *वैनयिकी बुद्धि किसे कहते हैं?*

उ. *विनय (शिक्षा)* से उत्पन्न होने वाली बुद्धि वैनयिकी बुद्धि है। उदाहरण– वैनयिकी बुद्धि–(1) निमित्त (2) अर्थशास्त्र (3) लेख (4) गणित (5) कूप (6) अश्व (7) गर्दभ (8) लक्षण (9) गांठ (10) औषध[1] (11) रथिक-गणिका (12) आर्द्र साड़ी-दीर्घ तृण–उल्टा घूमता हुआ क्रौच पक्षी (13) नीव्रोदक (छत का पानी) (14) बैल घोड़े और वृक्ष से गिरना।

आवश्यक निर्युक्ति 944, 945

425. *कार्मिकी बुद्धि किसे कहते हैं?*

उ. अभ्यास करते-करते उत्पन्न होने वाली बुद्धि कार्मिकी बुद्धि है।
कर्मजा बुद्धि—(1) स्वर्णकार (2) कृषक[2] (3) जुलाहा (4) दर्वी (5) मणिकार (6) धृत व्यापारी (7) तैराक (8) रफू करने वाला (9) बढ़ई (10) रसोईया (11) कुम्भकार (12) चित्रकार

426. *पारिणामिकी बुद्धि किसे कहते हैं?*

उ. अवस्था के परिपाक से उत्पन्न होने वाली बुद्धि पारिणामिकी बुद्धि है।
पारिणामिकी बुद्धि—(1) अभयकुमार (2) श्रेष्ठी (3) कुमार (4) देवी (5) उदीतोदीत राजा (6) साधु (7) नंदीषेण[3] (8) धनदत्त (9) श्रावक (10) मंत्री (11) क्षपक (12) अमात्य (13) चाणक्य (14) स्थूलभद्र (15) नासिकपुर=सुन्दरीनंद (16) वज्र (17) चरण से हत (18) कृत्रिम आंवला (19) मणि (20) सांप (21) गेंडा (22) स्तूप उखाड़ना।

---

1. देखें कथा सं. 7
2. देखें कथा सं. 8
3. देखें कथा सं. 9

नोट : औत्पत्ति की आदि चारों बुद्धि के शेष सम्पूर्ण उदाहरणों के लिए देखें–आवश्यक हारिभद्रियावृत्ति। पृ. 277-282

427. जाति-स्मृति ज्ञान किसे कहते हैं?

उ. पूर्वजन्म की स्मृति को जाति-स्मृति ज्ञान कहते हैं।

428. पूर्वजन्म की स्मृति होने के क्या कारण हो सकते हैं?

उ. ज्ञाताधर्मकथा में पूर्वजन्म की स्मृति होने के चार कारण निर्दिष्ट हैं—

(1) मोहनीय कर्म का उपशम।

(2) अध्यवसायों की शुद्धि अथवा लेश्या की शुद्धि।

(3) ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा।

(4) जाति-स्मृति ज्ञान को आवृत करने वाले कर्मों का क्षयोपशम।

429. जातिस्मृति ज्ञान कब उत्पन्न होता है?

उ. शुभ परिणाम और लेश्या की विशुद्धि के क्षणों में जाति-स्मृति ज्ञान उत्पन्न होता है। जाति-स्मृति ज्ञान के लिए चारित्र मोहनीय का उपशान्त होना भी आवश्यक है।

430. जाति-स्मृति ज्ञान क्या स्वतंत्र ज्ञान नहीं है?

उ. जाति-स्मृति ज्ञान स्वतंत्र नहीं है। यह मतिज्ञान का ही भेद है।

431. जाति-स्मृति कितने भवों की हो सकती है?

उ. असंज्ञी का भव बीच में न हो तो नौ जन्मों तक की स्मृति हो सकती है।

432. जाति-स्मृति ज्ञान के कितने प्रकार हैं?

उ. जाति-स्मृति ज्ञान के दो प्रकार हैं—

1. सनिमित्तक—किसी बाह्य निमित्त को पाकर होने वाली पूर्वजन्म की स्मृति। जैसे वल्कलचीरी आदि।[1]
2. अनिमित्तक—बिना किसी निमित्त के केवल ऐसे ही जाति-स्मृति। आवारक कर्मों के क्षयोपशम से होने वाली पूर्वजन्म की स्मृति। जैसे स्वयंबुद्ध कपील आदि।

433. मतिज्ञान का विषय क्या है?

उ. मतिज्ञानी द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की अपेक्षा से सर्व द्रव्यों, क्षेत्रों, काल और भावों को जानता है देखता नहीं है।

434. मतिज्ञान का क्षेत्र कितना है?

उ. मतिज्ञान का क्षेत्र है—ऊर्ध्वलोक में सात रज्जू तथा अधोलोक में पांच रज्जू।

---

1. देखें कथा सं. 10

435. मतिज्ञान का विरहकाल कितना है?

उ. एक व्यक्ति की अपेक्षा सम्यक्त्व से प्रतिपतित मतिज्ञान का विरहकाल जघन्यत: अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत: देशोन अर्धपुद्गलपरावर्त है।

436. मतिज्ञान से शून्य कौन-कौन जीव होते हैं?

उ. एकेन्द्रिय जीव (पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति), मिश्रदृष्टि, सर्वज्ञ, अ-परित, अभव्य, अ-चरम ये सब मतिज्ञान से शून्य हैं।

437. श्रुतज्ञान किसे कहते हैं?

उ. शब्द, संकेत आदि के सहारे उत्पन्न या अभिव्यक्त होने वाले मतिज्ञान को ही श्रुतज्ञान कहते हैं।

438. श्रुतज्ञान के कर्ता कौन हैं?

उ. श्रुतज्ञान के कर्ता केवलज्ञानी है। जिसके बल पर परोक्षज्ञानी भी प्रत्यक्षज्ञानी की भांति जीव, अजीव आदि सभी भावों को जान लेते हैं।

439. श्रुतस्थान में कौन आते हैं?

उ. गणी (आचार्य), उपाध्याय, वाचनाचार्य, प्रवर्तक आदि—ये श्रुतस्थान है।

440. श्रुतग्रहण की प्रक्रिया (विधि) क्या है?

उ. श्रुतग्रहण की विधि के सात सूत्र हैं—

1. शिक्षित—याद करना, कंठस्थ कर लेना।
2. स्थित—अप्रच्यूत बना लेना, हृदय में अवस्थित कर लेना।
3. चित्त—शीघ्र याद आ जाना।
4. मित—वर्ण आदि का संख्या परिमाण जान लेना।
5. परिचत—उत्क्रम या प्रतिलोम पद्धति से दोहरा लेना।
6. नामसम—अपने नाम के समान सदा स्मृति में अवस्थित रखना।
7. घोष सम—वाचनाचार्य द्वारा कृत उदात्त-अनुदात्त-स्वरित घोष के समान घोष ग्रहण करना।

441. श्रुत-अध्ययन का उद्देश्य क्या है?

उ. उत्तराध्ययन सूत्र में सूत्र-अध्ययन के चार उद्देश्य बतलाये गये हैं—

1. मुझे श्रुत का लाभ होगा, ज्ञान बढ़ेगा।
2. मैं एकाग्रचित्त हो पाऊंगा।
3. मैं स्वयं को धर्म में स्थापित करूंगा।
4. मैं स्वयं धर्म में स्थापित होकर दूसरों को स्थापित करूंगा।

442. अयोग्य को वाचना देने से क्या होता है?

उ. 1. आचार्य और श्रुत का अवर्णवाद होता है, अपयश होता है।
2. सूत्र और अर्थ की हानि होती है।
3. अयोग्य को वाचना देने वाला क्लेश का अनुभव करता है। और प्रायश्चित्त का भागी बनता है।

443. श्रुत ज्ञान के चौदह प्रकारों को परिभाषित करें?

उ. 1. अक्षरश्रुत—वर्णाक्षरों के माध्यम से व्याख्या करना।
2. अनक्षरश्रुत—अंगुली आदि के संकेत से भावों को प्रकट करना।
3. संज्ञीश्रुत—गर्भजप्राणी का श्रुत।
4. असंज्ञीश्रुत—अमनस्क प्राणी का श्रुत।
5. सम्यक्श्रुत—सम्यक्त्वी जीव और मोक्ष का सहायक श्रुत।
6. मिथ्याश्रुत—मिथ्यात्वी जीव और मोक्ष का बाधक श्रुत।
7. सादिश्रुत—आदि सहित श्रुत।
8. अनादिश्रुत—आदि रहित श्रुत।
9. सपर्यवसितश्रुत—अन्त सहित श्रुत।
10. अपर्यवसितश्रुत—अन्त रहित श्रुत
11. गमिक श्रुत—जो रचना सदृश पाठ प्रधान है, वह गमिक श्रुत है। जैसे दृष्टिवाद।
12. अगमिकश्रुत—जिस श्रुत रचना में सदृश पाठ न हो वह अगमिक श्रुत है। आचारांग आदि।
13. अंगप्रविष्टश्रुत—गणधरों द्वारा रचे हुए आगम–आचारांग आदि।
14. अनंगप्रविष्टश्रुत—गणधरों के अतिरिक्त अन्य आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थ।

444. जीव में श्रुतज्ञान की नियमा है या भजना?

उ. श्रुतज्ञान नियमत: जीव है। जीव में तीन स्थानों से श्रुतज्ञान की भजना है—वह कभी श्रुतज्ञानी होता है, कभी श्रुतअज्ञानी होता है और कभी *केवलज्ञानी होता है।*

445. श्रुतज्ञान स्व-उपकारी है अथवा पर उपकारी?

उ. श्रुतज्ञान से मति आदि चारों ज्ञान जाने जाते हैं तथा उनकी प्ररूपणा होती है। अत: चार ज्ञान स्व-उपकारी हैं—और श्रुतज्ञान पर-उपकारी है।

446. श्रुतज्ञान का महत्त्व क्या है?

उ. श्रुत की आराधना से जीव अज्ञान का क्षय करता है और राग-द्वेष आदि उत्पन्न होने वाले मानसिक संक्लेशों से बचता है।

आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार-सामायिक (आवश्यक) से बिन्दुसार (चौदहपूर्व) पर्यन्त शास्त्र श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान का सार चारित्र है। चारित्र का सार निर्वाण है।

447. श्रुत परावर्तन की निष्पत्ति क्या है?

उ. श्रुत परावर्तन की चार निष्पत्तियां हैं—

* एकाग्रता—श्रुतपरावर्तन से चित्त एकाग्र होता है।
* महानिर्जरा—स्वाध्याय प्रत्यया से महान निर्जरा होती है।
* अपरिमंथ—कालज्ञान के लिए सूर्यछाया का मापन नहीं करना पड़ता। अतः सूत्र–अर्थ का व्याघात नहीं होता।
* स्वायत्तता—जैसे छद्मस्थ साधु का ज्ञान सूर्यछाया के अधीन होता है, वैसे श्रुत परावर्तन से भावित साधु का पौरुषी आदि कालविषयक ज्ञान पराधीन नहीं होता।

448. श्रुतज्ञान का विषय क्या है?

उ. श्रुतज्ञानी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से सर्व द्रव्यों, क्षेत्रों, काल और भावों को जानता है, देखता है।

''श्रुतज्ञानी अदृष्ट द्वीप-समुद्रों और देवकुरु–उत्तरकुरु के भवनों की आकृतियों (संस्थानों) का इस रूप में आलेखन करता है कि मानो उन्हें साक्षात् देखा हो। अतः श्रुतज्ञानी जानता है, देखता है—यह सही है।''

—आवश्यक चूर्णि-1 पृ.-35-36

449. जघन्य श्रुत का हेतु क्या है?

उ. 'स्त्यानर्द्धि निद्रायुक्त ज्ञानावरण के उदय के कारण एकेन्द्रिय जीवों के अक्षर के अनन्तवें भाग जितना सर्वजघन्य चैतन्य सदा उद्घाटित रहता है, वह कभी आवृत नहीं होता।

450. जीवों में श्रुतज्ञान विशुद्धि का तारतम्यता का क्रम किस प्रकार का है?

उ. अनुत्तरोपपातिक देवों का श्रुतज्ञान सर्वाधिक विशुद्ध होता है। उससे असंख्यातगुण परिहीन श्रुतज्ञान होता है उपरितन ग्रैवेयक देवों का। इस प्रकार क्रमशः असंख्येयगुण परिहीन की शृंखला में पृथ्वीकायिक जीवों का श्रुतज्ञान सर्वाधिक अविशुद्ध होता है।

451. मतिज्ञान व श्रुतज्ञान में क्या अन्तर हैं?

उ. मतिज्ञान व श्रुतज्ञान में निम्नलिखित अन्तर हैं—

1. मतिज्ञान मनन प्रधान है, श्रुतज्ञान शब्द प्रधान है।
2. *मतिज्ञान से स्वगत बोध होता है, श्रुतज्ञान से स्व और पर दोनों का* बोध होता है।
3. मतिज्ञान वार्तमानिक है, श्रुतज्ञान त्रैकालिक है।
4. मतिपूर्वक श्रुत होता है, पर श्रुतपूर्वक मति नहीं होता।
5. मतिज्ञान कारण है, श्रुतज्ञान कार्य है।
6. मतिज्ञान हेतु है, श्रुतज्ञान फल है।
7. मतिज्ञान मूक है, श्रुतज्ञान अमूकतुल्य वचनात्मक है।
8. मतिज्ञान अनक्षरात्मक है, श्रुतज्ञान अक्षरात्मक है।
9. मतिज्ञान वल्कल (छाल) के समान है, श्रुतज्ञान डोरी के समान है।
10. मतिज्ञान के अवग्रह आदि अट्ठाईस भेद हैं, श्रुतज्ञान के 14 भेद हैं।
11. श्रुतज्ञान केवल श्रोत्रेन्द्रिय से सम्बन्धित है, मतिज्ञान शेष इन्द्रियों से सम्बन्धित है।

452. मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में अभेद क्या है?

उ. मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में निम्न दृष्टियों से अभेद है—

1. अधिकारी—जो मतिज्ञान का अधिकारी है, वही श्रुतज्ञान का अधिकारी है।
2. काल—जितनी स्थिति मतिज्ञान की है, उतनी ही श्रुतज्ञान की स्थिति है।
3. कारण—दोनों ज्ञान क्षयोपशम हेतुक हैं।
4. परोक्षत्व—इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने के कारण दोनों ज्ञान परोक्ष हैं।
5. मति और श्रुत होने पर ही अवधि आदि शेष ज्ञान होते हैं।

453. समुच्चय रूप से श्रुत कितने प्रकार का है?

उ. समुच्चय रूप से श्रुत के चार प्रकार कहे गये हैं—

(1) द्रव्यत:, (2) क्षेत्रत:, (3) कालत:, (4) भावत:।

द्रव्यतः—एक पुरुष की अपेक्षा सादि-सांत है और अनेक पुरुषों की अपेक्षा अनादि-अनन्त है।

क्षेत्रतः—पांच भरत और पांच ऐरवत की अपेक्षा सादि-सांत है, महाविदेह की अपेक्षा अनादि अनन्त है।

कालतः—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी की अपेक्षा सादि-सान्त है। जहाँ काल के विभाग नहीं है, अर्थात् नो उत्सर्पिणी नो अवसर्पिणी काल की अपेक्षा अनादि सान्त है।

भावतः—तीर्थंकरों ने जिस समय जो भाव प्रकट किये उन भावों की अपेक्षा वह सादि-सान्त है। क्षायोपशमिक भाव की अपेक्षा अनादि-अनन्त है। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि मोक्षगामी भव्य की अपेक्षा सादि-सांत है, अभव्य की अपेक्षा अनादि-अनन्त है।

454. श्रुतज्ञान के नाश के क्या कारण हैं?

उ. श्रुतज्ञान के नाश के पांच कारण हैं—(1) मिथ्यात्व, (2) भवान्तर गमन, (3) केवलज्ञान की प्राप्ति, (4) रुग्ण शरीर, (5) प्रमाद आदि।

455. अवधिज्ञान किसे कहते हैं?

उ. (1) अवधि का अर्थ है—मर्यादा। जिस ज्ञान की मर्यादा है केवल रूपी द्रव्यों को जानना, वह ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है।

(2) एकाग्रता की विशिष्ट स्थिति में संसार के मूर्त पदार्थों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान है।

(3) इन्द्रिय मन की सहायता के बिना आत्मा से होने वाला मूर्त पदार्थों का ज्ञान, अवधिज्ञान कहलाता है।

456. अवधिज्ञान के कितने भेद हैं?

उ. अवधिज्ञान के दो भेद हैं—

(1) भवप्रत्ययिक-भवहेतुक अवधिज्ञान।

(2) क्षायोपशमिक-अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न अवधिज्ञान।

457. भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान किनके होता है?

उ. देवता और नारक—इन दोनों के अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक होता है।[1]

---

1. यह अवधिज्ञान क्षेत्र की अपेक्षा से है। जब तक नारक और देव नरकगति और देवगति में रहते हैं तब तक ही यह ज्ञान उनके साथ रहता है।

458. क्या भव-प्रत्यय अवधिज्ञान क्षयोपशमजन्य नहीं होता है?

उ. अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम तो उसमें भी होता है तथापि उसकी उत्पत्ति में भव की प्रधानता होने के कारण उसे भव-प्रत्यय ज्ञान कहा गया है।

459. अवधिज्ञान क्षायोपशमिक भाव है और देवगति व नरकगति औदयिक भाव है, तब देव और नारक का अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक कैसे हो सकता है?

उ. देव और नारक को अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से ही प्राप्त होता है, किन्तु उस भव में उनके अवश्य होता है, इसलिए वह भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कहलाता है।

460. क्षायोपशमिक अवधिज्ञान किसके होता है?

उ. क्षायोपशमिक अवधिज्ञान संख्यात वर्ष वाले गर्भज मनुष्य और तिर्यंच के तथा गुणप्रतिपन्न (मूलगुण और उत्तरगुणों से प्रतिपन्न) अनगार के होता है।

461. अवधिज्ञान कितने प्रकार का होता है?

उ. अवधिज्ञान छह प्रकार का होता है—

1. आनुगमिक—जो सर्वत्र अवधिज्ञानी के साथ-साथ चलता है। इसमें क्षेत्रीय प्रतिबद्धता नहीं है।
2. अनानुगामिक—जो ज्ञान उत्पत्ति क्षेत्र में ही बना रहता है। उस क्षेत्र को छोड़ते ही वह लुप्त हो जाता है।
3. वर्धमान—जो उत्पत्तिकाल से द्रव्य, क्षेत्र आदि में क्रमशः बढ़ता है।
4. हीयमान—जो उत्पत्तिकाल से द्रव्य, क्षेत्र आदि में क्रमशः हीन होता है।
5. प्रतिपाति—जिसका पतन हो जाता है।
6. अप्रतिपाति—जिसका पतन नहीं होता है।

462. क्या मनुष्यों का अवधिज्ञान अप्रतिपातिक होता है?

उ. मनुष्य व तिर्यंच के अवधिज्ञान प्रतिपाति व अप्रतिपातिक दोनों होते हैं। देव और नारक के अवधिज्ञान अप्रतिपातिक होता है।

463. अवधिज्ञान का विषय क्या है?

उ. अवधिज्ञान का विषय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से चार प्रकार का है—

1. द्रव्य से–अवधिज्ञानी जघन्यत: अनन्त रूपी द्रव्यों को तथा उत्कृष्टत: सर्वरूपी द्रव्यों को जानता देखता है।
2. क्षेत्र से–अवधिज्ञानी जघन्यत: अंगुल का असंख्यातवां भाग तथा उत्कृष्टत: अलोक में लोक प्रमाण असंख्य खंडों को जानता देखता है।
3. काल से–अवधिज्ञानी जघन्यत: आवलिका के असंख्यातवें भाग को जानता देखता है, तथा उत्कृष्टत: अतीत और अनागत काल के असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी को जानता देखता है।
4. भाव से–अवधिज्ञानी जघन्यत: तथा उत्कृष्टत: अनन्त भावों को जानता देखता है। वे अनन्त भाव भी सब भावों का अनन्तवां भाग है।

464. *वर्तमान-काल अवधिज्ञान का विषय बनता है या नहीं?*

उ. नहीं, क्योंकि वर्तमानकाल सूक्ष्म होता है।

465. *परम अवधिज्ञान का कालमान कितना है?*

उ. परम अवधिज्ञान का कालमान है—अन्तर्मुहूर्त। उसके पश्चात् केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

466. *बाह्यलब्धि और आभ्यन्तरलब्धि अवधिज्ञान किसे कहते हैं?*

उ. बाह्यलब्धि–अवधिज्ञान—जिस स्थान में अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है, उसी स्थान पर स्थित अवधिज्ञान कुछ नहीं देख पाता। उस स्थान से हटकर अंगुल, अंगुल पृथक्त्व, यावत् संख्येय योजन अथवा असंख्येय योजन दूर जाने पर देख पाता है, यह बाह्यलब्धि अवधिज्ञान है।

आभ्यन्तरलब्धि–अवधिज्ञान—जिस स्थान में अवधिज्ञान उत्पन्न होता है उस स्थान से अवधिज्ञानी निरन्तर संबद्ध संख्येय अथवा असंख्येय योजन क्षेत्र को अवधि से जानता है देखता है, वह आभ्यन्तरलब्धि अवधिज्ञान कहलाता है।

467. *चारों गति के जीवों में से कौनसे अवधिज्ञानी सर्वत: देखते हैं और कौनसे देशत: ?*

उ. नैरयिक, देव और तीर्थंकर अबाह्य अवधिज्ञान वाले होते हैं—वे सर्वत: देखते हैं। शेष (अन्तगत अवधिज्ञान वाले) मनुष्य और तिर्यंच एक देश से देखते हैं।

468. अवधिज्ञान का संस्थान क्या है?

उ. जघन्य अवधि का संस्थान जलबिंदु के समान[1] और सर्वोत्कृष्ट अवधि का संस्थान लोक की अपेक्षा से कुछ दीर्घता लिए आयत वृत्ताकार होता है।[2] मध्यम अवधि का संस्थान अनेक प्रकार का होता है।[3]

469. चारों गतियों में उत्कृष्ट और जघन्य अवधिज्ञान किसमें होता है?

उ. उत्कृष्ट अवधिज्ञान मनुष्यों में ही होता है, अन्य योनियों में नहीं होता। जघन्य अवधिज्ञान मनुष्यों और तिर्यंचों में ही होता है। मध्यम अवधिज्ञान चारों गतियों में होता है।

470. अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र कितना है?

उ. अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र—तीन समय का आहारक सूक्ष्म पनक (वनस्पति विशेष) जीव के शरीर की अवगाहना जितना।[4]

471. अवधिज्ञान द्वारा जानने की क्षेत्र मर्यादा क्या है?

उ. भवनपति और व्यन्तर देवों का अवधिज्ञान ऊर्ध्व लोक को अधिक जानता है। वैमानिक देवों का अवधिज्ञान अधोलोक को अधिक जानता है। ज्योतिष्क और नारकीय देवों का अवधिज्ञान तिर्यग्लोक को अधिक जानता है। तिर्यंच और मनुष्यों का अवधिज्ञान औदारिक अवधिज्ञान होने से विविध प्रकार का होता है।

472. श्रावक को अवधिज्ञान की प्राप्ति पहले होती है अथवा देशविरति?

उ. श्रावक को देशविरति की प्राप्ति पहले होती है। क्योंकि देशविरति आदि गुणों के अभ्यास के पश्चात् ही अवधिज्ञान प्राप्त होता है।

---

1. आवश्यक निर्युक्ति-54
2. आवश्यक चूर्णि-1, पृ. 55
3. नारक जीवों का अवधिज्ञान तत्प्राकार होता है। भवनपति देवों का अवधि पल्लक (धान्यकोष्ठक) के आकारवाला, व्यन्तर देवों का पटह के आकार वाला, ज्योतिष्क देवों का झल्लरी (आतोद्यविशेष) के आकार वाला, ग्रैवेयक देवों का पुष्पचंगेरी के आकार वाला, सौधर्म आदि कल्पवासी देवों का मृदंग के आकार वाला तथा अनुत्तर विमानवासी देवों का अवधिज्ञान यवनालक (कन्या चोलक) के आकारवाला होता है। स्वयंभूरमण समुद्र के मत्स्यों की भांति तिर्यंच और मनुष्यों का अवधिज्ञान नाना संस्थान वाला होता है। उन मत्स्यों में वलयकार मत्स्य नहीं होते, किंतु तिर्यंच और मनुष्य के अवधिज्ञान का संस्थान वलयाकार भी होता है।
4. नंदी 18/1

473. अवधिज्ञान किसे प्राप्त होता है?

उ. जो मतिज्ञान का प्रतिपत्ता (प्राप्त करने वाला) है, वही अवधिज्ञान का प्रतिपत्ता है। औपशमिक और क्षपकश्रेणी की अवस्था में अवेदक और अकषायी को अवधिज्ञान प्राप्त होता है। ये मतिज्ञान से अतिरिक्त स्थान है। जिन्हें मन:पर्यवज्ञान पहले प्राप्त हो जाता है, उन्हें अवधिज्ञान बाद में प्राप्त होता है। इस मतिज्ञान से अवधिज्ञान के तीन स्थान अधिक हैं।

(1) अवेदक, (2) अकषायी, (3) मन: पर्यव के पश्चात्।

474. अवधिज्ञान के द्वारा देखने की शक्ति का परिमाण बताएं?

उ. अवधिज्ञान के द्वारा देखने की शक्ति का यंत्र—

नाम	जघन्य	उत्कृष्ट
रत्नप्रभा	3½ गव्यूत	4 गव्यूत
शर्कराप्रभा	3 गव्यूत	3½ गव्यूत
बालुकाप्रभा	2½ गव्यूत	3 गव्यूत
पंकप्रभा	2 गव्यूत	2½ गव्यूत
धूमप्रभा	1½ गव्यूत	2 गव्यूत
तम:प्रभा	1 गव्यूत	1½ गव्यूत
महातम:प्रभा	½ गव्यूत	1 गव्यूत
असुर कुमार	25 योजन	असंख्यात द्वीप समुद्र
नौ निकाय[1]	25 योजन	संख्यात द्वीप समुद्र
व्यन्तर	25 योजन	संख्यात द्वीप समुद्र
ज्योतिषी	अंगुल का असंख्यातवां भाग	ससंख्यात द्वीप समुद्र
संज्ञी तिर्यंच	अंगुल का असंख्यातवां भाग	असंख्यात द्वीप समुद्र
संज्ञी मनुष्य	अंगुल का असंख्यातवां भाग	अलोक में लोक जितने असंख्य खंड
1, 2 देवलोक	अंगुल का असंख्यातवां भाग	अधोलोक में रत्नप्रभा का चरमांत
3, 4 देवलोक	अंगुल का असंख्यातवां भाग	अधोलोक में शर्कराप्रभा का चरमांत
5, 6 देवलोक	अंगुल का असंख्यातवां भाग	अधोलोक में बालुकाप्रभा का चरमांत
7, 8 देवलोक	अंगुल का असंख्यातवां भाग	अधोलोक में पंकप्रभा का चरमांत

1. असुर कुमार के अतिरिक्त शेष भवनपति देवों के लिए समुच्चय रूप में नौ निकाय शब्द प्रयुक्त होता है।

नाम	जघन्य	उत्कृष्ट
9 से 12 देवलोक	अंगुल का असंख्यातवां भाग	अधोलोक में धूमप्रभा का चरमांत
1 से 6 ग्रैवेयक	अंगुल का असंख्यातवां भाग	अधोलोक में तमःप्रभा का चरमांत
7 से 9 ग्रैवेयक	अंगुल का असंख्यातवां भाग	अधोलोक में महातमः प्रभा

पांच अनुत्तर विमान जघन्य उत्कृष्ट सम्पूर्ण लोक में कुछ कम देखते हैं।[1]

475. मतिश्रुतज्ञान और अवधिज्ञान में अभेद (समानता, साधर्म्य) क्या है?

उ. मतिश्रुतज्ञान और अवधिज्ञान में चार प्रकार से अभेद परिलक्षित होता है—

1. काल-एक जीव की अपेक्षा से जितना काल मति और श्रुतज्ञान का है उतना ही अवधिज्ञान का है।
2. विपर्यय-मिथ्यात्व का उदय होने पर मति और श्रुतज्ञान अज्ञान में बदल जाते हैं, वैसे ही अवधिज्ञान विभंगज्ञान में बदल जाता है।
3. स्वामित्व-मति और श्रुतज्ञान का स्वामी ही अवधिज्ञान का स्वामी होता है।
4. किसी को कभी तीनों ज्ञान एक साथ प्राप्त हो जाते हैं।

476. अवधिज्ञान पहले होता है अथवा अवधिदर्शन?

उ. पहले अवधिज्ञान होता है। सारी लब्धियां साकार उपयोग की अवस्था में ही उत्पन्न होती हैं। अवधि भी एक लब्धि है। इसलिए पहले ज्ञान रूप में ही उत्पन्न होती है। उपयोग की प्रवृत्ति का क्रम होता है—पहले ज्ञान उपयोग और पश्चात् दर्शन उपयोग। इसलिए पहले ज्ञान और बाद में दर्शन होता है।

477. अवधिज्ञानी का एक द्रव्य में उपयोग कितने समय तक रह सकता है?

उ. *अवधिज्ञानी उपयोग की अपेक्षा एक द्रव्य में अन्तर्मुहूर्त और एक पर्याय में* जघन्य एक समय और उत्कृष्ट सात-आठ समय तक रह सकता है।

478. अवधिज्ञान स्थायी होता है अथवा अस्थायी?

उ. *प्रतिपाती अवधिज्ञान जा भी सकता है। अप्रतिपाती स्थायी होता है।*

479. अवधिज्ञान संख्येय, असंख्येय अथवा अनन्त प्रकार का है? कैसे?

उ. क्षेत्र और काल रूप ज्ञेय की अपेक्षा से अवधिज्ञान की प्रकृतियां असंख्य

---

1. वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक में अपने-अपने विमान की ध्वजा तक देखते हैं। तिर्यक्लोक में पल्योपम के आयुष्य वाले देव संख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं। सागरोपम के आयुष्य वाले देव असंख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं।

हैं। ज्ञेय के भेद के आधार पर ज्ञान के भेद होते हैं। अतः द्रव्य और भाव रूप ज्ञेय की अपेक्षा से अवधिज्ञान की प्रकृतियां अनन्त हैं।

क्षयोपशम के तारतम्य के आधार पर अवधिज्ञान असंख्येय प्रकार का है।

480. तिर्यंच का उत्कृष्ट जघन्य अवधिज्ञान कितना है?

उ. तिर्यंचयोनिक जीव अवधिज्ञान से उत्कृष्टतः औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस द्रव्यों तथा उनके अन्तरालवर्ती द्रव्यों को जानते हैं तथा जघन्यतः औदारिक शरीर को जानते हैं किन्तु कर्म शरीर को न जानते हैं, न देखते हैं।

481. मनः पर्यवज्ञान किसे कहते हैं?

उ. ढाई द्वीप में स्थित संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जिस ज्ञान द्वारा जाना जाता है, उसे मनःपर्यवज्ञान कहते हैं।

482. मनःपर्यवज्ञान कितने प्रकार का होता है?

उ. दो प्रकार का—ऋजुमति और विपुलमति।

483. ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान किसे कहते हैं?

उ. सामान्य रूप से मानसिक भावों को ग्रहण करने वाली मति को ऋजुमति कहते हैं।

484. विपुलमति मनःपर्यवज्ञान किसे कहते हैं?

उ. मन की विशेष पर्यायों को ग्रहण करने वाली मति को विपुलमति कहलाती है।

485. ऋजुमति और विपुलमति में क्या अन्तर है?

उ. 1. ऋजु की अपेक्षा विपुलमति विशुद्धतर है। वह सूक्ष्मतर पदार्थों को जानता है।

2. ऋजुमति केवल ज्ञान की उत्पत्ति के पूर्व कदाचित् नष्ट हो सकता है। ऋजुमति साधुत्व से गिरकर जीव नरक निगोद में भी जा सकता है परन्तु विपुलमति नियम से केवलज्ञान की उत्पत्ति के क्षण पूर्व तक विद्यमान रहती ही है।

3. ऋजुमति वर्धमान होकर विपुलमति हो सकता है पर विपुलमति हीयमान होकर ऋजुमति नहीं हो सकता।

486. मनःपर्यवज्ञान का विषय क्या है?

उ. मनःपर्यवज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का है—

1. द्रव्यतः, 2. क्षेत्रतः, 3. कालतः, 4. भावतः।

487. द्रव्यत: मन:पर्यवज्ञान का विषय क्या है?

उ. द्रव्यत: द्रव्य की दृष्टि से ऋजुमति मन:पर्यवज्ञानी-मनोवर्गणा के अनन्त-अनन्त प्रदेशी स्कन्धों को जानता देखता है। विपुलमति मन: पर्यवज्ञानी-उन स्कन्धों को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर और उज्ज्वलतर रूप से जानता देखता है।

488. क्षेत्रत: मन:पर्यवज्ञान का विषय क्या है?

उ. क्षेत्रत: क्षेत्र की दृष्टि से ऋजुमति मन:पर्यवज्ञानी-नीचे की ओर रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्ववर्ती क्षुल्लक प्रतर से अध:स्तन क्षुल्लक प्रतर तक अर्थात् समभूतल पृथ्वी से एक हजार योजन तक देखता है। ऊपर की ओर ज्योतिष्चक्र के उपरितल तक अर्थात् समभूतल पृथ्वी से 900 योजन ऊपर तक देखता है। तिरछे भाग में मनुष्य क्षेत्र के भीतर अढ़ाई द्वीप समुद्र तक पन्द्रह कर्मभूमियों, तीस अकर्मभूमियों और छप्पन अन्तर्द्वीपों में रहे हुए पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के मनोगत भावों को जानता-देखता है। विपुलमति मन: पर्यवज्ञानी उस क्षेत्र से अढ़ाई अंगुल अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर और उज्ज्वलतर क्षेत्र को जानता देखता है।

489. कालत: मन:पर्यवज्ञान का विषय क्या है?

उ. काल की दृष्टि से ऋजुमति मन:पर्यवज्ञानी-जघन्यत: पल्योपम के असंख्यातवें भाग को, उत्कृष्टत: भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग, अतीत और भविष्य को जानता देखता है। विपुलमति मन: पर्यवज्ञानी-उस कालखंड को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर और उज्ज्वलतर जानता देखता है।

490. भावत: मन:पर्यवज्ञान का विषय क्या है?

उ. भाव की दृष्टि से ऋजुमति मन:पर्यवज्ञानी अनन्त भावों को जानता-देखता है। सब भावों के अनन्तवें भाग को ही जानता-देखता है। विपुलमति मन:पर्यवज्ञानी उन भावों को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर और उज्ज्वलतर जानता-देखता है।

491. मन:पर्यवज्ञान किसके होता है?

उ.

मन:पर्यवज्ञान	मनुष्य के होता है	अमनुष्य के नहीं।
मन:पर्यवज्ञान	गर्भज के होता है	संमूर्च्छिम के नहीं।
मन:पर्यवज्ञान	कर्मभूमिज के होता है	अन्तर्द्वीपज के नहीं।
मन:पर्यवज्ञान	संख्येय वर्षायुष्क के होता है	असंख्येय वर्षायुष्क अकर्मभूमिज के नहीं।

मन:पर्यवज्ञान	पर्याप्त के होता है	अपर्याप्त के नहीं।
मन:पर्यवज्ञान	सम्यक् दृष्टि के होता है	मिथ्यादृष्टि, सम्यक्-मिथ्यादृष्टि के नहीं।
मन:पर्यवज्ञान	संयत के होता है	असंयत और संयता-संयत के नहीं।
मन:पर्यवज्ञान	अप्रमत्त के होता है[1]	प्रमत्त के नहीं।
मन:पर्यवज्ञान	ऋद्धि प्राप्त के होता है[2]	अऋद्धि प्राप्त के नहीं।

492. *मन:पर्यवज्ञानी अचक्षुदर्शन से देखता है या नहीं?*

उ. श्रुतज्ञानी की तरह मन:पर्यवज्ञानी भी अचक्षुदर्शन से देखता है।

493. *अवधि और मन:पर्यव ज्ञान किस-किस को हो सकता है?*

उ. अवधिज्ञान संयत, असंयत और संयतासंयत सभी को हो सकता है। मन: पर्यवज्ञान केवल संयत को ही होता है।

494. *अवधिज्ञान व मन:पर्यव ज्ञान में क्या अन्तर है?*

उ. चार भेद से अवधि व मन:पर्यव की भिन्नता की प्रतीति होती है—

(1) विशुद्धिकृत—अवधिज्ञानी जिन मनोद्रव्य के पर्यायों को जानता है, उन्हीं को मन:पर्यवज्ञानी विशुद्धतर जानता है।

(2) क्षेत्रकृत—अवधिज्ञानी अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर समग्र लोक को जानता है जबकि मन:पर्यवज्ञान मनुष्य क्षेत्र तक ही सीमित है और उसमें भी संज्ञी पंचेन्द्रिय के ही मनोगत भावों को जानता है।

(3) स्वामीकृत—अवधिज्ञानी संयत, असंयत, संयतासंयत कोई भी हो सकता है, जबकि मन:पर्यवज्ञान का अधिकारी केवल संयत ही होता है।

(4) विषयकृतभेद—अवधिज्ञानी का विषय रूपी द्रव्य और उसके पर्याय हैं। मन:पर्यव का विषय है—मनोवर्गणा का अनन्तवां भाग।

इनके अतिरिक्त दो अन्तर और भी हो सकते हैं—

* अवधिज्ञान पर-भव में जाते समय साथ में जा सकता है जबकि मन:पर्यवज्ञान एक ही भव में रहता है।
* सम्यक्त्व भ्रष्ट होने पर अवधिज्ञान विभंगज्ञान में बदल सकता है जबकि मन:पर्यवज्ञान कभी भी विपरीत नहीं होता।

---

1. यहाँ अप्रमत्त से तात्पर्य—इस ज्ञान की प्राप्ति सातवें गुणस्थान में होती है।
2. आमर्षौषधि आदि लब्धियां।

495. अवधि व मन:पर्यवज्ञान में अभेद क्या है?

उ. * दोनों ज्ञान छद्मस्थ के होते हैं।
* दोनों ज्ञान का विषय है—रूपी द्रव्य।
* दोनों ज्ञान क्षायोपशमिक भाव हैं।
* दोनों प्रत्यक्ष ज्ञान हैं।

496. ऋजुमति और विपुलमति में समानता क्या है?

उ. * उत्कृष्ट ऋजुमति और विपुलमति दोनों आनुगमिक होते हैं, अनानुगमिक नहीं।
* उत्कृष्ट ऋजुमति और विपुलमति दोनों मध्यगत होते हैं, अन्तगत नहीं।
* उत्कृष्ट ऋजुमति और विपुलमति दोनों सम्बद्ध होते हैं, असंबद्ध नहीं।
* जघन्य ऋजुमति सब प्रकार संभव है।

497. केवलज्ञान किसे कहते हैं?

उ. जो ज्ञान समस्त द्रव्यों और पर्यायों को जानता है वह केवलज्ञान है।

498. केवलज्ञान का स्वरूप क्या है?

उ. केवलज्ञान के स्वरूप को समझने के पांच बिन्दु हैं—
1. केवलज्ञान असहाय है, क्योंकि वह मति आदि ज्ञानों से निरपेक्ष है।
2. केवलज्ञान निरावरण है, इसलिये शुद्ध है।
3. अशेष आवरण की क्षीणता के कारण प्रथम क्षण में ही पूर्णरूप से उत्पन्न होता है, इसलिए वह सकल/सम्पूर्ण है।
4. केवलज्ञान अन्य ज्ञानों के सदृश नहीं है इसलिये असाधारण है।
5. ज्ञेय अनन्त है, इसलिये केवलज्ञान भी अनन्त है।

499. केवलज्ञान का विषय क्या है?

उ. केवलज्ञानी द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की अपेक्षा से सर्व द्रव्यों, क्षेत्रों, काल और भावों को जानता-देखता है।

500. केवलज्ञान के कितने प्रकार हैं?

उ. केवलज्ञान के दो प्रकार हैं—भवस्थ केवलज्ञान और सिद्ध केवलज्ञान।

501. भवस्थ केवलज्ञान किसे कहते हैं?

उ. जो ज्ञान मनुष्य भव में अवस्थित व्यक्ति के ज्ञानावरणीय आदि चार घाति कर्मों के क्षीण होने पर उत्पन्न होता है। जब तक शेष चार अघातिकर्म क्षीण

नहीं होते, तब तक वह भवस्थ केवलज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान सयोगी केवली और अयोगी केवली की अपेक्षा से दो प्रकार का होता है।

502. *सिद्ध केवलज्ञान किसे कहते हैं?*

उ. सर्वमुक्त सिद्धों का ज्ञान सिद्ध केवलज्ञान है। इसके दो प्रकार हैं—
(1) अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान (2) परम्पर सिद्ध केवलज्ञान।

503. *केवलज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया क्या है?*

उ. साधक सर्वप्रथम आठ कर्मों की जो कर्मग्रन्थि है, उसे खोलने के लिए उद्यत होता है। वह जिसे पहले कभी भी पूर्णतः क्षीण नहीं कर पाया, उस मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों को क्रमशः सर्वथा क्षीण करता है। फिर शेष तीन घाति कर्मों को एक साथ क्षीण करता है। उसके पश्चात् वह अनुत्तर, अनन्त, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण, निरावरण, तिमिर रहित, विशुद्ध, लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान और केवलदर्शन को उत्पन्न करता है।

504. *मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान में अभेद क्या है?*

उ. जैसे मनःपर्यवज्ञान अप्रमत्त साधु के होता है, वैसे ही केवलज्ञान भी अप्रमत्त यति के होता है।
मनःपर्यवज्ञान विपर्ययज्ञान नहीं होता, केवलज्ञान भी विपर्ययज्ञान नहीं होता।

505. *संक्षेप में ज्ञान के कितने प्रकार हैं?*

उ. संक्षेप में ज्ञान के दो प्रकार हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष।

506. *प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं?*

उ. जो ज्ञान अपनी उत्पत्ति में दूसरे का वशवर्ती नहीं है, वह प्रत्यक्षज्ञान है। वह दो प्रकार का है—
(1) आत्म प्रत्यक्ष और (2) इन्द्रिय प्रत्यक्ष।

507. *आत्मप्रत्यक्ष किसे कहते हैं?*

उ. आत्मा के द्वारा इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को हाथ में रखे हुए आंवले की भांति जानने या देखने वाला ज्ञान आत्मप्रत्यक्ष है।

508. *इन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं?*

उ. इन्द्रियों से साक्षात्कार होने पर किसी अन्य माध्यम के बिना जो ज्ञान होता है, वह इन्द्रियप्रत्यक्ष है।

509. प्रत्यक्षज्ञान कितने प्रकार का हैं?

उ. दो प्रकार का—पारमार्थिक और सांव्यावहारिक।

510. पारमार्थिक प्रत्यक्ष को और किन-किन नामों से पुकारा जा सकता है और उसके कितने प्रकार हैं?

उ. पारमार्थिक प्रत्यक्ष को आत्म प्रत्यक्ष या नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष भी कहा जाता है। इसके तीन प्रकार हैं—अवधि, मन:पर्यव और केवल।

511. पारमार्थिक प्रत्यक्ष के तीन प्रकारों में सकल प्रत्यक्ष कितने हैं और विकल प्रत्यक्ष कितने हैं?

उ. * केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है क्योंकि इससे मूर्त और अमूर्त सब पदार्थों की त्रैकालिक अवस्था का बोध होता है।

* अवधिज्ञान और मन:पर्यवज्ञान अपूर्ण या विकल प्रत्यक्ष कहलाते हैं। इनमें आत्मा और पदार्थ के मध्य इन्द्रिय, मन तथा अन्य किसी सहारे की अपेक्षा नहीं होती। पर इनसे केवलज्ञान की भांति अमूर्त तत्त्वों का ज्ञान नहीं होता। इसलिये ये अपूर्ण या विकल प्रत्यक्ष है।

512. परोक्षज्ञान किसे कहते हैं?

उ. 1. जो चाक्षुस आदि विज्ञान अपनी उत्पत्ति में पर-चक्षु आदि के अधीन है वह परोक्ष है।

2. जिस ज्ञानोपलब्धि में आत्मा, इन्द्रिय और पदार्थ के मध्य व्यवधान रहता है वह परोक्षज्ञान है।

513. कितने ज्ञान परोक्ष हैं?

उ. दो ज्ञान परोक्ष हैं—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।

514. पांच ज्ञान में क्षयोपशम भाव कितने और क्षायिक भाव कितने?

उ. प्रथम चार ज्ञान क्षयोपशम भाव है और एक अन्तिम ज्ञान-केवल ज्ञान क्षायिक भाव है।

515. पांच ज्ञान में भाषक कितने और अभाषक कितने?

उ. श्रुतज्ञान भाषक और शेष चार ज्ञान अभाषक हैं।

516. ज्ञानप्राप्ति में कितने विकल्प हैं?

उ. एक साथ ज्ञानप्राप्ति में चार विकल्प हैं—

1. दो ज्ञान–मति और श्रुत।

2. तीन ज्ञान–(1) मति, श्रुत और अवधि। (2) मति, श्रुत और मन:पर्यव।

3. चार ज्ञान–मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यव।

4. एक ज्ञान–केवलज्ञान।

517. *मनुष्य जन्म के साथ ज्ञान लाता है, अथवा जन्म के पश्चात् उत्पन्न होता है?*

उ. प्राणी जन्म के साथ ज्ञान लाता है। लब्धि-इन्द्रिय जन्म के साथ आती है। द्रव्येन्द्रिय का निर्माण जन्म के साथ होता है, अवधिज्ञान जन्म के साथ भी होता है और जन्म के उत्तरकाल में साधना के द्वारा भी उपलब्ध होता है।

518. *ज्ञान की सीमा क्या है?*

उ. 1. ज्ञेय अनन्त है। इसलिए ज्ञान भी अनन्त है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की सीमा है। उनके द्वारा मूर्त द्रव्य जाना जा सकता है अमूर्त द्रव्य नहीं। मूर्त में भी स्थूल पर्याय को जाना जा सकता है, सूक्ष्म पर्याय को नहीं जाना जा सकता।

2. अवधिज्ञान मूर्त द्रव्यों को जानता है।

3. मन:पर्यवज्ञान मनोवर्गणा के पुद्गलों को जानता है।

4. केवलज्ञान की कोई सीमा नहीं है।

519. *क्या ज्ञान के द्वारा द्रव्य को जाना जा सकता है?*

उ. * मतिज्ञान के द्वारा पर्याय का ही ज्ञान होता है, द्रव्य का ज्ञान नहीं होता।

* श्रुतज्ञान के द्वारा श्रुत ग्रन्थों के आधार पर द्रव्य का ज्ञान होता है, उसका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता।

* विशिष्ट अवधिज्ञान के द्वारा केवल मूर्त द्रव्य का विशिष्ट प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है।

* मन:पर्यवज्ञान मनोवर्गणा के पर्यायों को जान सकता है, द्रव्यों को नहीं।

* केवलज्ञान के द्वारा मूर्त-अमूर्त सभी द्रव्यों तथा पर्यायों का ज्ञान होता है।

520. *पांचों ज्ञानों में विकास की दृष्टि से न्यूनाधिकता क्या है?*

उ. जघन्य मतिश्रुत से जघन्य अवधिज्ञान अनन्तगुणा अधिक, उससे जघन्य मन:पर्यवज्ञान अनन्तगुणा अधिक, उससे उत्कृष्ट मन:पर्यवज्ञान अनन्त गुणा अधिक, उससे उत्कृष्ट अवधिज्ञान अनन्तगुणा अधिक, उससे उत्कृष्ट मतिश्रुत अनन्तगुणा अधिक, उससे जघन्य अनुत्कृष्ट केवलज्ञान।

521. *ज्ञान कितने भाव? कितनी आत्मा?*

उ. ज्ञान भाव 3–क्षायिक, क्षयोपशम, पारिणामिक। आत्मा 2–ज्ञान, उपयोग।

522. ज्ञान छह द्रव्य में कौन? नौ तत्त्वों में कौन?

उ. ज्ञान छह द्रव्य में–जीव। नौ तत्त्वों में–2, जीव, निर्जरा।

523. ज्ञानाचार कितने प्रकार का है?

उ. ज्ञानाचार के आठ प्रकार हैं—

1. काल—श्रुत का अध्ययन करने के लिए निर्दिष्ट काल में श्रुत का अभ्यास करना।
2. विनय—ज्ञान प्राप्ति के प्रयत्न में विनम्र रहना।
3. बहुमान—ज्ञान प्राप्ति के प्रति आन्तरिक अनुराग रखना।
4. उपधान—श्रुतवाचन के समय आयम्बिल आदि विशेष तप का अनुष्ठान करना।
5. अनिह्नवन—ज्ञान और ज्ञानदाता आचार्य का गोपन न करना।
6. सूत्र—सूत्र का वाचन करना।
7. अर्थ—अर्थ के अनुचिन्तन में जागरूक रहना।
8. सूत्रार्थ—सूत्र और अर्थ दोनों का वाचन करना।

524. ज्ञान के कितने अतिचार हैं?

उ. ज्ञान के चौदह अतिचार हैं—

1. व्याविद्ध—आगम-पाठ को आगे-पीछे करना।
2. व्यत्याम्रेडित—मूलपाठ में अन्य पाठ का मिश्रण करना।
3. हीनाक्षर—अक्षरों को न्यूनकर उच्चारण करना।
4. अत्यक्षर—अक्षरों को अधिक कर उच्चारण करना।
5. पदहीन—पदों को कम कर उच्चारण करना।
6. विनयहीन—विराम-रहित उच्चारण करना।
7. घोषहीन—उदात्त आदि घोष-रहित उच्चारण करना।
8. योगहीन—सम्बन्ध रहित उच्चारण करना।
9. सुष्ठुदत्त—योग्यता से अधिक ज्ञान देना।
10. दुष्ठु-प्रतीच्छित—ज्ञान को सम्यक् भाव से ग्रहण न करना।
11. अकाल में स्वाध्याय करना।
12. स्वाध्याय काल में स्वाध्याय न करना।[1]
13. अस्वाध्याय की स्थिति में स्वाध्याय करना।
14. स्वाध्याय की स्थिति में स्वाध्याय न करना।

---

1. आव, निर्युक्ति—118, देखें कथा सं. 11

525. ज्ञान सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है?

उ. ज्ञान सम्पन्नता से वह सब पदार्थों को जान लेता है। ज्ञान सम्पन्न जीव चार गति रूप चार अन्तोवाली अटवी में विनष्ट नहीं होता। जिस प्रकार ससूत्र (धागे में पिरोयी हुई) सूई गिरने पर भी गुम नहीं होती, उसी प्रकार ससूत्र (श्रुत सहित) जीव संसार में रहने पर भी विनष्ट नहीं होता।

ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति अवधि आदि विशिष्ट ज्ञान, विनय, तप और चारित्र के योगों को प्राप्त करता है तथा स्व-समय और पर-समय की व्याख्या या तुलना के लिए प्रामाणिक रूप माना जाता है।[1]

एक अज्ञानी करोड़ों वर्षों में जितने कर्मों को क्षीण करता है, उतने कर्मों को त्रिगुप्त ज्ञानी उच्छ्वास मात्र में क्षीण कर देता है।[2]

526. चारों गति के जीवों में कितने व कौन-कौन से ज्ञान पाते हैं?

उ. * सात नारकी, सर्वदेवता, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में ज्ञान तीन पाते हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान।
* गर्भज मनुष्य में ज्ञान पांच पाते हैं।
* पांच स्थावर, असंज्ञी मनुष्य, 56 अन्तर्द्वीप के युगलियों में ज्ञान एक भी नहीं पाता।
* तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यञ्च पचेन्द्रिय, 30 अकर्मभूमि के युगलियों में ज्ञान दो पाते हैं—मतिज्ञान व श्रुतज्ञान।
* सिद्धों में ज्ञान एक—केवलज्ञान।

527. अज्ञान किसे कहते हैं?

उ. 1. ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होने वाले ज्ञान के अभाव को अज्ञान कहते हैं।
2. ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाले मिथ्यात्वी के ज्ञान को अज्ञान कहते हैं।

528. अज्ञान कर्म का उदय है या क्षयोपशम?

उ. अज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम है तथा ज्ञान का अभाव ज्ञानावरणीय कर्म का उदय है।

---

1. उत्तराध्ययन 29/60
2. उत्तराध्ययन शांतवृति प. 68।

529. उदयजन्य व क्षयोपशमजन्य अज्ञान कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. उदयजन्य अज्ञान 12वें गुणस्थान तक तथा क्षयोपशमजन्य अज्ञान पहले व तीसरे गुणस्थान तक कहलाता है।

530. ज्ञान अज्ञान क्यों हैं?

उ. * मिथ्यादृष्टि का ज्ञान अज्ञान कहलाता है। उसके चार हेतु हैं—
* मिथ्यादृष्टि में सत्-असत् का विवेक नहीं होता।
* उसका ज्ञान भवभ्रमण का हेतु होता है।
* वह अपनी इच्छा के अनुसार मोक्ष के हेतुभूत तत्त्वों को भवभ्रमण का हेतु मानता है।
* उसको ज्ञान का फल (विरति) प्राप्त नहीं होता।

531. ज्ञान को अज्ञान क्यों कहा गया है?

उ. पात्र भेद से ज्ञान को अज्ञान कहा गया है। जैसे—ब्राह्मण के घड़े का पानी, हरिजन के घड़े का पानी।

532. अज्ञान कितने हैं?

उ. अज्ञान तीन हैं—मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग अज्ञान।

533. मति अज्ञान किसे कहते हैं?

उ. इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला सम्यक्त्व रहित ज्ञान मति अज्ञान कहलाता है।

534. श्रुत अज्ञान किसे कहते हैं?

उ. इन्द्रिय और मन के द्वारा शब्द, संकेत आदि के सहारे होने वाला सम्यक्त्व रहित श्रुत, श्रुत-अज्ञान कहलाता है।

535. विभंग अज्ञान किसे कहते हैं?

उ. मिथ्यात्वी का अतीन्द्रिय ज्ञान विभंग अज्ञान कहलाता है।[1]

536. ज्ञान पांच हैं, अज्ञान तीन, ऐसा क्यों?

उ. 1. प्रथम तीन ज्ञानों का विपर्यास होता है। शेष दो ज्ञान-मन:पर्यवज्ञान और केवलज्ञान का विपर्यास नहीं होता। अत: अज्ञान तीन ही है।
2. मन: पर्यव ज्ञान व केवलज्ञान सिर्फ सम्यक्दृष्टि संयति के ही होता है। इसलिए अज्ञान तीन ही है।

---

1. कथा सं. 12

537. *अज्ञान कितने भाव? कितनी आत्मा?*

उ. अज्ञान भाव-2 क्षायोपशमिक, पारिणामिक। आत्मा–उपयोग अनेरी।

538. *अज्ञान छह में कौन? नौ में कौन?*

उ. अज्ञान छह में जीव। नौ में-दो—जीव, निर्जरा।

539. *चारों गति के जीवों में कितने व कौन-कौनसे अज्ञान पाते हैं?*

उ. * सात नारकी, नौ ग्रैवेयक तक के देवता, संज्ञी तिर्यञ्च व संज्ञी मनुष्य में अज्ञान तीन पाते हैं।

* पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, सर्व युगलियां में अज्ञान दो पाते हैं—मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान।

* पांच अनुत्तर विमान के देवता और सिद्धों में अज्ञान नहीं।

540. *ज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं?*

उ. 1. जो पुद्गल स्कन्ध आत्मा की ज्ञान चेतना को आवृत्त करता है, वह ज्ञानावरणीय कर्म है।

2. जीव का ज्ञान जिसके द्वारा आच्छादित होता है उस कर्म पुद्गल को ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

541. *ज्ञानावरण के कितने प्रकार हैं?*

उ. ज्ञानावरण के पांच प्रकार हैं—

1. मतिज्ञानावरण 2. श्रुतज्ञानावरण 3. अवधिज्ञानावरण
4. मन:पर्यव ज्ञानावरण 5. केवल ज्ञानावरण।

542. *मतिज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं?*

उ. इन्द्रिय और मन के द्वारा होने वाले ज्ञान को आवृत करने वाला कर्म मतिज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है।

543. *श्रुतज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं?*

उ. श्रुतज्ञान को आवृत्त करने वाले कर्म पुद्गलों को श्रुतज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

544. *अवधिज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं?*

उ. अवधिज्ञान को आवृत्त करने वाले कर्म-पुद्गलों को अवधिज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

545. *मन:पर्यवज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं?*

उ. इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना संज्ञी जीव के मनोगत भावों को जानने में जो रुकावट डालता है, वह मन:पर्यवज्ञानावरणीय कर्म है।

546. केवलज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. केवलज्ञान को आवृत्त करने वाले कर्म पुद्गलों को केवलज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

547. ठाणं सूत्र में ज्ञानावरणीय कर्म के कौनसे दो प्रकारों का उल्लेख किया गया है?

उ. देशज्ञानावरणीय कर्म और सर्वज्ञानावरणीय कर्म।

548. देशज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो प्रकृति स्वघात्य ज्ञानगुण का आंशिक घात करे वह देशघाती ज्ञानावरणीय कर्म है।

549. सर्वज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो प्रकृति स्वघात्य ज्ञानगुण का सम्पूर्ण घात करे, वह सर्वघाती ज्ञानावरणीय कर्म है।

550. ज्ञानावरण की पांच प्रकृतियों में कितनी देशघाती और कितनी सर्वघाती?

उ. मतिज्ञानावरणीय आदि प्रथम चार कर्म देशघाती हैं और केवल ज्ञानावरणीय कर्म सर्वघाती है।

551. ज्ञानावरणीय कर्म-बंध के कितने हेतु हैं?

उ. ज्ञानावरणीय कर्म-बंध के छह हेतु हैं—

1. ज्ञान प्रत्यनीकता—ज्ञान या ज्ञानी से प्रतिकूलता रखना।[1]
2. *ज्ञान निह्नव—ज्ञान या ज्ञानदाता का अवलपन करना अर्थात् ज्ञानी को* कहना कि वह ज्ञानी नहीं है।[2, 3]
3. ज्ञानान्तराय—ज्ञान को प्राप्त करने में विघ्न डालना।[4, 5]
4. ज्ञान-प्रद्वेष—ज्ञान या ज्ञानी से द्वेष रखना।
5. ज्ञान-आशातना—ज्ञान या ज्ञानी की अवहेलना करना।[6]
6. ज्ञान-विसंवादन—ज्ञान या ज्ञानी के वचनों में विसंवाद अर्थात् विरोध दिखाना।

---

1. कथा सं. 13
2. कथा सं. 14
3. कथा सं. 15
4. कथा सं. 16
5. कथा सं. 17
6. कथा सं. 18

552. ज्ञानावरणीय कर्म का बंध संज्ञी के होता है या असंज्ञी के?

उ. असंज्ञी के ज्ञानावरणीय कर्म का बंध समय-समय पर होता ही है, लेकिन दसवें गुणस्थान तक संज्ञी के भी ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है। उससे आगे ज्ञानावरणीय कर्म का बंध नहीं होता। यथाख्यात चारित्र वालों के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एवं अंतराय ये तीनों कर्मों का बंध नहीं होता है।

553. ज्ञानावरणीय कर्म की स्थिति कितनी है?

उ. जघन्य—अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीस करोड़ाकरोड़[1] सागर।

554. ज्ञानावरणीय कर्म का अबाधाकाल[2] कितना है?

उ. जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

555. ज्ञानावरणीय कर्म का लक्षण एवं कार्य क्या है?

उ. ज्ञानावरणीय कर्म आंख की पट्टी के समान है। जैसे आंख पर पट्टी बांध लेने से दृश्य पदार्थ और आंख के मध्य आवरण आ जाता है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से प्राणी की ज्ञानचेतना आवृत्त हो जाती है। यह कर्म जानने में बाधा पहुंचाता है।

556. ज्ञानावरणीय कर्म के अनुभाव कितने हैं?

उ. अनुभाव का अर्थ है—कर्म की फल देने की शक्ति। आगम में कहा गया है[3]—ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जीव जानने योग्य को नहीं जानता, जानने का कामी होने पर भी नहीं जानता, जानकर भी नहीं जानता। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जीव आच्छादित ज्ञान वाला होता है।

जीव द्वारा बांधे हुए ज्ञानावरणीय कर्म के दस प्रकार के अनुभाव (फल) हैं—

1. श्रोत्रावरण—कानों से शब्द न सुन सके।
2. श्रोत्र-विज्ञानावरण—सुने हुए शब्द का अर्थ न समझ सके।
3. नेत्रावरण—आंख से न देख सके।

---

1. तीस करोड़ को एक करोड़ से गुणा करना।
2. अबाधाकाल—कर्मबंध होने के प्रथम समय से लेकर जब तक उस कर्म का उदय या उदीरणाकरण नहीं होता तब तक का काल 'अबाधाकाल' होता है।
3. प्रज्ञापना-23/1

4. नेत्र-विज्ञानावरण—देखी हुई वस्तु को पहचान न सके।
5. घ्राणावरण—नाक से गंध ले न सके।
6. घ्राण-विज्ञानावरण—गंध को पहचान न सके।
7. रसावरण—स्वाद न ले सके।
8. रस-विज्ञानावरण—स्वाद लेने पर भी वस्तु को पहचान न सके।
9. स्पर्शावरण—स्पर्श का पता न लगे।
10. स्पर्श विज्ञानावरण—स्पर्श होने पर भी वस्तु को पहचान न सके।

557. ज्ञानावरणीय कर्म का बंध कौनसे गुणस्थान में होता है?

उ. ज्ञानावरणीय कर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान तक होता है।

558. ज्ञानावरणीय कर्म का उदय एवं क्षयोपशम भाव कौनसे गुणस्थान में होता है?

उ. पहले से बारहवें गुणस्थान तक।

559. ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जीव को क्या मिलता है?

उ. ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम जीव को आठ बोलों की प्राप्ति होती हैं: प्रथम चार ज्ञान—(1) मतिज्ञान, (2) श्रुतज्ञान, (3) अवधिज्ञान, (4) मनः पर्यवज्ञान तथा तीन अज्ञान, (5) मति अज्ञान (6) श्रुत अज्ञान, (7) विभंग अज्ञान और (8) भणन-गुणन।

560. ज्ञानावरणीय कर्म का क्षायिक भाव कौनसे गुणस्थान में होता है?

उ. ज्ञानावरणीय कर्म का क्षायिक भाव 13वें, 14वें गुणस्थानों में तथा सिद्धों में होता है।

561. ज्ञानावरणीय कर्म का उपशम कौनसे गुणस्थान में होता है?

उ. ज्ञानावरणीय कर्म का उपशम नहीं होता।

562. उदय के तैंतीस बोलों में ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से कितने बोल पाते हैं?

उ. दो—अमनस्कता और अज्ञानता।

563. अमनस्कता और अज्ञानता सावद्य है या निरवद्य?

उ. दोनों नहीं।

564. अमनस्कता और अज्ञानता सादि है या अनादि?

उ. अमनस्कता सादि और अज्ञानता अनादि।

565. ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के आठ बोलों में सादि कितने और अनादि कितने?

उ. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान सादि-अनादि दोनों हैं (अभव्य की अपेक्षा अनादि और भव्य की अपेक्षा सादि)। शेष छह बोल सादि है।

566. बाईस परीषह में ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से कितने परीषह?

उ. दो–प्रज्ञा और अज्ञान।

567. श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी कितने श्रुत का अभ्यास कर सकते हैं?

उ. श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से सम्यक्त्वी के श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है और मिथ्यात्वी के श्रुत अज्ञान। सम्यक्त्वी उत्कृष्ट चौदह पूर्व का अभ्यास करता है और मिथ्यात्वी देशन्यून दस पूर्व तक का।

दर्शनावरणीय कर्म

दर्शनावरणीय कर्म

568. दर्शन किसे कहते हैं?

उ. पदार्थों के आकार-अर्थों की विशेषता को ग्रहण किये बिना केवल सामान्य का ग्रहण करना दर्शन है। इसे निराकार उपयोग या निर्विकल्प उपयोग भी कहते हैं।

569. दर्शन के कितने प्रकार हैं?

उ. दर्शन के चार प्रकार हैं—

1. चक्षुदर्शन 2. अचक्षुदर्शन 3. अवधिदर्शन 4. केवलदर्शन।

570. चारों दर्शनों का स्वरूप क्या है?

उ. चक्षु के सामान्य बोध को चक्षुदर्शन, शेष इन्द्रिय तथा मन के सामान्य बोध को अचक्षुदर्शन, अवधि के सामान्य बोध को अवधिदर्शन और केवल के सामान्य बोध को केवलदर्शन कहते हैं।

571. कौनसे ज्ञान का किस दर्शन से संबंध है?

उ.

मतिज्ञान	–	चक्षु-अचक्षुदर्शन
श्रुतज्ञान	–	दर्शन नहीं
अवधिज्ञान	–	अवधिदर्शन
मन:पर्यवज्ञान	–	दर्शन नहीं
केवलज्ञान	–	केवलदर्शन

572. श्रुतज्ञान व मन:पर्यवज्ञान के दर्शन क्यों नहीं?

उ. श्रुतज्ञान वाक्यार्थ विशेष का ग्रहण करता है। मन:पर्यवज्ञान से मन की अवस्थाओं का बोध होता है। वाक्य व मन की अवस्थाएं विशेष होती हैं। जबकि दर्शन से सामान्य का बोध होता है, इसलिए इन दोनों के साथ दर्शन का संबंध नहीं जुड़ता।

573. ज्ञान और दर्शन में भेद क्यों हैं?

उ. ज्ञान-दर्शन की प्राप्ति में ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम की समानता रहती है। सामान्यत: क्षयोपशम भी एक ही प्रकार का है। किन्तु द्रव्य में सामान्य और विशेष दोनों धर्म होते हैं, इस दृष्टि से दर्शनावरण के दो रूप बनते हैं—ज्ञान (साकार उपयोग) और दर्शन अनाकार उपयोग।

574. दर्शनावरणीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. आत्मा की दर्शन-चेतना को आवृत्त करने वाले कर्म को दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

575. दर्शनावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियां कितनी हैं?

उ. आगमों में दर्शनावरणीय कर्म की नौ उत्तर प्रकृतियां बताई गई हैं—

1. चक्षुदर्शनावरण
2. अचक्षुदर्शनावरण
3. अवधिदर्शनावरण
4. केवलदर्शनावरण
5. निद्रा
6. निद्रानिद्रा
7. प्रचला
8. प्रचलाप्रचला
9. स्त्यानर्द्धि

576. चक्षुदर्शनावरणीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. चक्षु द्वारा होने वाले सामान्य बोध को आवृत्त करने वाला कर्म चक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहलाता है। इस कर्म के उदय से जीव के आंखें नहीं होती अथवा होने पर भी ज्योति नष्ट हो जाती है।

577. अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. नेत्रों को छोड़कर अन्य इन्द्रियों और मन के द्वारा होने वाले सामान्य बोध को आवृत्त करने वाला कर्म अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहलाता है। इस कर्म के उदय से जीव के नेत्र से भिन्न इन्द्रियां तथा मन नहीं होते अथवा होने पर भी अकार्यकारी होते हैं।

578. अवधिदर्शनावरणीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मा को रूपी द्रव्यों का जो सामान्य बोध होता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं। ऐसे दर्शन को आवृत्त करने वाले कर्म अवधिदर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

579. केवलदर्शनावरणीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. सर्व द्रव्य और पर्यायों का युगपत् साक्षात् सामान्य अवबोध को आवृत्त करने वाला कर्म केवलदर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

580. निद्रा और निद्रा-निद्रा में क्या अन्तर है?

उ. निद्रा—सोया हुआ व्यक्ति सुख से जाग जाए, वैसी निद्रा।
निद्रा-निद्रा—जिस कर्म के उदय से सोया हुआ व्यक्ति कठिनाई से जागता है वह निद्रा-निद्रा है।

581. प्रचला और प्रचला-प्रचला में क्या अन्तर है?

उ. * प्रचला—जिस कर्म के उदय से बैठे-बैठे ही नींद आती है।
* प्रचला-प्रचला—जिस कर्म के उदय से खड़े-खड़े या चलते-फिरते नींद आती है।

582. स्त्यानर्द्धि निद्रा किसे कहते हैं?

उ. यह निद्रा प्रकृष्टतर अशुभ अनुभाव वाली है। इसमें चेतना प्रगाढ़ मूर्च्छा से जम जाती है। इस प्रकृति का उदय होने पर व्यक्ति में राग-द्वेष का प्रबल उदय होता है और उस समय वज्रऋषभनाराच संहनन वाला जीव हो तो उसमें वासुदेव के बल से आधा-बल जाग जाता है। अन्य संहनन वाले का इस निद्रा में स्वयं के बल से सात-आठ गुणा बल होता है। व्यक्ति जो सोचता है उसे वह इस नींद में सिद्ध कर लेता है। इसलिए उसे चिन्तित अर्थ को सिद्ध करने वाली निद्रा कहा जाता है।

583. क्या देवता नींद लेते हैं?

उ. नहीं। क्योंकि देवता के दर्शनावरणीय कर्म का प्रदेशोदय नहीं है। इसलिए देवता को नींद नहीं आती।

584. स्त्यानर्द्धि निद्रा वाला मरकर कहां जाता है?

उ. नरकगति में।

585. दर्शनावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियों में देशघाती कितनी और सर्वघाति कितनी हैं?

उ. चक्षु, अचक्षु और अवधि दर्शनावरणीय कर्म देशघाती हैं और शेष छह सर्वघाति। सर्वघाती दर्शनावरणीय कर्मों में केवलदर्शनावरणीय कर्म प्रगाढ़तम है।

586. दर्शनावरणीय कर्म-बंध के कितने हेतु हैं?

उ. दर्शनावरणीय कर्म-बंध के छः हेतु हैं—

1. दर्शन-प्रत्यनीकता—दर्शन या दर्शनी से प्रतिकूलता रखना।
2. दर्शन निह्नव—दर्शन या दर्शनदाता का अल्पपन करना अर्थात् दर्शनी को कहना कि वह दर्शनी नहीं है।
3. दर्शनान्तराय—दर्शन को प्राप्त करने में विघ्न डालना।
4. दर्शन-प्रद्वेष—दर्शन या दर्शनी से द्वेष रखना।
5. दर्शन-आशातना—दर्शन या दर्शनी की अवहेलना करना।
6. दर्शन-विसंवादन—दर्शन या दर्शनी के वचनों में विसंवाद अर्थात् विरोध दिखाना।

587. द्रव्यनिद्रा और भावनिद्रा किसे कहते हैं और ये किन कर्मों का उदय है?

उ. द्रव्य-निद्रा सुप्तावस्था है। यह दर्शनावरणीय कर्म का उदय निष्पन्न भाव है।

भाव-निद्रा मिथ्यात्व, अविरति और अशुभ योग रूप है अत: मोह कर्म का उदय निष्पन्न भाव है।

588. दर्शनावरणीय कर्म की स्थिति कितनी है?

उ. जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीस करोड़ाकरोड़ सागर।

589. दर्शनावरणीय कर्म का अबाधाकाल कितना है?

उ. जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

590. दर्शनावरणीय कर्म के लक्षण एवं कार्य क्या हैं?

उ. दर्शनावरणीय कर्म प्रहरी के समान है। जिस प्रकार प्रहरी की अनुमति के बिना किसी बड़े आदमी से मिलना संभव नहीं है, उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के उदय से देखने (सामान्य बोध करने) में अवरोध उपस्थित होता है।

591. दर्शनावरणीय कर्म भोगने के कितने हेतु हैं?

उ. दर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव द्रष्टव्य विषय को नहीं देखता, देखने का इच्छुक होने पर भी नहीं देखता। देखकर भी देख नहीं पाता। इस कर्म के उदय से जीव आच्छादित दर्शन वाला होता है। इस कर्म को भोगने के नौ हेतु हैं—

1. निद्रा
2. निद्रानिद्रा
3. प्रचला
4. प्रचलाप्रचला
5. स्त्यानर्द्धि[1]
6. चक्षुदर्शनावरण—आंख से अच्छी तरह चाहते हुए भी न देख सके।
7. अचक्षुदर्शनावरण—आंख के अतिरिक्त चारों इन्द्रियों एवं मन से अच्छी तरह न देख सके।
8. अवधिदर्शनावरण—अवधिदर्शन की प्राप्ति न हो।
9. केवलदर्शनावरण—केवलदर्शन की प्राप्ति न हो।

592. दर्शनावरणीय कर्म का बंध कौन-कौनसे गुणस्थान में होता है?

उ. पहले से दसवें गुणस्थान तक।

---

1. कथा सं. 19

593. दर्शनावरणीय कर्म का उदय और क्षयोपशम कौनसे गुणस्थान तक रहता है?

उ. पहले से बारहवें गुणस्थान तक।

594. दर्शनावरणीय कर्म की क्षायिक अवस्था कौनसे गुणस्थान में रहती है?

उ. 13वें, चौदहवें गुणस्थान में तथा सिद्धों में।

595. दर्शनावरणीय कर्म का उपशम होता है या नहीं?

उ. नहीं।

596. दर्शनावरणीय कर्म के क्षय और क्षयोपशम से क्या प्राप्त होता है?

उ. दर्शनावरणीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से केवलदर्शन की प्राप्ति होती है, जिससे जीव की अन्तर्दर्शन की शक्ति प्रकट होती है। जब क्षय न होकर केवल क्षयोपशम होता है तब चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीन दर्शन प्रकट होते हैं।

597. क्षयोपशम के 32 बोलों में दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम के कितने बोल हैं?

उ. आठ—पांच इन्द्रियां, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन।

598. दर्शनावरणीय कर्म की 9 उत्तर प्रकृतियों में सर्वघातिनी एवं देशघातिनी कितनी प्रकृतियां हैं?

उ. केवलदर्शनावरण तथा पांचों निद्राएं सर्वघातिनी प्रकृतियां हैं तथा बाकी तीनों का देशघातिनी प्रकृतियों में समावेश होता है।

599. चारों गति के जीवों में कितने व कौन-कौनसे दर्शन पाते हैं?

उ. सात नारकी, सर्व देवता, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में प्रथम तीन दर्शन पाते हैं।

- गर्भज मनुष्य में दर्शन चार पाते हैं।
- पांच स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय में दर्शन एक—अचक्षुदर्शन पाता है।
- चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य और सर्वयुगलियां में दर्शन दो पाते है—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन।
- सिद्धों में दर्शन एक—केवलदर्शन।

वेदनीय कर्म

वेदनीय कर्म

600. वेदनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से संसारी प्राणी सुख या दुःख का वेदन करते हैं वह वेदनीय कर्म है।

601. वेदनीय के कितने प्रकार हैं?

उ. दो—सात वेदनीय और असात वेदनीय।

602. सातवेदनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव शारीरिक और मानसिक सुख की अनुभूति करता है वह सातवेदनीय कर्म है।

603. असातवेदनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव मानसिक संक्लेश और शारीरिक कष्ट का अनुभव करता है वह असातवेदनीय कर्म है।[1]

604. स्थानांग सूत्र के अनुसार वेदना के दो प्रकार कौनसे हैं?

उ. स्थानांग सूत्र में वेदना दो प्रकार की बतायी गई हैं—

(1) आभ्युपगमिकी—अंगीकृत या स्वीकृत वेदना। जैसे—तपस्या आदि काल में वेदना होती है।

(2) औपक्रमिकी—उपक्रम के निमित्त से होने वाली वेदना। जैसे—शरीर में रोग संबंधी वेदना होती है।

605. सातवेदनीय कर्म बंध के कितने हेतु हैं?

उ. सातवेदनीय कर्म बंध के छः हेतु हैं—

(1) प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों[2] को अपनी असत् प्रवृत्ति से दुःख न देना।

(2) प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दीन न बनाना।

(3) प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के शरीर को हानि पहुंचाने वाला शौक पैदा न करना।

(4) प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को न सताना।

(5) प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों पर लाठी आदि से प्रहार न करना।

(6) प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को परितापित न करना।

---

1. कथा सं. 20 से 23
2. प्राण—दो, तीन, चार इन्द्रिय वाले जीव, भूत-वनस्पति के जीव, जीव-पांच इन्द्रिय वाले प्राणी, सत्त्व-पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु के जीव।

606. *जीव कर्कश वेदनीय कर्म का बंध कैसे करते हैं?*

उ. जीव प्राणातिपात पाप यावत् मिथ्यादर्शनशल्य पाप से कर्कश वेदनीय कर्म का बंध करते हैं।

607. *जीव अकर्कश वेदनीय कर्म का बंध कैसे करते हैं?*

उ. जीव प्राणातिपात विरमण यावत् परिग्रह विरमण, क्रोध विवेक यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विवेक से अकर्कश वेदनीय कर्म का बंध करते हैं।

608. *कर्कश और अकर्कश वेदनीय कर्म का अनुभव कैसा होता है?*

उ. घाणी में पीले जाने वाले खंधक मुनि शिष्यों की वेदना कर्कश[1] तथा भरत आदि चक्री के सात वेदनीय अकर्कश पुण्य कर्म जैसा अनुभव है।

609. *गति के आधार पर साता-असाता वेदनीय की न्यूनाधिकता क्या है?*

उ. देव और मनुष्य गति में प्रायः सातावेदनीय का और नरक व तिर्यंच में प्रायः असातावेदनीय का उदय रहता है।

610. *क्या देव और मनुष्य में असाता का उदय होता है?*

उ. हां। देवता में उनके सिंहासन का अपहरण होने से, देवी का वियोग होने से, अपने से अधिक ऋद्धि सम्पन्न देव को देखकर कई देवों को देवगति से च्युत होने का प्रसंग आने पर और भी अनेक कारणों से असाता के उदय के प्रसंग आते हैं।

इसी तरह वियोग, गरीबी, बीमारी, अपयश, बंधन आदि प्रसंगों में मनुष्य के असाता का उदय होता है।

611. *क्या नरकगति में भी सातवेदनीय के प्रसंग आते हैं?*

उ. नरकगति में भी नैरयिक जीव उपपात आदि के समय सातावेदनीय कर्म का अनुभव करते हैं। चार स्थानों से नैरयिक साता का अनुभव करते हैं—

1. उपपात—जन्म के समय उसके क्षेत्रजा वेदना, परस्पर उदीरित वेदना और परमाधार्मिक द्वारा उदीरित वेदना नहीं होती।
2. देव कर्म—कोई महर्द्धिक देव पूर्वभव के स्नेह के कारण नरक में जाकर कुछ समय के लिए किसी वेदना को उपशान्त कर देता है, तब वह सात का वेदन करता है।
3. अध्यवसान—नैरयिक शुभ अध्यवसाय के निमित्त से सुख प्राप्त करता है। यथा—सम्यक्त्व प्राप्ति के समय उसे महान् हर्ष होता है, मानो जन्मान्ध व्यक्ति को आंख मिल गई हो।

---

1. कथा संख्या 24

4. कर्म-अनुभाव—सात वेदनीय आदि शुभ कर्मों के उदय से वह सुख का अनुभव करता है। जैसे—तीर्थंकरों के जन्म, दीक्षा, कैवल्य प्राप्ति और निर्वाण के अवसर पर उनके प्रभाव से नरक में भी आलोक होता है, तब नैरयिकों को भी शुभ कर्मोदय के योग से सुख होता है। इस प्रकार के सुख के अनुभव तीसरी नरक तक ही हो सकता है।

612. क्या देवता रोग-ग्रस्त होते हैं?

उ. वैक्रिय शरीरधारी होने से देवताओं के शारीरिक रोग नहीं होते। मानसिक रोग हो सकते हैं। नो ग्रैवेयक और पांच अनुत्तरवासी देवों के मानसिक रोग भी नहीं होते।

613. चारों गतियों में साता-असातावेदनीय कर्म की अल्पता और बहुलता बताएं?

उ. सर्वाधिक साता का उदय देवों को, उससे कम मनुष्यों को होती है। मनुष्यों से कम तिर्यंचों को और सबसे कम नारकी जीवों को सातावेदनीय का उदय होता है।

नारकी जीवों को सबसे अधिक असाता का उदय होता है। नारकी से कम तिर्यञ्चों को, तिर्यंचों से कम मनुष्यों को और सबसे कम असाता का उदय होता है देवों को।

614. सातावेदनीय का जघन्य बंध किन जीवों के होता है?

उ. 11वें, 12वें तथा 13वें गुणस्थानवर्ती वीतरागी जीवों के सातावेदनीय का दो समय की स्थिति का जघन्य बंध होता है।

615. असातावेदनीय कर्म का जघन्य बंध किन जीवों के होता है?

उ. असातावेदनीय कर्म का जघन्य बंध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्ता जीव करते हैं।

616. ईर्यापथिकी बंध किसके होता है?

उ. अकषायी और वीतरागी के होने वाला बंध ईयापथिकी बंध कहलाता है।

617. साम्परायिक बंध किसके होता है?

उ. सकषायी और सराग के होने वाला बंध साम्परायिक बंध कहलाता है।

618. सात-असातवेदनीय पुण्य का उदय है या पाप का?

उ. सातवेदनीय पुण्य का उदय तथा असातवेदनीय पाप का उदय है।

619. बाईस परीषह में से कितने परीषह वेदनीय कर्म के उदय से होते हैं?

उ. ग्यारह—(1) क्षुधा, (2) पिपासा, (3) शीत, (4) उष्ण,

(5) दंशमशक, (6) चर्या, (7) शय्या, (8) वध, (9) रोग, (10) तृण-स्पर्श, (11) जल्ल।

620. *केवली के कितने परीषह होते हैं?*

उ. वेदनीय कर्म के उदय से होने वाले ग्यारह परीषह।

621. *वेदनीय कर्म की स्थिति कितनी है?*

उ. सातवेदनीय कर्म के दो भेद हैं—ईर्यापथिक और साम्परायिक।

(1) ईर्यापथिक की स्थिति—जघन्य-उत्कृष्ट दो समय।

(2) साम्परायिक की स्थिति—जघन्य 12 मुहूर्त, उत्कृष्ट 15 करोड़ाकरोड़ सागर।

622. *असातावेदनीय कर्म की स्थिति कितनी?*

उ. जघन्य एक सागर के 3/7 भाग में पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम, उत्कृष्ट 30 करोड़ाकरोड़ सागर।

623. *वेदनीय कर्म का अबाधाकाल कितना?*

उ. सातवेदनीय—जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पन्द्रह सौ वर्ष।
असातावेदनीय—जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

624. *वेदनीय कर्म का लक्षण एवं कार्य क्या है?*

उ. वेदनीय कर्म मधुलिप्त तलवार की धार के समान है। मधु के आस्वादन की तरह सातवेदनीय कर्म और जीभ कट जाने की तरह असातावेदनीय कर्म है।

625. *वेदनीय कर्म भोगने के कितने हेतु हैं?*

उ. वेदनीय कर्म भोगने के सोलह हेतु हैं—
सातवेदनीय कर्म के उदय से जीव सुख की अनुभूति करता है उसके अनुभाव आठ हैं—

1. मनोज्ञ शब्द
2. मनोज्ञ रूप
3. मनोज्ञ गंध
4. मनोज्ञ रस
5. मनोज्ञ स्पर्श
6. मन सुखता
7. वचन सुखता
8. काय सुखता।

626. *असातवेदनीय कर्म के उदय से जीव दुःख की अनुभूति करता है, उसके अनुभाव कितने हैं?*

उ. उसके अनुभाव आठ हैं—

1. अमनोज्ञ शब्द
2. अमनोज्ञ रूप
3. अमनोज्ञ गंध
4. अमनोज्ञ रस

5. अमनोज्ञ स्पर्श
6. मनोदु:खता
7. वचन दु:खता
8. काय दु:खता।

627. वेदनीय कर्म का बंध कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. * सातवेदनीय कर्म का बंध—
1. साम्परायिक बंध—पहले से दसवें गुणस्थान तक
2. ईर्यापथिक बंध—11वें, 12वें और 13वें गुणस्थानों में।

* असातवेदनीय कर्म का बंध—
पहले से छठे गुणस्थान तक होता है।[1]

628. वेदनीय कर्म का उदय कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. सभी गुणस्थानों में।

629. वेदनीय कर्म का उपशम और क्षयोपशम कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. वेदनीय कर्म का उपशम और क्षयोपशम नहीं होता।

630. वेदनीय कर्म का क्षायिक भाव किस गुणस्थान में होता है?

उ. वेदनीय कर्म का क्षायिक भाव गुणस्थानों में नहीं होता, सिद्धों में होता है।

---

1. असातवेदनीय का बंध छठे गुणस्थान से आगे नहीं होता है। इसका जघन्य बंध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव के होता है।

मोहनीय कर्म

मोहनीय कर्म

631. मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म मूढता उत्पन्न करे उसे मोहनीय कर्म कहते हैं अथवा चेतना को विकृत या मूर्च्छित करने वाला कर्म मोहनीय कर्म है।

632. मोहनीय कर्म कितने प्रकार का है?

उ. मोहनीय कर्म दो प्रकार का है—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।

633. दर्शन किसे कहते है?

उ. दर्शन का अर्थ है श्रद्धा, तत्त्वनिष्ठा, सम्यक्दृष्टि अथवा सम्यक्त्व।

634. दर्शन मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म सम्यक्दृष्टि उत्पन्न न होने दे, तत्त्व-अतत्त्व का भेद ज्ञान न होने दे, उसे दर्शन मोहनीय[1] कर्म कहते हैं।

635. दर्शन मोहनीय कर्म का स्वरूप क्या हैं?

उ. मनुष्य को भ्रमजाल में डाले रखना, शुभ दृष्टि उत्पन्न न होने देना।

636. किन-किन का अवर्णवाद करता हुआ जीव दर्शनमोहनीय कर्म का बंध करता है?

उ. अवर्णवाद का अर्थ है—'असद्भूतदोषोद्भावनम्'—जो दोष नहीं है उसका उद्भावन यानी कथन करना। ठाणं सूत्र में कहा गया है कि जीव पांच स्थानों से दुर्लभबोधिकत्व का अर्जन करता है—

1. अर्हन्तों का अवर्णवाद करता हुआ।
2. अर्हत् प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करता हुआ।
3. आचार्य-उपाध्याय का अवर्णवाद करता हुआ।
4. चतुर्वर्ण संघ का अवर्णवाद करता हुआ।
5. तप और ब्रह्मचर्य के विपाक से दिव्यगति को प्राप्त देवों का अवर्णवाद करता हुआ।

उपरोक्त सभी का अवर्णवाद दर्शन मोहनीय कर्म बंध का हेतु हैं।

637. दर्शन मोहनीय कर्म कितने प्रकार का है?

उ. तीन प्रकार का—(1) सम्यक्त्व मोहनीय, (2) मिथ्यात्व मोहनीय और (3) मिश्र मोहनीय।

---

1. कथा सं. 25

638. सम्यक्त्व मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म औपशमिक अथवा क्षायिक सम्यक्त्व (निर्मल अथवा स्थिर सम्यक्त्व) उत्पन्न होने में बाधक है, उसे सम्यक्त्व मोहनीय कर्म कहते हैं। प्रज्ञापना में सम्यक्त्व मोहनीय आदि को सम्यक्त्व वेदनीय आदि कहा है।

639. सम्यक्त्व मोहनीय कर्म की स्थिति कितनी है?

उ. जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट 66 सागर से कुछ अधिक।

640. सम्यक्त्व मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से जीव को क्या प्राप्त होता है?

उ. सम्यक्त्व मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से शुद्ध सम्यक्त्व प्रकट होता है और जीव नौ तत्त्वों की शुद्ध श्रद्धा करने लगता है।

641. सम्यग् दर्शन किसे कहते हैं?

उ. जिसमें जीव-अजीव आदि तत्त्व सही रूप में दृष्टिगत होते हैं, वह सम्यग्-दर्शन है। इसका ही दूसरा नाम सम्यक्त्व, सम्यकदृष्टि है।

642. तत्त्व किसे कहते हैं और उसके कितने प्रकार हैं?

उ. तत्त्व का अर्थ है—पदार्थ, पारमार्थिक वस्तु या सत्त्व। तत्त्व नौ हैं—

1. जीव—जिसमें चेतना हो, सुख-दुःख का संवेदन हो।
2. अजीव—जिसमें चेतना न हो।
3. पुण्य—शुभ रूप से उदय आने वाले कर्म-पुद्गल।
4. पाप—अशुभ रूप में उदय आने वाले कर्म-पुद्गल।
5. आश्रव—कर्म पुद्गलों को ग्रहण करने वाली आत्मप्रवृत्ति।
6. संवर—कर्म पुद्गलों के आगमन को रोकने वाली आत्मप्रवृत्ति।
7. निर्जरा—तपस्या आदि के द्वारा कर्म विलय से होने वाली आत्मा की आंशिक उज्ज्वलता।
8. बंध—आत्मा के साथ शुभ-अशुभ कर्मों का संबंध।
9. मोक्ष—अपने आत्म-स्वरूप में प्रतिष्ठित कर्मयुक्त आत्मा।

643. सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण क्या है?

उ. 1. दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय, क्षयोपशम और उपशम।

2. चारित्र मोहनीय की प्रथम चार-अनन्तानुबंधी चतुष्क-(क्रोध, मान, माया, लोभ), दर्शन मोहनीय की तीन-सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और मिश्र—इन सात प्रकृतियों के क्षय, क्षयोपशम या उपशम से सम्यक्त्व प्राप्त होती है।

644. सम्यक्त्व के कितने हेतु हैं?

उ. सम्यक्त्व के दो हेतु हैं—

(1) निसर्ग—बिना किसी प्रयत्न के सहज कर्म विलय से जो सम्यक्त्व उपलब्ध होती है, वह निसर्ग सम्यक्त्व है।

(2) अभिगम—(निमित्तज)—उपदेश या किसी बाह्य निमित्त से उपलब्ध सम्यक्त्व अभिगम कहलाती है।

645. सम्यक्त्व के कितने प्रकार हैं?

उ. सम्यक्त्व के मुख्यत: पांच प्रकार हैं—औपशमिक, सास्वादन, क्षायोपशमिक, वेदक और क्षायिक।

646. औपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उ. 1. दर्शन-मोहनीय का पूर्णरूप से उपशम होने पर जो सम्यक्त्व प्राप्त होता है वह औपशमिक सम्यक्त्व है।

2. उपशम श्रेणी में आरूढ़ व्यक्ति के दर्शन सप्तक प्रकृतियों का उपशम होने पर औपशमिक सम्यक्त्व होता है। अथवा जो तीन पुंज (सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और मिश्र) नहीं बनाता, जिसका मिथ्यात्व क्षीण नहीं होता, उसके उपशम सम्यक्त्व होता है।

647. उपशम श्रेणी किसे कहते हैं?

उ. मोहकर्म के उपशम की प्रक्रिया[1] को उपशम श्रेणी कहते हैं।

---

1. मोहकर्म की प्रकृतियों के उपशम का क्रम—
अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क–युगपत्, दर्शनत्रिक–युगपत्
नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यषट्क, पुरुषवेद
अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान–क्रोध-युगपत्
संज्वलन–क्रोध
अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान–मान-युगपत्
संज्वलन–मान
अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान–माया-युगपत्
संज्वलन–माया
अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान-लोभ युगवत्
संज्वलन लोभ।
विशेष—श्रेणी प्रारम्भ करने वाला यदि नपुंसक हो तो पहले स्त्रीवेद, फिर पुरुषवेद और अन्त में नपुंसकवेद का उपशमन करता है। यदि श्रेणी प्रारम्भ करने वाली स्त्री हो तो पहले नपुंसकवेद, फिर पुरुषवेद और अन्त में स्त्रीवेद का उपशमन करती है।

648. औपशमिक सम्यक्त्व कौनसे गुणस्थान तक रहता है?

उ. चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक।

649. सास्वादन सम्यक्त्व से क्या तात्पर्य है?

उ. औपशमिक सम्यक्त्व से गिरने वाला जीव जब मिथ्यात्व को प्राप्त होता है तब अन्तराल में जो सम्यक्त्व होता है उसे सास्वादन सम्यक्त्व कहते हैं। यह दूसरे गुणस्थान में होती है। इसकी स्थिति छह आवलिका की होती है।

650. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उ. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का अर्थ है—उदीर्ण (उदयप्राप्त) मिथ्यात्व का विपाकोदय में वेदन कर देना, उसे क्षीण कर देना तथा शेष अनुदीर्ण मिथ्यात्व का उपशम करना।

651. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कौनसे गुणस्थान तक रहती है?

उ. चौथे से सातवें गुणस्थान तक।

652. वेदक सम्यक्त्व किसे कहते हैं?[1]

उ. क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति जब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से होती है, उसके अन्तिम समय में सातों प्रकृतियां (दर्शन सप्तक) प्रदेशोदय के रूप में अनुभूत होती हैं, उसे वेदक सम्यक्त्व कहते हैं। यह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का अन्तिम समय है।

653. वेदक सम्यक्त्व कौनसे गुणस्थान तक रहती है?

उ. चौथे से सातवें गुणस्थान तक।

654. क्षायिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उ. अनन्तानुबंधी चतुष्क और दर्शन मोह की तीन—इन सात प्रकृतियों के क्षीण होने पर जो सम्यक्त्व प्राप्त होती है उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। जैसे चार ज्ञानों का अपगम होने पर शुद्ध केवलज्ञान प्रकट होता है, वैसे ही क्षयोपशम सम्यक्त्व के दूर होने पर क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

655. क्षायिक सम्यक्त्व कौनसे गुणस्थान में होती है?

उ. क्षायिक सम्यक्त्व चौथे से चौदहवें गुणस्थान तक तथा सिद्धों में होती है।

656. क्या क्षायिक सम्यक्त्वी जीव उपशम श्रेणी ले सकता है?

उ. हां, ले सकता है।

657. सम्यक्त्व की स्थिति कितनी है?

उ. 1. औपशमिक सम्यक्त्व-जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त।

2. सास्वादन सम्यक्त्व-जघन्य-एक समय, उत्कृष्ट-छह आवलिका।
3. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व-जघन्य-एक समय, उत्कृष्ट साधिक 66 सागर।
4. वेदक सम्यक्त्व-जघन्य-उत्कृष्ट-एक समय।
5. क्षायिक सम्यक्त्व-सादि अनन्त।

658. क्षपक श्रेणी किसे कहते हैं?

उ. मोक्ष की ओर गतिमान जीवों के मोह कर्म को सम्पूर्ण रूप से क्षय करने की प्रक्रिया[1] को क्षपक श्रेणी कहते हैं।

---

1. क्षपक श्रेणी में कर्म प्रकृतियों के क्षय का क्रम इस प्रकार हैं—
   - * अनन्तानुबंधी कषाय-चतुष्क।
   - * मिथ्यात्व-मिश्र-सम्यक्त्व मोह।
   - * अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान कषाय अष्टक का युगपत् क्षय प्रारम्भ–क्षयकाल के मध्यम भाग में सोलह अन्य प्रकृतियों का क्षय—

     1. नरकगति नाम 2. नरकानुपूर्वी नाम 3. तिर्यंचगति नाम
     4. तिर्यंचानुपूर्वी नाम 5. एकेन्द्रिय जाति नाम 6. द्वीन्द्रिय जाति नाम
     7. त्रीन्द्रिय जाति नाम 8. चतुरिन्द्रिय जाति नाम 9. आतप नाम
     10. उद्योत नाम 11. स्थावर नाम 12. सूक्ष्म नाम
     13. साधारण नाम 14. निद्रानिद्रा 15. प्रचला-प्रचला
     16. स्त्यानर्द्धि

   - * अवशिष्ट अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान कषाय अष्टक।
   - * नपुंसक वेद * स्त्री वेद
   - * हास्य षट्क (हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा), पुरुषवेद।
   - * क्रमशः संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ।

     जीव छद्मस्थकाल (क्षीण मोह गुणस्थान) के दो समय शेष रहने पर निद्रा आदि प्रकृतियों का क्षय करता है।

   - ❑ प्रथम समय में क्षय होने वाली प्रकृतियां।

     * निद्रा * प्रचला * देवगति नाम * देवानुपूर्वी नाम * वैक्रिय नाम
     * संहनन (वज्रऋषभनाराच को छोड़कर)। * संस्थान नाम * तीर्थंकर नाम
     * आहारक नाम।

   - ❑ दूसरे समय में (छद्मस्थकाल के अन्तिम समय में) क्षीण होने वाली प्रकृतियां—

     * ज्ञानावरण चतुष्क * दर्शनावरण चतुष्क * अन्तराय पंचक

     इन सब प्रकृतियों के क्षीण होने पर केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

659. क्षपक श्रेणी वाला जीव मरकर कहाँ जाता है?

उ. मोक्ष में, सिद्धगति में।

660. क्षपक श्रेणी का आरोहण कौन कर सकता है?

उ. अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत—इन चारों में से कोई भी शुद्ध ध्यानोपगत चित्तवाला जीव क्षपक श्रेणी का आरोहण कर सकता है।

661. जीव को उपशम अथवा क्षपक श्रेणी कब प्राप्त होती है?

उ. सम्यक्त्व के प्राप्तिकाल में मोहकर्म की जितनी स्थिति अवशिष्ट रहती है, उस स्थिति में से पल्योपम पृथक्त्व (दो से नौ पल्योपम) स्थितिखंड के क्षय होने पर जीव देशविरति को प्राप्त करता है। संख्यात सागरोपम के क्षीण होने पर सर्वविरति प्राप्त करता है। उसमें से संख्यात सागरोपम क्षीण होने पर उपशम श्रेणी, उसमें से संख्यात सागरोपम क्षीण होने पर क्षपक श्रेणी प्राप्त करता है।

662. औपशमिक सम्यक्त्वी क्या क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो सकता है?

उ. औपशमिक सम्यक्त्वी क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ नहीं हो सकता। उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हो सकता है।

663. क्या क्षायक सम्यक्त्वी उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हो सकता है?

उ. क्षायक सम्यक्त्वी क्षपक व उपशम दोनों श्रेणियों पर आरूढ़ हो सकता है।

664. क्या क्षयोपशम सम्यक्त्वी श्रेणी ले सकता है?

उ. क्षयोपशम सम्यक्त्वी दोनों ही श्रेणी नहीं ले सकता।

665. जीव एक भव में कितनी बार श्रेणी आरोहण कर सकता है?

उ. जीव एक भव में उपश्रेणी दो बार लेता है, पर क्षपक श्रेणी एक ही लेता है। एक बार उपशम श्रेणी लेने के बाद उस भव में क्षपक श्रेणी पर आरोहण नहीं होता—यह प्रवचन सारोद्धार टीका का अभिमत है। कर्मग्रन्थ के अनुसार एक बार उपशम श्रेणी लेने के बाद उस भव में क्षपक श्रेणी पर आरोहण कर सकता है।

666. पांचों सम्यक्त्व की अल्पाबहुत्व का क्या क्रम है?

उ. सबसे कम उपशम सम्यक्त्वी है। उससे संख्यात गुणा अधिक वेदक सम्यक्त्वी, उससे संख्यात गुण अधिक सास्वादन सम्यक्त्वी, उससे असंख्य गुण अधिक क्षयोपशम सम्यक्त्वी है, उससे अनन्त गुण अधिक क्षायिक सम्यक्त्वी है (सिद्धों की अपेक्षा से)।

667. सम्यक्त्व के तीन प्रकार कौनसे हैं?

उ. सम्यक्त्व के तीन प्रकार—कारक, रोचक और दीपक सम्यक्त्व।

668. कारक सम्यक्त्व से क्या तात्पर्य है?

उ. कारक सम्यक्त्व के होने पर व्यक्ति सम्यक् आचरण करता है, जैसे साधु।

669. रोचक सम्यक्त्व से क्या तात्पर्य है?

उ. रोचक सम्यक्त्व के होने पर व्यक्ति सदनुष्ठान में केवल रुचि रखता है, क्रिया नहीं करता। जैसे सम्राट् श्रेणिक आदि।

670. दीपक सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उ. दीपक सम्यक्त्व—इसका शाब्दिक अर्थ है—सम्यक्त्व को दीप्त करना। तत्त्वश्रद्धा से शून्य मिथ्यादृष्टि व्यक्ति भी धर्मकथा आदि के द्वारा दूसरों में तत्त्वश्रद्धा उत्पन्न कर देता है। कारण में कार्य का उपचार कर उसके इस उद्दीपन के परिणाम विशेष को दीपक सम्यक्त्व कहा जाता है। अभव्य और मिथ्यादृष्टि भव्य के यह सम्यक्त्व होता है।

671. क्या सम्यक्त्व चारों गतियों में प्राप्त हो सकती है?

उ. चारों ही गतियों में जीव औपशमिक, क्षायोपशमिक व सास्वादन सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकता है। क्षायिक व वेदक सम्यक्त्व मात्र मनुष्य गति में ही प्राप्त होती है।

672. क्या सम्यक्त्व चारों गतियों में होती है?

उ. चारों ही गतियों में चार सम्यक्त्व वाले जीव होते हैं वेदक को छोड़कर। वेदक सम्यक्त्व प्राप्त जीव केवल मनुष्य गति में ही होते हैं। कुछ आचार्यों ने तिर्यंचगति में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं माना है।

673. क्षायिक सम्यक्त्वी कितने भवों में मोक्ष प्राप्त कर सकता है?

उ. क्षायिक सम्यक्त्वी एक या तीन भवों में मोक्ष प्राप्त करता है। कदाचित् चार अथवा पांच भव भी प्राप्त करता है। यदि आयुष्य का बंध नहीं हुआ

हो तो उसी भव में क्षायिक सम्यक्त्वी मोक्ष में जाता है। यदि आयुष्य बांधा हो तो तीन भवों में मोक्ष जाता है।

674. क्षायिक सम्यक्त्वी तीन भव किस प्रकार करता है?

उ. प्रथम क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्ति (मनुष्य) का भव, दूसरा नरक या देव का भव और तीसरे मनुष्य भव में मोक्ष में जाता है।

675. कौनसा क्षायिक सम्यक्त्वी नियमत: तीन भव करता है?

उ. तीर्थंकर नाम कर्म वाला क्षायिक सम्यक्त्वी नियमत: तीन भव करता है।

676. क्षायिक सम्यक्त्वी चार भव किस प्रकार करता है?

उ. पहला क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्ति का मनुष्य भव, दूसरा युगलिक का भव, तीसरा देव का भव और चौथे मनुष्य का भव, जहाँ से मोक्ष में जाता है।

677. क्षायिक सम्यक्त्वी पांच भव किस प्रकार करता है?

उ. प्रथम क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्ति का भव, दूसरा देव अथवा नरक का भव, तीसरा मनुष्य का भव, चौथा देव का भव, पांचवां मनुष्य का भव जहाँ से मोक्ष में जाता है।

678. कौनसे संहनन वाले जीव को ही क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है?

उ. वज्रऋषभनाराच संहनन वाले जीव को ही क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होती है।

679. क्या सम्यक्त्व का उच्छेद (समाप्ति) हो सकता है?

उ. क्षायक सम्यक्त्व को छोड़कर शेष चार सम्यक्त्व का उच्छेद हो सकता है।

680. सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद जीव संसार में कब तक परिभ्रमण कर सकता है?

उ. सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद जीव उसी भव में मुक्त हो सकता है। अधिकतम कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन तक परिभ्रमण कर सकता है।

681. सम्यक्त्वी मरकर कहां जाता है?

उ. सम्यक्त्वी दो प्रकार के होते हैं—

(1) औदारिक शरीरी (2) वैक्रिय शरीरी।

औदारिक शरीरी अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच। सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद जब ये आयुष्य का बंध करते हैं, तो वे निश्चित ही देवगति में—उसमें भी केवल

वैमानिक देवलोक में जाते हैं। वैक्रिय शरीरी नारक और देव–सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद केवल मनुष्य गति का ही बंध करते हैं।

सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व यदि आयुष्य का बंध हो जाए तो औदारिक शरीरी चारों गतियों में जा सकते हैं। वैक्रिय शरीरी केवल मनुष्य और तिर्यंचगति में जाते हैं।

682. क्या सम्यक्त्व और चारित्र साथ-साथ रहते हैं?

उ. सम्यक्त्व शून्य चारित्र नहीं होता। दर्शन में चारित्र की भजना है। सम्यक्त्व और चारित्र युगपत् उत्पन्न होते हैं और जहाँ वे युगपत् उत्पन्न नहीं होते वहां सम्यक्त्व पहले होता है।

683. सम्यक्त्वी में चारित्र कितने होते हैं?

उ. औपशमिक सम्यक्त्वी में–4 परिहारविशुद्धि चारित्र को छोड़कर।

सास्वादन सम्यक्त्वी में–चारित्र नहीं।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी में–3 (प्रथम तीन)

वेदक सम्यक्त्वी में–3, क्षायोपशमिकवत्।

क्षायिक सम्यक्त्वी में 5 (सभी)।

684. सम्यक्त्व का क्या महत्त्व है?

उ. जो जीव सम्यक्त्वी नहीं है उसे ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्रगुण नहीं होता, चारित्र के अभाव में कर्ममुक्त नहीं होता और अमुक्त का निर्वाण नहीं होता।

685. सम्यक्त्व और चारित्र में मुख्यता किसकी होनी चाहिए?

उ. आवश्यक निर्युक्ति में कहा गया—श्रेणिक न बहुश्रुत था, न प्रज्ञप्तिधर था और न ही वाचक। फिर भी वह आगामी काल में तीर्थंकर होगा। प्रज्ञा से समीक्षा करने पर दर्शन ही प्रधान है।

चारित्र से भ्रष्ट होने पर भी दर्शन (सम्यक्त्व) को दृढ़ रखना चाहिए। क्योंकि चारित्र से रहित व्यक्ति भी सिद्ध हो सकता है। दर्शन से रहित सिद्ध नहीं हो सकता। (यह आपेक्षिक कथन है। निश्चय में तो दर्शन, ज्ञान व चारित्र की त्रिपदी ही मुक्ति का मार्ग है।)[1]

---

1. आवश्यक निर्युक्ति—1158/1159

686. सम्यक्त्व (दर्शन सम्पन्नता) का क्या परिणाम है?

उ. मिथ्यात्व से प्रतिक्षण सघन कर्मबंध होता है। जिसका परिणाम है—जन्म, जरा, मृत्यु वाले संसार में परिभ्रमण।

मिथ्यात्व से प्रतिक्रमण कर सम्यक्त्व में स्थित होने का परिणाम है—देवत्व, मनुष्यत्व की प्राप्ति और अंत में मोक्ष।

687. सम्यक्त्व प्राप्ति और ज्ञान का क्या साथ है?

उ. विभंगज्ञानी सम्यक्त्व में परिणत होता हुआ तत्काल तीन ज्ञान प्राप्त करता है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान।

विभंगज्ञान से रहित मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व में परिणत होता हुआ मतिज्ञान और श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है।[1]

688. क्या सम्यक्त्व और मिथ्यात्व कर्म पुद्गलों का एक-दूसरे में संक्रमण हो सकता है?

उ. मिथ्यात्व पुद्गलों का सम्यक्त्व और मिश्र (सम्यक्-मिथ्यात्व) के पुद्गलों में संक्रमण हो सकता है। मिश्र पुद्गलों का सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के पुद्गलों में संक्रमण हो सकता है। सम्यक्त्व के पुद्गलों का मिश्र में संक्रमण नहीं होता।

689. सम्यक्त्व प्राप्ति के समय जीव कितने पुंजवाला होता है?

उ. केवली आदि की वाणी को सुनकर अथवा जातिस्मरण आदि के द्वारा सम्यक्त्व के स्वरूप को जानकर अपूर्वकरण[2] में वर्तमान जीव वर्धमान परिणामधारा के कारण एक साथ मिथ्यात्व पुद्गलों के तीन पुंज करता है—मिथ्यात्व पुद्गल, मिश्र पुद्गल और सम्यक्त्व पुद्गल।

जब तक मिथ्यात्व क्षीण नहीं होता, तब तक सम्यक्त्वी नियमतः त्रिपुंजी होता है। मिथ्यात्व क्षीण होने पर द्विपुंजी, मिश्रपुंज के क्षीण होने पर एकपुंजी और सम्यक्त्व पुंज के क्षीण होने पर अपुंजी अर्थात् क्षपक हो जाता है।[3]

690. सम्यक्त्व के अयोग्य कौन होते हैं?

उ. तीन प्रकार के व्यक्ति सम्यक्त्व के अयोग्य अथवा कठिनाई से प्रतिबोध प्राप्त करने वाले होते हैं—

दुष्ट—तत्त्व या तत्त्वप्रज्ञापक के प्रति द्वेष रखने वाले।

---

1. बृहत्कल्पभाष्य-125
2. अपूर्वकरण–जो पहले प्राप्त नहीं हुआ, ऐसा अध्यवसाय।
3. बृहत्कल्पभाष्य-111, 117

मूढ़—गुण और दोषों से अनजान।

व्युद्ग्राहित—दुराग्रही द्वारा जिसका विपरीत बोध सुदृढ़ हो जाता है।[1]

691. सम्यक्त्व ग्रहण के अपवाद क्या है?2

उ. सम्यक्त्व ग्रहण के पांच अपवाद हैं—

(1) राजाभियोग, (2) गणाभियोग, (3) देवताभियोग, (4) गुरुनिग्रह, (5) वृत्तिकान्तार।

692. सम्यक्त्व के कितने लक्षण हैं?

उ. सम्यक्त्व के पांच लक्षण हैं—

1. शम—क्रोध आदि कषायों की शान्ति।
2. संवेग—मोक्ष की अभिलाषा।
3. निर्वेद—संसार से विरति।
4. अनुकम्पा—प्राणीमात्र के प्रति दयाभाव।
5. आस्तिक्य—आत्मा, कर्म आदि में विश्वास।

693. सम्यक्त्व के कितने भूषण हैं?

उ. सम्यक्त्व के पांच भूषण हैं—

(1) स्थैर्य–धर्म में स्थिर रहना।

(2) प्रभावना–धर्म की महिमा बढ़ाना।

(3) भक्ति–देव, गुरु और धर्म का बहुमान करना।

(4) तीर्थसेवा–चरमतीर्थ की यथोचित सेवा करना।

694. सम्यक्त्व के कितने दूषण (अतिचार) हैं?

उ. सम्यक्त्व को मलिन करने वाले पांच दूषण हैं—

(1) शंका—तत्त्व के प्रति संदेह करना।

(2) कांक्षा—कुमत की वांछा करना।

(3) विचिकित्सा—धर्म के फल प्राप्ति में संदेह करना।

(4) परपाषण्डप्रशंसा—कुतत्त्वगामी व्यक्तियों की प्रशंसा करना।

(5) परपाषण्डपरिचय—मिथ्यादृष्टि तथा व्रतभ्रष्ट पुरुषों का परिचय करना।

---

1. *बृहत्कल्पभाष्य-5211*
2. आवश्यक चूर्णि-2 पृ. 276-278

695. सम्यक्त्व के आचार कितने हैं?

उ. सम्यक्त्व के आठ आचार हैं—

(1) नि:शंकित—वीतराग वचनों पर दृढ़ आस्था रखना, संदेह नहीं करना।

(2) नि:कांक्षित—कुमत की वांछा न करना।

(3) निर्विचिकित्सा—धर्म के फल में संशय न करना।

(4) अमूढ़दृष्टि—परदर्शन की समृद्धि देखकर न फंसना।

(5) उपबृंहण—साधार्मिक का गुणोत्कीर्तन करना।

(6) स्थिरीकरण—धर्म के पथ से विचलित व्यक्तियों को पुन: धर्म में स्थिर करना।

(7) वात्सल्य—गुरु, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान आदि की विशेष सेवा करना।

(8) प्रभावना—वीतराग शासन की महिमा बढ़ाना।

696. सम्यक्त्व और ज्ञान में क्या अन्तर है?

उ. जैसे अवग्रह और ईहा सामान्य अवबोध के कारण दर्शन है और अवाय तथा धारणा विशेष अवबोध के कारण ज्ञान है, वैसे ही तत्त्व विषयक रुचि श्रद्धा सम्यक्त्व है और जिससे जीव आदि तत्त्वों पर श्रद्धा होती है वह ज्ञान है।

697. मिथ्यात्व मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म तत्त्वों में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होने देता और विपरीत श्रद्धा उत्पन्न करता है उसे मिथ्यात्व मोहनीय कर्म कहते हैं। इसके उदय से जीव मिथ्यादृष्टि वाला होता है। तीसरा गुणस्थान प्राप्त नहीं होता।

698. मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ. तत्त्व में अरुचि और अतत्त्व में रुचि होना मिथ्यात्व है।

699. मिथ्यात्व के कितने प्रकार हैं?

उ. मिथ्यात्व पांच प्रकार का होता है—

(1) आभिग्रहिक मिथ्यात्व : तत्त्व की परीक्षा किये बिना किसी सिद्धांत को ग्रहण कर दूसरे का खण्डन करना। यह दीर्घकालिक होता है।

(2) अनाभिग्रहिक : गुणदोष की परीक्षा किये बिना सब मंतव्यों को समान समझना।

(3) आभिनिवेशिक : अपनी मान्यता को असत्य समझ लेने पर भी उसे पकड़े रहना। यह अल्पकालिक होता है।

(4) अनाभोगिक : ज्ञान के अभाव में या मोह की प्रबलतम अवस्था के कारण गलत तत्त्व को पकड़े रहना।

(5) सांशयिक : देव, गुरु और धर्म के स्वरूप में संदेह-बुद्धि रखना।

700. अनाभिग्रहिक मिथ्यात्वी कौन होते हैं?

उ. असंज्ञी और अज्ञानी अनाभिग्रहिक मिथ्यात्वी होते हैं। कुछ संज्ञी भी *अनाभिग्रहिक मिथ्यात्वी होते हैं।*

701. शास्त्रों में वर्णित व्यावहारिक मिथ्यात्व के दस प्रकार कौनसे हैं?

उ. ठाणं सूत्र के दसवें स्थान 74वें सूत्र में मिथ्यात्व के दस प्रकार दिये गये हैं—

(1) अधर्म में धर्म की संज्ञा। (2) धर्म में अधर्म की संज्ञा।

(3) अमार्ग में मार्ग की संज्ञा। (4) मार्ग में अमार्ग की संज्ञा।

(5) अजीव में जीव की संज्ञा। (6) जीव में अजीव की संज्ञा।

(7) असाधु में साधु की संज्ञा। (8) साधु में असाधु की संज्ञा।

(9) अमुक्त में मुक्त की संज्ञा। (10) मुक्त में अमुक्त की संज्ञा।

702. मिथ्यात्व के छह स्थान कौन-कौनसे हैं?

उ. (1) आत्मा नहीं है, (2) आत्मा नित्य नहीं है, (3) आत्मा सुख-दुःख का कर्ता नहीं है, (4) आत्मा कृतकर्मा का भोक्ता नहीं है, (5) निर्वाण नहीं है, (6) निर्वाण का उपाय नहीं है—ये छः स्थान मिथ्यात्व के हैं।

703. मिथ्यात्व-मोहनीय कर्म प्रकृति की स्थिति कितनी है?

उ. जघन्य एक सागर में पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम एवं उत्कृष्ट सत्तर करोड़ाकरोड़ सागर की है।

704. मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से जीव को क्या प्राप्त होता है?

उ. मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से मिथ्यादृष्टि उज्ज्वल होती है। इससे जीव कुछ पदार्थों की सत्य श्रद्धा करने लगता है।

705. मिश्र-मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म चित्त की स्थिति को दोलायमान रखता है—तत्त्वों में श्रद्धा नहीं होने देता और अश्रद्धा भी नहीं होने देता उसे सम्यक् मिथ्यात्व मोहनीय (मिश्र मोहनीय) कर्म कहते हैं।

706. मिश्र मोहनीय कर्म प्रकृति की स्थिति कितनी है?

उ. जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त।

707. मिश्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से जीव को क्या प्राप्त होता है?

उ. मिश्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से सम्यक् मिथ्यादृष्टि उज्ज्वल होती है।

708. सम्यक् मिथ्यादृष्टि जीव कौन होता है?

उ. सम्यक् मिथ्यादृष्टि जीव निश्चित रूप से भवस्थ पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय होता है।[1]

709. दर्शन-मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से क्या प्राप्त होता है?

उ. दर्शन-मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से समुच्चय रूप से शुद्ध श्रद्धा उत्पन्न होती है।

710. दर्शन-मोहनीय की तीन प्रकृतियों में देशघाती कितनी और सर्वघाती कितनी?

उ. सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीय ये दो देशघाती और मिथ्यात्व मोहनीय सर्वघाती।

711. दर्शन मोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से जीव क्या प्राप्त करता है?

उ. क्षायिक सम्यक्त्व। यह सम्यक्त्व सम्पूर्णतः विशुद्ध और अटल होता है। क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद वापस नहीं जाता है।

712. दर्शन मोह के क्षय होने पर जीव कौनसा गुणस्थान प्राप्त करता है?

उ. निवृत्ति बादर गुणस्थान।

713. चारित्र मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो सम्यक् चारित्र-आचरण को न होने दे उसे चारित्र मोहनीय कर्म कहते हैं।

714. चारित्र मोहनीय कर्म कितने प्रकार का है?

उ. चारित्र मोहनीय कर्म दो प्रकार का हैं—

(1) कषाय चारित्र मोहनीय कर्म, (2) नो कषाय चारित्र मोहनीय कर्म।

---

1. वह पहले मिथ्यादृष्टि होता है, फिर शुभ अध्यवसायों के प्रयोग से उपचित मिथ्यात्व पुद्गलों को तीन भागों में विभक्त करता है—मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। जब जीव मिथ्यात्व पुद्गलों को विशुद्ध कर मिथ्यात्व के उदय को सम्यक् मिथ्यात्व के उदय के रूप में परिणत करता है, तब वह जिन वचनों पर श्रद्धा और अश्रद्धा करना है, यह सम्यक् मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है। इसका कालमान अन्तर्मुहूर्त है। उसके पश्चात् वह सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व को प्राप्त करता है।

715. कषाय मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से प्रति समय कषाय का वेदन होता है एवं जिसके द्वारा आत्मा कषाय से उतप्त रहती है, उसे कषाय मोहनीय कर्म कहते हैं।

716. चारित्र मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियां कितनी हैं?

उ. पचीस।

717. चारित्र मोहनीय कर्म की पचीस प्रकृतियों में से कषाय चारित्र मोहनीय की कितनी प्रकृतियां हैं?

उ. कषाय चारित्र मोहनीय की सोलह प्रकृतियां हैं—

1-4 अनन्तानुबंधी—क्रोध, मान, माया और लोभ।

5-8 अप्रत्याख्यानी—क्रोध, मान, माया और लोभ।

9-12 प्रत्याख्यानी—क्रोध, मान, माया और लोभ।

13-16 संज्वलन—क्रोध, मान, माया और लोभ।

718. अनन्तानुबंधी किसे कहते हैं?

उ. अनन्तानुबंधी—जिसका अनुबन्ध (परिणाम) अनन्त होता है उसे अनन्तानुबंधी कहते हैं। ये कर्म ऐसे उत्कृष्ट क्रोध आदि उत्पन्न करते हैं जिनके प्रभाव से जीव को अनन्त काल तक संसार-भ्रमण करना पड़ता है।

719. आगम में वर्णित चार कषाय कौन-कौन से हैं?

उ. क्रोध[1], मान, माया[2], लोभ—ये चारों कषाय कर्म-बंध के हेतु हैं।

720. अनन्तानुबंधी किसका उपघात करने वाला है?

उ. अनन्तानुबंधी कषाय सम्यग्दर्शन का उपघात करने वाला है जिस जीव के अनन्तानुबंधी चतुष्क (क्रोध, मान, माया और लोभ) में से किसी का भी उदय होता है उसके सम्यग् दर्शन उत्पन्न नहीं होता। यदि पहले सम्यक् दर्शन उत्पन्न हो गया हो और उसके बाद अनन्तानुबंधी कषाय का उदय हो तो आया हुआ सम्यग् दर्शन भी नष्ट हो जाता है।

721. अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय किसे कहते हैं?

उ. अप्रत्याख्यान-विरति मात्र का अवरोध करने वाले कर्म। जो कर्म ऐसे

---

1. कथा सं. 26
2. कथा सं. 27

क्रोध-मान-माया-लोभ को उत्पन्न करें कि जिससे सम्यक्त्व तो न रुके किन्तु थोड़ी-सी भी पाप विरति (प्रत्याख्यान) न हो सके उसे क्रमशः अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध-मान-माया और लोभ कहते हैं।

721. अप्रत्याख्यान कषाय किसका अभिघात करता है?

उ. अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से किसी भी तरह की एक देश या सर्वदेश विरति नहीं होती। जीव महाव्रत या श्रावक के व्रतों को स्वीकार नहीं कर सकता।[1]

722. प्रत्याख्यानावरणीय कषाय किसे कहते हैं?

उ. जिनके उदय से सम्यक्त्व और देश और प्रत्याख्यान तो न रुके पर सर्व प्रत्याख्यान न हो सके, सर्व सावद्य विरति न हो सके उन्हें प्रत्याख्यानावरणीय कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) कहते हैं।[2]

723. प्रत्याख्यान चतुष्क से किसका अभिघात होता हैं?

उ. इस कर्म के उदय से विरताविरति-एक देश रूप संयम होने पर भी सर्व चारित्र की प्राप्ति नहीं होती।

724. संज्वलन कषाय (चतुष्क) किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से सर्वप्रत्याख्यान होने पर भी यथाख्यात चारित्र नहीं हो पाता। वह संज्वलन कषाय है। श्वेताम्बर विद्वानों के अनुसार जो कर्म संविग्न और सर्व पाप की विरति से युक्त को भी क्रोधादि युक्त करता है। शब्दादि विषयों को प्राप्त कर जिससे जीव बार-बार कषाय युक्त होता है, वह संज्वलन कषाय है।

725. संज्वलन कषाय चतुष्क से किसका अभिघात होता है?

उ. यथाख्यात चारित्र का।

726. चारित्र मोह की प्रकृतियों की स्थिति क्या है?

उ.

कषाय	**जघन्य**	**उत्कृष्ट**
अनंतानुबंधी चतुष्क	एक सागर के 3/7 भाग	चालीस करोड़ाकरोड़ सागर
अप्रत्याख्यानी चतुष्क	में पल्योपम का	चालीस करोड़ाकरोड़ सागर

1. कथा सं. 28
2. कथा सं. 29

कषाय	जघन्य	उत्कृष्ट
प्रत्याख्यानी चतुष्क	असंख्यातवां भाग कम[1]	चालीस करोड़ाकरोड़ सागर
संज्वलन क्रोध	दो महिना	चालीस करोड़ाकरोड़ सागर
संज्वलन मान	एक महिना	चालीस करोड़ाकरोड़ सागर
संज्वलन माया	पन्द्रह दिन	चालीस करोड़ाकरोड़ सागर
संज्वलन लोभ	अन्तर्मुहूर्त[2]	चालीस करोड़ाकरोड़ सागर

727. कौनसा कषाय चतुष्क उदय में आने पर कितने समय तक रह सकता है?

उ. अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क उदय में आने पर—यावज्जीवन।
अप्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क उदय में आने पर—एक वर्ष।
प्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क उदय में आने पर—एक महिना।
संज्वलन कषाय चतुष्क उदय में आने पर—पन्द्रह दिन।
अर्थात् एक बार उदय में आने पर उतने समय तक उनका प्रभाव रह सकता है।

728. कषाय की अवस्था में कौनसी गति प्राप्त होती है?

उ. अनन्तानुबंधी कषाय की अवस्था में—नरकगति।
अप्रत्याख्यानी कषाय की अवस्था में—तिर्यंचगति।
प्रत्याख्यानी कषाय की अवस्था में—मनुष्यगति।
संज्वलन कषाय की अवस्था में—देवगति।

729. किस गति के जीवों के सर्व विरति के परिणाम होते हैं?

उ. केवल मनुष्य गति के जीवों के ही सर्व विरति के परिणाम होते हैं। शेष तीन गतियों के जीव सर्वविरति जीवन स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि उनके तद्विषयक कषायों का क्षयोपशम नहीं होता।

730. चारित्र मोहनीय की उपरोक्त सोलह प्रकृतियों को किस उपमा से उपमित किया गया है? अथवा इनके लक्षण क्या हैं?

उ. अनन्तानुबंधी क्रोध—पत्थर की रेखा के समान।
अनन्तानुबंधी मान—पत्थर के स्तम्भ के समान।

---

1. सभी कर्मों की जघन्य स्थिति का बंध-नौवें, दसवें गुणस्थान को छोड़कर एकेन्द्रिय के होता है एवं उत्कृष्ट स्थिति का बंध संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मिथ्यात्वी एवं संक्लिष्ट परिणाम वाले के होता है।
2. संज्वलन कषाय का जघन्य बंध नौवें गुणस्थान में होता है।

अनन्तानुबंधी माया—बांस की जड़ के समान।
अनन्तानुबंधी लोभ—कृमि रेशम के रंग के समान।
अप्रत्याख्यानी क्रोध—भूमि के रेखा के समान।
अप्रत्याख्यानी मान—अस्थि के स्तम्भ के समान।
अप्रत्याख्यानी माया—मेढ़े के सींग के समान।
अप्रत्याख्यानी लोभ—कीचड़ के रंग के समान।
प्रत्याख्यानी क्रोध—बालू की रेखा के समान।
प्रत्याख्यानी मान—काष्ठ के स्तम्भ के समान।
प्रत्याख्यानी माया—चलते बैल की मूत्र की धारा के समान।
प्रत्याख्यानी लोभ—गाड़ी के खंजन के समान।
संज्वलन क्रोध—जल की रेखा के समान।
संज्वलन मान—लता के स्तम्भ के समान।
संज्वलन माया—छिले हुए बांस की छाल के समान।
संज्वलन लोभ—हल्दी के रंग के समान।

731. कषाय की कालावधि क्या है?

उ. जो क्रोध पानी की रेखा के समान है, वह उसी दिन के प्रतिक्रमण से या पाक्षिक प्रतिक्रमण से उपशान्त हो जाता है। जो चातुर्मासिक काल में उपशान्त होता है वह बालू की रेखा के समान है। जो सांवत्सरिक काल में उपशान्त होता है, वह भूमि की रेखा के समान है तथा जो पर्वत रेखा के समान क्रोध है वह जीवनपर्यन्त नष्ट नहीं होता।

732. क्रोधी अधिक दोषी है या मानी?

उ. मानी। क्रोध में मान वैकल्पिक है। मान में क्रोध की नियमा है। अतः क्रोधी से मानी बहुतर दोषवाला है।

733. कषाय से किसकी हानि होती है?

उ. चारित्र की। (कनकरस का दृष्टान्त) बृहत्कल्पभाष्य में कहा गया है—देशोन कोटि पूर्व तक की गई चारित्र की आराधना कषाय के उदय मात्र से मुहूर्त भर में समाप्त हो जाती है।

734. क्या कषाय पुनर्जन्म का हेतु है?

उ. हां, अनिगृहीत क्रोध और मान, प्रवर्धमान माया और लोभ—ये चारों संक्लिष्ट कषाय पुनर्जन्म रूप वृक्ष की जड़ों का सिंचन करते हैं।

735. क्रोधादि किसका नाश करते हैं?

उ. क्रोध—प्रीति का नाश करता है, मान—विनय का, माया—मैत्री का, लोभ-सब का विनाश करता है।

736. चारों कषायों पर विजय पाने के उपाय क्या हैं?

उ. उपशम से क्रोध पर, मृदुता से मान पर, ऋजुता से माया पर और सन्तोष से लोभ पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

737. कषाय प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है?

उ. कषाय प्रत्याख्यान से जीव वीतराग भाव को प्राप्त करता है। वीतराग भाव को प्राप्त हुआ जीव सुख-दुःख में सम हो जाता है।

क्रोध-मान-माया-लोभ विजय से जीव क्रमशः क्षमा, मृदुता, ऋजुता और संतोष को उत्पन्न करता है। वह क्रोध-मान-माया-लोभ वेदनीय कर्म का बंध नहीं करता और पूर्वबद्ध तत्निमित्तक कर्म को क्षीण करता है।

738. जिस श्रमण का कषाय प्रबल होता है उसका श्रामण्य कैसा होता है?

उ. जिस श्रमण का कषाय प्रबल होता है उसका श्रामण्य इक्षु पुष्प की भांति निष्फल होता है।

739. नो-कषाय चारित्र मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. * नो-कषाय मोहनीय, 'नो' शब्द के कई अर्थ होते हैं—निषेध, आंशिक निषेध, साहचर्य आदि। प्रस्तुत प्रसंग में इसका अर्थ साहचर्य है। इन सोलह कषायों के साहचर्य से जो कर्म उदय में आते हैं, उन्हें नो-कषाय कहा जाता है।

* जो कषाय के सहवर्ती हैं, मूलभूत कषायों को उत्तेजित करते हैं, हास्य आदि के रूप में जिनका वेदन होता है—कषाय-मोहनीय के क्षय होने से पहले क्षय हो जाते हैं वे नो-कषाय हैं।

740. नो कषाय के नौ प्रकार कौनसे हैं?

उ. (1) हास्य, (2) रति, (3) अरति, (4) भय, (5) शोक, (6) जुगुप्सा, (7) स्त्रीवेद, (8) पुरुषवेद, (9) नपुंसकवेद।

741. हास्य मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से सनिमित्त या अनिमित्त हास्य की प्रवृत्ति होती है, वह हास्य मोहनीय कर्म है।

742. रति मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से पदार्थों के प्रति रुचि, राग, प्रीति उत्पन्न होती है, वह रति मोहनीय कर्म है।

743. अरति मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से पदार्थों के प्रति अरुचि, द्वेष, अप्रीति उत्पन्न होती है, वह अरति मोहनीय कर्म है।

744. भय मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से उद्वेग उत्पन्न होता है, भय उत्पन्न होता है, वह भय मोहनीय कर्म है।

745. भय उत्पत्ति के कारण कितने हैं?

उ. भय उत्पत्ति के चार कारण हैं—(1) शक्ति का अभाव, (2) भय मोहनीय कर्म का उदय, (3) भय उत्पादक दृश्य देखना, बात सुनना, (4) सात प्रकार के भयों का चिन्तन करना।

746. भय के कितने प्रकार आगमों में वर्णित हैं?

उ. स्थानांग सूत्र में भय के सात प्रकारों का उल्लेख किया हैं—

(1) इहलोक भय—सजातीय से भय, जैसे मनुष्य को मनुष्य से होने वाला भय।

(2) परलोक भय—वीजातीय से भय, जैसे मनुष्य को तिर्यंच आदि से होने वाला भय।

(3) आदान भय—धन आदि पदार्थों के अपहरण करने वाले से होने वाला भय।

(4) अकस्मात भय—किसी बाह्य निमित्त के बिना ही उत्पन्न होने वाला भय, अपने ही विकल्पों से होने वाला भय।

(5) वेदना भय—पीड़ा आदि से भय।

(6) मरण भय—मृत्यु भय।

(7) अश्लोक भय—अकीर्ति का भय।

747. शोक मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से आक्रन्दन आदि शोक उत्पन्न होता है (इष्ट-वियोग में होने वाला दैन्यभाव), वह शोक मोहनीय कर्म है।

748. जुगुप्सा मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से घृणा के भाव उत्पन्न होते हैं, वह जुगुप्सा मोहनीय कर्म है। आचार्य पूज्यपाद के अनुसार—जिसके उदय से आत्मा में स्वदोषों को छिपाने की और परदोषों के ढूंढ़ने की प्रवृत्ति होती है, वह जुगुप्सा होती है।

749. वेद किसे कहते हैं?

उ. शरीर-जन्य भोग-अभिलाषा को वेद कहते हैं।

750. वेद मोहनीय कर्म के कितने प्रकार हैं?

उ. तीन प्रकार—स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

751. स्त्रीवेद मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. स्त्रीवेद—जिस प्रकार पित्त के प्रकोप से मीठा खाने की अभिलाषा उत्पन्न होती है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से स्त्री के पुरुष के प्रति अभिलाषा होती है। इस कर्म के उदय से मृदुता, अस्पष्टता, क्लीवता, कामावेश, नेत्र-विभ्रम आदि स्त्रीभावों की उत्पत्ति होती है। स्त्रीवेद करीषाग्नि की तरह होता है। स्त्री की भोगेच्छा गोबर की आग की तरह धीरे-धीरे प्रज्ज्वलित होती है और चिरकाल तक धधकती रहती है।

752. पुरुषवेद मोहनीय कर्म से क्या तात्पर्य है?

उ. जिस प्रकार शरीर में श्लेष्म के प्रकोप से खट्टा खाने की अभिलाषा उत्पन्न होती है उसी प्रकार इस कर्म के उदय से पुरुष की स्त्री के प्रति अभिलाषा होती है। आचार्य पूज्यपाद के अनुसार—'जिसके उदय से जीव पुरुष संबंधी भावों को प्राप्त होता है वह पुंवेद है।' पुरुषवेद तृणाग्नि के सदृश होता है। जैसे तृण की अग्नि जलती और बुझती है वैसे ही पुरुष शीघ्र उत्तेजित और शांत होता है।

753. नपुंसक वेद मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस प्रकार शरीर में पित्त और श्लेष्म दोनों के प्रकोप से भुने हुए पदार्थों को खाने की इच्छा उत्पन्न होती है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से नपुंसक व्यक्ति के मन में स्त्री और पुरुष के प्रति अभिलाषा होती है। जिससे नपुंसक व्यक्ति के मन में संबंधी भावों को प्राप्त करता है वह नपुंसक वेद है।

नपुंसक वेद नगरदाह के समान है। जैसे नगरी की आग बहुत दिनों तक जलती रहती है उसी प्रकार नपुंसक की भोगेच्छा चिरकाल तक निवृत्त नहीं होती।

754. स्त्रीवेद किन-किन जीवों में पाता है?

उ. भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क, पहले-दूसरे देवलोक, पहले किल्विषी, सब यौगलिक, संज्ञी मनुष्य, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में स्त्रीवेद पाता है।

755. स्त्रीवेद किन-किन जीवों में नहीं पाता है?

उ. सात नारकी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, तीसरे देवलोक से सर्वार्थ-सिद्ध तक देवों में स्त्रीवेद नहीं पाता है।

756. पुरुषवेद किन-किन जीवों में पाता है?

उ. सर्वदेवता, सर्वयौगलिक, संज्ञी मनुष्य, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पुरुषवेद पाता है।

757. पुरुषवेद किन-किन जीवों में नहीं पाता है?

उ. सात नारकी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पुरुषवेद नहीं पाता।

758. नपुंसक वेद किन-किन जीवों में पाता है?

उ. सात नारकी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य, असंज्ञी तिर्यंच, पंचेन्द्रिय में वेद एक नपुंसक पाता है। संज्ञी मनुष्य और संज्ञी तिर्यंच भी नपुंसकवेदी होते हैं।

759. नपुंसक वेद किन-किन जीवों में नहीं पाता है?

उ. सर्व देवता, सर्व युगलियां में नपुंसक वेद नहीं पाता है।

760. क्या अनुत्तर विमान के देवों में वेद का उदय रहता है?

उ. अनुत्तर विमान के देवों में वेद मोह का उदय नहीं होता और वह क्षीण भी नहीं होता, किन्तु उपशान्त रहता है।

761. वेद के उदय में अवस्था का क्या प्रमाण है?

उ. वेद के उदय में न वार्धक्य आदि अवस्था प्रमाण है, न तप–श्रुत का अवगाहन और न दीर्घ संयमपर्याय ही प्रमाण है। वेद के क्षीण होने पर भी स्त्रीलिंग सर्वथा रक्षणीय है। इसीलिए स्त्री केवली, साध्वी योग्य उपकरणों से आवृत्त हो अपनी रक्षा करती है।

762. नो-कषाय की नौ प्रकृतियों के उत्कृष्ट एवं जघन्य बंध की स्थिति कितनी है?

उ. पुरुषवेद, रति और हास्य प्रकृति का उत्कृष्ट बंध दस कोटाकोटि सागर प्रमाण, स्त्री वेद का पन्द्रह कोटाकोटि सागर प्रमाण तथा भय, शोक, जुगुप्सा, अरति एवं नपुंसकवेद का उत्कृष्ट बंध बीस कोटाकोटि सागर प्रमाण है।

पुरुषवेद का जघन्य स्थिति बंध आठ वर्ष एवं शेष सभी प्रकृतियों का मिथ्यात्व मोह की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागर प्रमाण है उनकी उत्कृष्ट स्थिति में भाग देने पर जो लब्ध माना है उसमें पल्य का असंख्यातवां भाग कम जानना चाहिए।

763. मोहनीय कर्म बंध के कितने कारण हैं?

उ. मोहनीय कर्म बंध के छः कारण हैं—

(1) तीव्र क्रोध (2) तीव्र मान
(3) तीव्र माया (4) तीव्र लोभ
(5) तीव्र नो-कषाय (6) तीव्र दर्शन मोह (मिथ्यात्व)

764. मोहनीय कर्म की स्थिति कितनी है?

उ. 1. चारित्र मोहनीय की स्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट चालीस करोड़ाकरोड़ सागर।

2. दर्शन मोह कर्म की स्थिति—जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सत्तर करोड़ाकरोड़ सागर।

765. मोहनीय कर्म का अबाधाकाल कितना है?

उ. 1. चारित्र मोह—जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट चार हजार वर्ष।

2. दर्शन मोह—जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सात हजार वर्ष।

766. मोहनीय कर्म का लक्षण एवं कार्य क्या है?

उ. मोहनीय कर्म मद्यपान के समान है। जैसे मद्यपान करने वाले को कुछ भी सुध-बुध नहीं रहती, वैसे ही दर्शन मोह के उदय से जीव विपरीत श्रद्धा करता है एवं चारित्र मोह के उदय से वह विषय भोगों में आसक्त बनता है, वह अपने हिताहित का विवेक खो देता है।

767. मोहनीय कर्म भोगने के कितने हेतु हैं?

उ. मोहनीय कर्म के उदय से जीव मिथ्यादृष्टि एवं चारित्र हीन बनता है। इसके अनुभाव पांच हैं—

1. सम्यक्त्व वेदनीय
2. मिथ्यात्व वेदनीय
3. सम्यक् मिथ्यात्व वेदनीय
4. कषाय वेदनीय
5. नो कषाय वेदनीय

विस्तार से अट्ठाईस प्रकृतियों के नाम के अनुसार ही भोगने के अट्ठाईस प्रकार हैं।

768. मोहनीय कर्म का बंध कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. नौवें गुणस्थान तक।

769. मोहनीय कर्म का उदय व सत्ता कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. मोह कर्म का उदय दसवें गुणस्थान तक तथा ग्यारहवें गुणस्थान तक सत्ता होती है।

770. मोहकर्म का उपशम कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक। (ग्यारहवें से नीचे चारित्र मोह का पूर्ण उपशम नहीं होता है। केवल दर्शन मोह का हो सकता है।)

771. मोहनीय कर्म का क्षयोपशम कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. दर्शन मोह कर्म का क्षयोपशम पहले से सातवें गुणस्थान तक।
चारित्र मोह कर्म का क्षयोपशम पहले से दसवें गुणस्थान तक।

772. मोहकर्म के क्षयोपशम से जीव क्या प्राप्त करता है?

उ. 1. दर्शन मोह के क्षयोपशम से तीन दृष्टियां–(1) मिथ्यादृष्टि, (2) सम्यक् मिथ्यादृष्टि, (3) सम्यक्दृष्टि प्राप्त होती है।
2. चारित्र मोह कर्म के क्षयोपशम से जीव को–(1) देशविरति, (2) सामायिक चारित्र, (3) छेदोपस्थापनीय चारित्र, (4) परिहार विशुद्धि चारित्र, (5) सूक्ष्म सम्पराय चारित्र की प्राप्ति होती है।

773. कषाय-क्षय, क्षयोपशम और उपशान्त से जीव क्या प्राप्त करता है?

उ. जीव कषाय के पूर्ण क्षय से निर्वाण प्राप्त करता है। कषाय के उपशांत अथवा क्षीणोपशान्त होने पर जीव अनुत्तर विमान में उत्पन्न होता है।

774. मोहनीय कर्म का क्षायिक भाव कौनसे गुणस्थान में होता है?

उ. (1) दर्शन मोह का क्षायिक भाव चौथे से चौदहवें गुणस्थान एवं सिद्धों में होता है।
(2) चारित्र मोह का क्षायिक भाव बारहवें, तेरहवें व चौदहवें गुणस्थानों में होता है।

775. चारित्र-मोह कर्म के क्षय से जीव क्या प्राप्त करता है?

उ. चारित्र मोह कर्म के क्षय से जीव क्षायिक यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति होती है। वह वीतराग बन जाता है। उसी भव में मुक्त हो जाता है। क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति से पहले अगर आयुष्य का बंध नहीं किया हो तो जीव उसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है और पूर्व में आयुष्य का बंध हो गया हो तो तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता है।

776. उदय के तेंतीस बोलों में मोहनीय कर्म के उदय के कितने बोल पाते हैं?

उ. उदय के तेंतीस बोलों में—4 कषाय, 3 वेद, 3 अशुभ लेश्या, मिथ्यात्व और अव्रत–ये 12 बोल मोहनीय कर्म के उदय से हैं। आहारता व सयोगिता—ये दो बोल नाम व मोहनीय कर्म के उदय से।

777. मोहनीय कर्म के उदय से प्राप्त 12 बोलों में सावद्य कितने? निरवद्य कितने?

उ. बारह ही बोल सावद्य हैं।

आयुष्य कर्म

आयुष्य कर्म

778. आयुष्य का क्या अर्थ है?

उ. आयुष्य का अर्थ है—आयुष्य कर्म के पुद्गल स्कन्धों की राशि।

779. कौनसे कर्म के कारण आत्मा चारों गतियों में घूमती रहती है?

उ. आयुष्य कर्म के कारण।

780. आयुष्य कर्म किसे कहते हैं?

उ. किसी एक गति में निश्चित अवधि तक बांध कर रखने वाला कर्म आयुष्य कर्म है।

781. आयुष्य कर्म कितने प्रकार का है?

उ. आयुष्य कर्म चार प्रकार का है—

1. नैरयिक आयुष्य[1] 2. तिर्यंच आयुष्य 3. मनुष्य आयुष्य 4. देव आयुष्य।

782. आयुष्य का बंध कब होता है?

उ. देव, नारक तथा असंख्येय वर्षजीवी मनुष्य और तिर्यंच वर्तमान जीवन का छह माह आयुष्य शेष रहने पर अगले जन्म का आयुष्य बांधते हैं।

निरुपक्रम आयु वाले मनुष्य और तिर्यंच वर्तमान भव की ⅓ भाग आयु शेष रहने पर अगले भव का आयुष्य बांधते हैं।

सोपक्रम आयु वाले जीव ⅓ भाग शेष रहने पर अथवा उत्तरोत्तर तीसरे भाग का तीसरा भाग (छठा, नौवां, सत्ताइसवां) शेष रहने पर आयुबंध करते हैं।

783. नरक-आयुष्य बंध के कितने हेतु हैं?

उ. नरकायुष्य बंध के चार हेतु हैं—

1. महा-आरम्भ[2] 2. महा-परिग्रह 3. पंचेन्द्रिय वध 4. मांसाहार[3]

784. तिर्यंच आयुष्य बंध के कितने हेतु हैं?

उ. तिर्यंच आयुष्य बंध के चार हेतु हैं—

(1) माया करना (2) गूढ़ माया करना (एक कपट को ढ़कने के लिए दूसरा छल) (3) असत्य वचन बोलना (4) कूट-तोल माप करना।

---

1. कथा सं. 30
2. कथा सं. 31
3. कथा सं. 32

785. मनुष्य आयुष्य बंध के कितने हेतु हैं?

उ. मनुष्य आयुष्य बंध के चार हेतु हैं—

1. सरल प्रकृति होना
2. प्रकृति विनीत होना
3. दया के भाव रखना (मेघ कुमार)
4. ईर्ष्या न करना।

786. देव आयुष्य बंध के कितने हेतु हैं?

उ. देव आयुष्य बंध के चार हेतु हैं—

1. सरागसंयम
2. संयमासंयम (श्रावकपन पालना)[1]
3. बाल-तप मिथ्यात्वी का तप[2]
4. अकाम निर्जरा–इच्छा के बिना किया जानेवाला तप।

787. असुर देवायुष्य बंधने के मुख्य कारण क्या हैं?

उ. असुर देवायुष्य बंधने के चार कारण हैं—

1. अज्ञान तप में प्रतिबद्धता
2. प्रबल क्रोध करना
3. तप का अहंकार करना
4. वैर प्रतिबद्धता

788. नरकायुष्य कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव निश्चित अवधि की पूर्णता से पूर्व नरक भव से मुक्त होकर अन्य भव में नहीं जा सकता है उसे नरकायुष्य कर्म कहते हैं।

789. तिर्यंचायुष्य कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव निश्चित अवधि की पूर्णता से पूर्व तिर्यंच भव से मुक्त होकर अन्य भव में नहीं जा सकता है उसे तिर्यंचायुष्य कर्म कहते हैं।

790. मनुष्यायुष्य कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव निश्चित अवधि की पूर्णता से पूर्व मनुष्य भव से मुक्त होकर अन्य भव में नहीं जा सकता है उसे मनुष्यायुष्य कर्म कहते हैं।

791. देवायुष्य कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव निश्चित अवधि की पूर्णता से पूर्व देवभव से मुक्त होकर अन्य भव में नहीं जा सकता है उसे देवायुष्य कर्म कहते हैं।

---

1. कथा सं. 33
2. कथा सं. 34

792. आयुष्य कर्म कितने प्रकार से बंधता है?

उ. दो प्रकार से—सोपक्रमी अथवा अपवर्तनीय आयुष्य। निरूपक्रमी अथवा अनपवर्तनीय आयुष्य।

793. सोपक्रमी आयुष्य किसे कहते हैं?

उ. जिस आयुष्य कर्म के उपक्रम-उपघात लगती है वह सोपक्रमी आयुष्य होता है।

794. निरुपक्रमी आयुष्य किसे कहते हैं?

उ. जिस आयुष्य कर्म के कोई उपक्रम-उपघात नहीं लगता, वह निरुपक्रमी आयुष्य है। कोई जीव जितने वर्ष का आयुष्य लेकर आता है, उसमें एक समय का भी अन्तर नहीं पड़ता, वह निरुपक्रमी आयुष्य है।

795. आयुष्य क्षीण होने के (उपक्रम-उपघात लगने के) कितने कारण हैं?

उ. आयुष्य क्षीण होने के सात कारण हैं—

1. अध्यवसान—राग-द्वेष, भय आदि की प्रक्रिया-सोमिल ब्राह्मण[1]
2. निमित्त—शस्त्र प्रयोग।
3. आहार—आहार आदि की न्यूनाधिकता-ब्राह्मण का अति आहार।[2]
4. वेदना—नयनादि की तीव्रतम वेदना।
5. पराघात—गड्ढ़े आदि में गिरना।
6. स्पर्श—सांप, बिच्छू आदि का स्पर्श-ब्रह्मदत्त चक्री का स्त्रीरत्न[3]
7. आन—अपान-उच्छ्वास, निःश्वास का निरोध।

796. अकाल मृत्यु किसकी होती है?

उ. सोपक्रमी आयुष्य वाले की अकाल मृत्यु हो सकती है। सौ वर्ष भोगे जाने वाले आयुष्य को उपघात लगने पर अन्तर्मुहूर्त में भोगा जा सकता है।

797. सोपक्रमी और निरुपक्रमी आयुष्य किन-किन जीवों के होता है?

उ. नैरयिक, देव, असंख्येय वर्षजीवी तिर्यंच और मनुष्य, उत्तम पुरुष (तिरेसठ शलाका पुरुष) तथा चरमशरीरी—इन सबका आयुष्य निरुपक्रम होता है। इनके अतिरिक्त शेष सब जीवों का आयुष्य सोपक्रम और निरुपक्रम दोनों प्रकार का हो सकता है।

---

1. आव. चूर्णि 1 पृ. 255-266
2. आव. चूर्णि 1 पृ. 255-266
3. आव. चूर्णि 1 पृ. 255-266

798. देवता, नारकी आदि गतियों का आयुष्य पुण्य का उदय है या पाप का?

उ. देवता तथा संज्ञी मनुष्यों का आयुष्य शुभ अध्यवसाय से बंधता है, इसलिए पुण्य का उदय है। असंज्ञी मनुष्य, तिर्यंच एवं नारकी का आयुष्य अशुभ अध्यवसाय से बंधता है इसलिए पाप का उदय है। कई तिर्यंच का आयुष्य भी पुण्य का उदय है।

799. जीव आगामी भव का आयुष्य बांधते समय आकर्ष करता है?

उ. आकर्ष का अर्थ है—प्रयत्न करना। जब अध्यवसाय तीव्र हो तो एक ही प्रयत्न में आयुष्य का बंध कर लेता है। मंद या मंदत्तर हो तो 2 से 8 तक आकर्ष करने पड़ सकते हैं। उनका कालमान अन्तर्मुहूर्त का होता है।

800. जिन जीवों की आयु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है, क्या उन सबका अन्तर्मुहूर्त समान होता है?

उ. अन्तर्मुहूर्त के असंख्य भेद हैं। अन्तर्मुहूर्त वाले भवों की अपेक्षा सबसे छोटा भव 256 आवलिका का होता है और बड़ा भव 16777219 आवलिका का होता है। ये सब अन्तर्मुहूर्त ही हैं। अतः सारे अन्तर्मुहूर्त समान नहीं होते।

801. पृथ्वी, जल तथा वनस्पति के जीवों में तेजोलेश्या अपर्याप्त अवस्था में हो सकती है; क्या तेजोलेश्या में उनके आयुष्य का बंधन हो सकता है?

उ. कोई देव तेजोलेश्या वाला मरकर तेजोलेश्या में अगर पृथ्वी, पानी, वनस्पति में जन्म लेता है तो अपर्याप्त अवस्था में इनके तेजोलेश्या रहती है। तीन पर्याप्तियों को पूर्ण किये बिना कोई भी आगामी भव के आयुष्य को नहीं बांध सकता। पृथ्वी, पानी, वनस्पति में पर्याप्त होने से पहले ही तेजोलेश्या समाप्त हो जाती है।

802. तीन विकलेन्द्रिय जीवों में अपर्याप्त अवस्था में दूसरा गुणस्थान हो सकता है? क्या उस समय आयुष्य कर्म का बंध भी हो सकता है?

उ. तीन विकलेन्द्रिय जीवों में सास्वादन सम्यक्त्व के समय आयुष्य कर्म का बंध नहीं होता है। क्योंकि भ. श. 1.3.7 में कहा गया है कि आहार, शरीर और इन्द्रिय पर्याप्ति से पर्याप्त अवस्था उपपन्न अवस्था है। अनुपपन्न अवस्था में जीव के आयुष्य का बंध नहीं होता है। सम्यक्त्व दशा में आयु बंध हो तो केवल वैमानिक देवगति का ही बंध हो सकता है। तीन विकलेन्द्रियों की गति देवभव की नहीं है। उनके आयु बंध से पहले ही गुणस्थांन बदल जाता है।

803. आयुष्य कर्म किन-किन का शुभ माना गया है?

उ. यौगलिक मनुष्य, यौगलिक तिर्यंच, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव इनके आयुष्य एवं गोत्र कर्म को शुभ माना गया है। तीर्थंकर के नाम कर्म, गोत्र कर्म एवं आयुष्य कर्म तीनों एकान्त शुभ होते हैं। देवता एवं चरमशरीरी मनुष्यों का आयुष्य शुभ एवं बाकी तीन अघात्य कर्म शुभ-अशुभ दोनों होते हैं।

804. आयुष्य कर्म बंध में काम आने वाले करण कौनसे हैं?

उ. जीव अगले जन्म के आयुष्य बंध की जो प्रवृत्ति करता है, उसे करण कहते हैं। उसके मूल पांच प्रकार हैं—

1. द्रव्यकरण, 2. क्षेत्रकरण, 3. कालकरण, 4. भवकरण, 5. भावकरण।

805. द्रव्यकरण किसे कहते हैं?

उ. कर्म वर्गणाओं को आकर्षित कर आत्मसात् करना तथा उन्हें कार्मण शरीर के रूप में परिणत करना, द्रव्यकरण है।

806. क्षेत्रकरण किसे कहते हैं?

उ. जिस क्षेत्र से जीव कर्मवर्गणा को ग्रहण कर कार्मण शरीर के रूप में परिणत करता है उसे क्षेत्रकरण कहते हैं। यह अपने संलग्न कर्म पुद्गलों को ही ग्रहण करता है। गृहीत कर्मवर्गणा कितने क्षेत्र को अवगाहित करती है तथा किस क्षेत्र विशेष में उदय में आएगी, इस निर्धारण को भी क्षेत्रकरण कहते हैं।

807. संलग्न आकाश प्रदेश स्थित पुद्गलों से अधिक पुद्गल वर्गणा को ग्रहण करना हो तो वहाँ क्या होगा?

उ. संलग्न आकाश प्रदेश का तात्पर्य मात्र एक आकाश प्रदेश नहीं, उसके पार्श्ववर्ती आकाश प्रदेश भी एक-दूसरे से संलग्न हैं, वहाँ के पुद्गल ग्रहण कर लेते हैं। मध्यवर्ती आकाश प्रदेश छोड़कर उससे आगे के आकाश प्रदेशों पर स्थित पुद्गल वर्गणा को ग्रहण नहीं कर सकते।

808. कालकरण किसे कहते हैं?

उ. कर्म पुद्गलों को ग्रहण करने में जितना समय लगता है तथा वे पुद्गल जितने समय तक आत्मा के साथ जुड़े रहेंगे, उसे कालकरण कहते हैं।

809. भवकरण किसे कहते हैं?

उ. गृहित कर्मवर्गणा जिस भव में भोगी जाती है, उसे भवकरण कहते हैं।

810. एक कर्म की वर्गणा अधिकतम कितने भव तक भोगी जा सकती है?

उ. आठ कर्मों में एक आयुष्य कर्म की वर्गणा मात्र एक भव में भोगी जाती है, शेष सात कर्मों की वर्गणा एक भव या अनेक भवों तक भोगी जा सकती है। कर्म बंध में काल का निर्धारण होता है। उस काल में वह कितने भव करता है, इसकी निश्चित संख्या नहीं होती। पर उस काल में जितने भव करता है, उतने भव तक उस कर्म वर्गणा को भोगता है। कर्म बंध का अधिकतम काल सत्तर करोड़ाकरोड़ सागरोपम है। उसके भोगने में असंख्य भव लग सकते हैं।

811. भावकरण किसे कहते हैं?

उ. पूर्वोक्त चार करण के रूप में जो कर्मों का बंध होता है, उसके उदय को भावकरण कहते हैं।

812. जीव अल्पायुष्य कर्म का बंध कितने कारणों से करता है?

उ. जीव अल्पायुष्य कर्म का बंध तीन कारणों से करता है—

1. जीव हिंसा से 2. मृषावाद से 3. श्रमण माहन को अप्रासुक और अनेषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का दान करने से।

813. जीव के दीर्घायुष्य कर्म का बंध कितने कारणों से होता है?

उ. जीव दीर्घायुष्य कर्म का बंध तीन कारणों से करता है—

1. जीव हिंसा न करने से। 2. मृषावाद न बोलने से। 3. श्रमण माहन को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का दान करने से।

814. दीर्घायुष्यकर्म कितने प्रकार का होता है?

उ. दो प्रकार का—शुभ और अशुभ।

815. देवताओं का आयुष्य शुभ है या अशुभ?

उ. शुभ।

816. जीव के अशुभ दीर्घायुष्य कर्म का बंधन कितने कारणों से होता है?

उ. तीन कारणों से जीव अशुभ दीर्घायुष्य कर्म का बंधन करते हैं—

1. जीव हिंसा से 2. मृषावाद से 3. श्रमण माहन की अवलेहना, निंदा, अवज्ञा, गर्हा और अपमान कर किसी अमनोज्ञ तथा प्रीतिकर, अशन, पान, खाद्य व स्वादिम का दान करने से।

817. अशुभ दीर्घ आयुष्य का बंध कौनसी गति में होता है?

उ. चारों गतियों में।

818. जीव शुभ दीर्घायुष्य कर्म का बंध कितने कारणों से करता है?

उ. तीन कारणों से—

1. जीव हिंसा न करने से। 2. मृषावाद न बोलने से। 3. तथा रूप श्रमण माहन को वंदना-नमस्कार कर, उनका सत्कार सम्मान कर, कल्याण कर, मंगल-देवरूप तथा चैत्यरूप की पर्युपासना कर, उन्हें तथा प्रीतिकर अशन, पान, खादिम, स्वादिम का दान करने से।

उपरोक्त तीन कारणों से जीव शुभदीर्घायुष्य कर्म का बंधन करते हैं।

819. शुभ दीर्घायुष्य का बंध कौनसी गति में होता है?

उ. नरकगति को छोड़कर तीनों गतियों में हो सकता है।

820. शुभ आयुष्य कर्म किसे कहते हैं और उसकी उत्तरप्रकृतियां कितनी हैं?

उ. जो आयुष्य कर्म पुण्यरूप हो, वह शुभ आयुष्य कर्म है। इसकी तीन उत्तर प्रकृतियां हैं—

1. जिससे देवभव का आयुष्य प्राप्त हो, वह देवायुष्य कर्म।[1]
2. जिससे मनुष्य भव का आयुष्य प्राप्त हो, वह मनुष्यायुष्य कर्म।
3. जिससे तिर्यंचभव का आयुष्य प्राप्त हो, वह तिर्यंचायुष्य कर्म।

स्वामीजी के अनुसार सर्वदेव शुभ नहीं होते, न सर्व मनुष्य शुभ होते हैं और न सर्व तिर्यंच ही। शुभ देव, शुभ मनुष्य और यौगलिक तिर्यंच के भव-विषयक आयुष्य के कर्म ही शुभायुष्य कर्म के उत्तरभेद है। उनके अनुसार—

1. जिस कर्म के उदय से शुभ देव भव का आयुष्य प्राप्त हो, वह शुभ देवायुष्य कर्म है।
2. जिस कर्म के उदय से शुभ मनुष्य भव का आयुष्य प्राप्त हो वह शुभ मनुष्यायुष्य कर्म है।
3. जिस कर्म के उदय से युगलतिर्यंच भव का आयुष्य प्राप्त हो वह शुभ तिर्यंचायुष्य कर्म है।

821. अशुभ आयुष्य कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो आयुष्य कर्म पाप रूप हो, वह अशुभ आयुष्य कर्म है। नरकायुष्य कर्म निश्चय ही अशुभ है और पाप कर्म की कोटि में आता है। आ.भिक्षु के अनुसार कुदेव, कुनर और कई तिर्यंचों का आयुष्य भी अशुभ ही होता है।

822. क्या देवताओं की अकाल मृत्यु होती है?

उ. नहीं। क्योंकि उनका आयुष्य निरुपक्रम (निश्चित) होता है।

---

1. कथा सं. 35

823. *आयुष्य कर्म बंधते समय किन-किन बोलों का बंध साथ में होता है?*

उ. आयुष्य कर्म बंधते समय छः बोलों का बंध होता है। जैसे गति, जाति, स्थिति, अवगाहना, प्रदेश और अनुभाग इन छः बोलों का बंध आयुष्य बंध के साथ होता है।

824. *आयुष्य कर्म सवेदी बांधता है या अवेदी?*

उ. आयुष्य कर्म सवेदी के ही बंधता है अवेदी के नहीं। जीव अवेदी नौवें आदि गुणस्थानों में होता है पर वहाँ आयुष्य का बंध नहीं होता।

825. *अनाहारक अवस्था में आयुष्य का बंध होता है या नहीं?*

उ. अनाहारक अवस्था में आयुष्य का बंध नहीं होता है। जीव अनाहारक वक्रगति वाली अन्तराल गति में केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे, एवं पांचवें समय में होता है तथा चौदहवें गुणस्थान में होता है। उस समय आयुष्य का बंध संभव नहीं है। तीन पर्याप्तियां पूर्ण हुए बिना आयुष्य का बंध नहीं होता है। वैसे चरम शरीरी के भी आयुष्य का बंध नहीं होता है। इन दो अवस्थाओं से अलग जीव कहीं अनाहारक होता ही नहीं है।

826. *आयुष्य कर्म की स्थिति कितनी है?*

उ. नरकायुष्य—जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर।
तिर्यञ्चायुष्य—जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम।
मनुष्यायुष्य—जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम।
देवायुष्य—जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट तेंतीस सागर।
(यह स्थिति आयु भोग प्रारम्भ होने की अपेक्षा से है) वर्तमान आयुष्य समाप्त होते ही अगले जन्म के आयुष्य का भोग प्रारम्भ हो जाता है। आयुष्य कर्म का बंध जीवन में एक़ बार ही होता है एवं वह अकेले एक ही जन्म में पूरा भोग लिया जाता है।

827. *साधारण वनस्पति का आयुष्य कितना है?*

उ. साधारण वनस्पति के जीव एक मुहूर्त में उत्कृष्ट 65, 536 बार जन्म-मरण करते हैं।

828. *अन्य योनियों के जीव एक मुहूर्त में कितने जन्म-मरण कर सकते हैं?*

उ. पृथ्वी, पानी, अग्नि व वायुकाय के जीव 12824 बार जन्म मरण कर सकते हैं। प्रत्येक वनस्पति के 32000, द्वीन्द्रिय के 80, त्रीन्द्रिय के 60, चतुरिन्द्रिय के 40, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के 24 और संज्ञी पंचेन्द्रिय के जीव एक बार जन्म-मरण कर सकते हैं।

829. जो निगोद के जीव एक मुहूर्त में 65, 536 भव करते हैं वे पर्याप्त होते हैं या अपर्याप्त?

उ. अपर्याप्त। तीन पर्याप्तियां तो वे पूर्ण कर लेते हैं, चौथी पर्याप्ति पूर्ण होने से पहले ही उनका आयुष्य सम्पन्न हो जाता है, अत: वे अपर्याप्त ही होते हैं।

830. एक शरीर में उत्पन्न होने वाले अनन्त जीव क्या एक साथ जन्म-मरण करते हैं?

उ. एक शरीर में उत्पन्न होने वाले उन अनन्त जीवों का एक साथ ही जन्म-मरण करता है।

831. आयुष्य कर्म का अबाधाकाल कितना होता है?

उ. सात कर्मों के अबाधाकाल एवं आयुष्य कर्म के अबाधाकाल में अन्तर होता है। जघन्य स्थिति बंध में जघन्य अबाधाकाल एवं उत्कृष्ट स्थिति बंध में उत्कृष्ट अबाधाकाल होता है। अबाधा का यह नियम केवल सात कर्मों के लिए है। सात कर्मों की अबाधा स्थिति के प्रतिभाग के अनुसार होती है पर आयुष्य कर्म के साथ ऐसा नियम नहीं है। आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट स्थिति में भी जघन्य अबाधा हो सकती है और जघन्य स्थिति में भी उत्कृष्ट अबाधा हो सकती है। क्योंकि आयुष्य कर्म का अबाधाकाल स्थिति के प्रतिभाग के अनुसार नहीं होता। आयुष्य कर्म की अबाधा में चार विकल्प बनते हैं—

1. उत्कृष्ट स्थिति में उत्कृष्ट अबाधा—जब कोई मनुष्य अपनी एक पूर्व कोटि की आयु में तीसरा भाग शेष रहने पर तेंतीस सागर की आयु का बंध करता है तब उत्कृष्ट स्थिति में उत्कृष्ट अबाधा होती है।
2. उत्कृष्ट स्थिति में जघन्य अबाधा—अगर 1 पूर्व कोटि आयुष्य वाला मनुष्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुष्य शेष रहने पर उत्कृष्ट तेंतीस सागर आयुष्य का बंध करता है तो उत्कृष्ट स्थिति में जघन्य अबाधा होती है।
3. जघन्य स्थिति बंध में उत्कृष्ट अबाधा—अगर कोई 1 पूर्व कोटि आयुष्य वाला मनुष्य एक पूर्व कोटि का तीसरा भाग शेष रहने पर जघन्य स्थिति का बंध करता है जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण भी हो सकती है तब जघन्य स्थिति बंध में उत्कृष्ट अबाधा होती है।
4. जघन्य स्थिति में जघन्य अबाधा—अगर कोई जीव अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर पर-भव की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु बांधे तो जघन्य स्थिति में जघन्य अबाधा होती है।

अत: आयुष्य कर्म में जघन्य स्थिति में भी उत्कृष्ट अबाधा एवं उत्कृष्ट स्थिति में भी जघन्य अबाधा हो सकती है। (नोट—दूसरे कर्मों में अबाधा-मूल प्रकृति—अबाधा काल + उदयकाल सहित होते/होती है। पर आयुष्य कर्म की अबाधा का काल मूल प्रकृति से अलग है।

832. *ऐसे कौनसे जीव हैं जो अपने जीवन में आयुष्य का बंध नहीं करते?*

उ. चरम शरीरी। इनके अतिरिक्त सभी जीव जीवन में एक बार आगामी भव के आयुष्य का बंध अवश्य करते हैं।

833. *एक भव में एक साथ कितने आयुष्य का उदय हो सकता है?*

उ. एक भव में मात्र एक ही आयुष्य का उदय होता है।

834. *आयुष्य कर्म को किसके समान कहा गया है?*

उ. बेड़ी अथवा खोड़े के समान।

835. *आयुष्य कर्म का कार्य क्या है?*

उ. बेड़ी से बंधा हुआ व्यक्ति जैसे उसको तोड़े बिना निकल नहीं सकता उसी प्रकार आयुष्य कर्म का भोग किये बिना प्राणी एक भव से दूसरे भव में नहीं जा सकता।

836. *आयुष्य कर्म भोगने के कितने हेतु हैं?*

उ. आयुष्य कर्म के उदय से जीव निश्चित अवधि तक उस प्रकार का जीवन जीता है। उसके अनुभाव (फल) चार हैं—

1. नारक रूप में
2. तिर्यंच रूप में
3. मनुष्य रूप में
4. देव रूप में

837. *आयुष्य कर्म का बंध कौनसे गुणस्थान तक होता है?*

उ. आयुष्य कर्म का बंध तीसरे गुणस्थान को छोड़कर पहले से छठे गुणस्थान तक होता है। छठे में आयुष्य का बंध प्रारंभ हो जाए एवं सातवां गुणस्थान आ जाए तो सातवें में पूर्ण हो सकता है पर सातवें गुणस्थान में प्रारम्भ नहीं होता है।

838. *आयुष्य कर्म का उदय कौनसे गुणस्थान में होता है?*

उ. सभी गुणस्थानों में।

839. *आयुष्य कर्म का उपशम एवं क्षयोपशम कौनसे गुणस्थान तक होता है?*

उ. आयुष्य कर्म का उपशम व क्षयोपशम नहीं होता।

840. आयुष्य कर्म का क्षय कौनसे गुणस्थान में होता है?

उ. आयुष्य कर्म का क्षय गुणस्थानों में नहीं सिद्धों में होता है।

841. आयुष्य कर्म का बंध जीव ज्ञात अवस्था में करता है या अज्ञात अवस्था में?

उ. जीव आयुष्य का बंध ज्ञात अवस्था में नहीं करता, अज्ञात अवस्था में करता है। (आयुष्य का बंध कब होता है? इसकी जानकारी उसे नहीं होती, जिसके आयुष्य का बंध हो रहा है, हो चुका है अथवा होगा) आयुष्य के विषय में कुछ नियम भगवती में आए हुए हैं—

1. परलोक में जाने वाला जीव आयुष्य का बंध करके जाता है।[1]
2. आयुष्य का बंध पूर्व जन्म-भावी जन्म की अपेक्षा पूर्व अर्थात् वर्तमान में होता है।[2]
3. जीव जिस योनि में उत्पन्न होता है, उसी से संबद्ध आयुष्य का बंधन करते हैं।[3]
4. एक जीव एक साथ एक आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है।[4]
5. आयुष्य बंध के साथ जाति आदि छः विषयों का निर्धारण होता है।[5]

---

1. भगवती 5/59
2. भगवती 5/60
3. भगवती 5/62
4. भगवती 5/58
5. भगवती 6/151

नाम कर्म

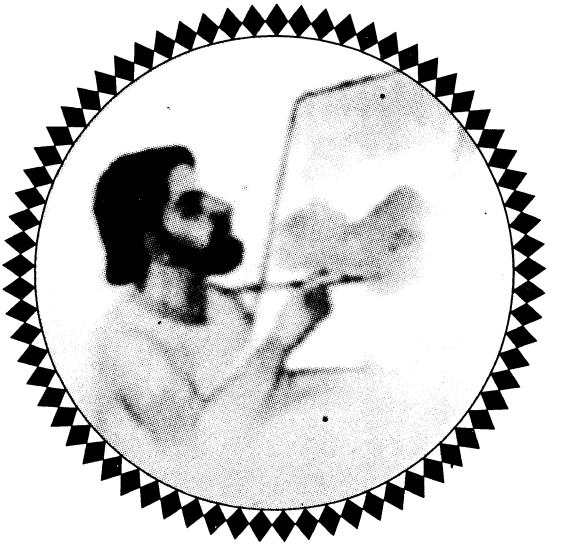

नाम कर्म

842. *नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. 1. जिस कर्म के उदय से जीव को शरीर, जाति, गति, यश, अपयश, संहनन, संस्थान, आकृति, प्रकृति आदि प्राप्त होते हैं, उसे नाम कर्म कहते हैं।

2. श्री नेमिचन्द्रजी ने लिखा है—जो कर्म जीवों में गति आदि के भेद उत्पन्न करता है, जो देहादि की भिन्नता का कारण है, तथा जिससे गत्यन्तर जैसे परिणमन होते हैं वह नाम कर्म है।

843. *नाम कर्म के कितने प्रकार हैं?*

उ. नाम कर्म के दो प्रकार हैं—शुभ नाम कर्म और अशुभ नाम कर्म।[1]

844. *शुभ नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जो कर्म शुभ नाम से परिणत होते हैं तथा विपाक अवस्था में शुभ नाम रूप से उदय में आते हैं वे शुभ नाम कर्म कहलाते हैं। शुभ नाम-कर्म पुण्य प्रकृति है।

845. *अशुभ नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जो कर्म अशुभ नाम से परिणत होते हैं तथा विपाक अवस्था में अशुभ नाम रूप से उदय में आते हैं वे अशुभ नाम कर्म कहलाते हैं। अशुभ नाम कर्म पाप प्रकृति हैं।

846. *शुभाशुभ नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियां कितनी हैं?*

उ. शुभ और अशुभ—इन दोनों की मूल प्रकृति 42 बतायी गई हैं। अपेक्षा भेद से 67, 93, 103 प्रकृतियों का भी उल्लेख मिलता है।

847. *नाम कर्म के बयालीस भेद कौन-कौनसे हैं?*

उ. 1. चौदह पिण्ड प्रकृतियां 2. आठ प्रत्येक प्रकृतियां
3. त्रस दशक 4. स्थावर दशक

848. *तिरानवें व एक सौ तीन प्रकृतियां कौनसी हैं?*

उ. मूल प्रकृतियां 42 हैं इसके तिरानवें भेद हो जाते हैं उसका क्रम इस प्रकार हैं—

चौदह पिण्ड प्रकृति के 65 भेद—गति 4 + जाति 5 + शरीर 5 + अंगोपांग 3 + शरीर बंधन 5 + शरीर संघात 5 + संहनन 6 + संस्थान

---

1. कथा संख्या 36

6 + वर्ण 5 + गंध 2 + रस 5 + स्पर्श 8 + आनुपूर्वी 4 + विहायोगति 2 = 65 + त्रस-स्थावर दशक (त्रस नाम से अयशःकीर्ति नाम तक) 20 = 85 + 8 प्रत्येक प्रकृति = 93।

जहाँ 103 प्रकृतियों का उल्लेख आता है वहाँ शरीर बंधन नाम के 5 भेदों की जगह पन्द्रह भेद किये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

1. औदारिक शरीर बंधन नाम
2. औदारिक तैजस बंधन नाम
3. औदारिक कार्मण बंधन नाम
4. वैक्रिय बंधन नाम
5. वैक्रिय तैजस बंधन नाम
6. वैक्रिय कार्मण बंधन नाम
7. आहारक आहारक बंधन नाम
8. आहारक तैजस बंधन नाम
9. आहारक कार्मण बंधन नाम
10. औदारिक, तैजस कार्मण बंधन नाम
11. वैक्रिय, तैजस कार्मण बंधन नाम
12. आहारक तैजस कार्मण बंधन नाम
13. तैजस तैजस बंधन नाम
14. तैजस कार्मण बंधन नाम
15. कार्मण कार्मण बंधन नाम

849. पिण्ड प्रकृति किसे कहते हैं?

उ. जिस प्रकृति के अनेक भेद हों उसे पिण्ड प्रकृति कहते हैं।

850. चौदह पिण्ड प्रकृतियां कौन-कौनसी हैं?

उ. चौदह पिण्ड प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं—

(1) गति, (2) जाति, (3) शरीर, (4) अंगोपांग, (5) शरीर बंध नाम, (6) शरीर संघात, (7) संहनन, (8) संस्थान, (9) वर्ण, (10) गंध, (11) रस, (12) स्पर्श, (13) आनुपूर्वी, (14) विहायोगति।

851. गति किसे कहते हैं?

उ. एक जन्म स्थिति से दूसरी जन्म स्थिति में जाने का नाम गति है। जैसे– मनुष्य से तिर्यञ्च में जाना।

852. एक जन्म से दूसरे जन्म में जाने की बीच की गति को क्या कहते हैं?

उ. अन्तरालगति।

853. अन्तरालगति कितने प्रकार की होती है?

उ. दो प्रकार की–ऋजु और वक्र।

854. ऋजुगति किसे कहते हैं? तथा उसका कालमान कितना है?

उ. जिसमें उत्पत्ति स्थान सम रेखा में हो वह ऋजुगति है। उसमें एक ही समय में जीव उत्पत्ति स्थान पर पहुंच जाता है।

855. वक्रगति किसे कहते हैं तथा उसका कालमान कितना है?

उ. एक जन्म से दूसरे जन्म में जाते समय उत्पत्ति स्थान यदि समरेखा में न हो उसे वक्रगति कहते हैं। इसका कालमान 2-3-4 समय का है।

856. गति नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. देवत्व, मनुष्यत्व आदि पर्याय परिणति को गति नामकर्म कहते हैं।

857. गति नामकर्म के कितने भेद हैं?

उ. गति नामकर्म के चार भेद हैं—

1. देव गतिनाम–जिस कर्म का उदय देव भव की प्राप्ति का कारण हो, वह देवगतिनाम कर्म है। यह सुखबहुल गति है।
2. मनुष्य गतिनाम–जिस कर्म का उदय मनुष्यभव की प्राप्ति का कारण हो, वह मनुष्य गतिनाम कर्म है। यह सुख-दुःख मिश्रित गति है।
3. तिर्यंच गतिनाम–जिस कर्म का उदय तिर्यंच भव की प्राप्ति का कारण हो वह तिर्यंचगति नाम कर्म है।
4. नरक गतिनाम–जिस कर्म का उदय नरक-भव की प्राप्ति का कारण हो, वह नरकगति नामकर्म है। यह दुःखबहुल गति है।

858. जीव मनुष्य गति में कब आता है?

उ. मनुष्य गति में बाधक कर्मों का नाश तथा मनुष्यानुपूर्वी नामकर्म का उदय होने पर जीव को मनुष्य गति में आने की शुद्धि प्राप्त होती है और इसी अवस्था में वह मनुष्य बनता है।

859. जातिनाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म जीव की जाति-कोटि का नियामक हो वह जातिनाम कर्म है। जाति पांच हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

860. एकेन्द्रिय जातिनाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव केवल स्पर्शनेन्द्रिय का धारक हो उसे 'एकेन्द्रिय जातिनाम कर्म' कहते हैं।

संसार में जितनी जीव जातियां हैं, उनमें सबसे कम विकसित चेतना एकेन्द्रिय जीवों की है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति—एक स्पर्शनेन्द्रिय वाले जीव हैं। ये न चख सकते हैं, न सूंघ सकते हैं, न देख सकते हैं और न सुन सकते हैं। इनका सारा काम एक स्पर्श के आधार पर होता है।

861. द्वीन्द्रिय जाति-नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव द्वीन्द्रिय—स्पर्श और जिह्वा मात्र धारण करने वाली जीव-जाति में जन्म ग्रहण करे, उसे द्वीन्द्रिय जातिनाम-कर्म कहते हैं। कृमि, शंख, अलसिया आदि अनेक प्रकार के जीव इस विभाग में हैं, जो इन दो इन्द्रियों के आधार पर अपना जीवनयापन करते हैं।

862. त्रीन्द्रिय जाति नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव तीन इन्द्रियां—स्पर्श, जिह्वा और घ्राण मात्र करने वाली जीव जाति में जन्म ग्रहण करे उसे 'त्रीन्द्रिय जाति नामकर्म' कहते हैं।

इस विभाग के जीव त्वचा के द्वारा इष्ट, अनिष्ट की पहचान कर सकते हैं, रसना के द्वारा चख सकते हैं और घ्राण-नासिका के द्वारा सूंघ सकते हैं। इस वर्ग में आने वाले जीव हैं—चींटी, जलौका, जूं, लीख, खटमल आदि।

863. चतुरिन्द्रिय जाति-नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव चार इन्द्रियां-स्पर्श, जिह्वा, घ्राण और चक्षु मात्र ग्रहण करने वाली जीव-जाति में जन्म ग्रहण करे उसे 'चतुरिन्द्रिय जाति नामकर्म' कहते हैं।

चतुरिन्द्रिय जीवों में स्पर्शन, रसन और घ्राण चेतना के साथ देखने की क्षमता भी होती है। इनमें केवल सुनने की अर्थात् श्रोतेन्द्रिय शेष रहती है। मक्खी, मच्छर, पतंग, भ्रमर आदि जीव 'चतुरिन्द्रिय' कहलाते हैं।

864. पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव पांच इन्द्रियां—स्पर्श, जिह्वा, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र वाली जीव जाति में जन्म ग्रहण करे उसे 'पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म' कहते हैं।

पंचेन्द्रिय जीवों की ऐन्द्रियिक क्षमता पूर्णरूप से विकसित हो जाती है। ये जीव अन्य सब जीवों में उत्कृष्ट हैं। इस विभाग में पशु, पक्षी, नारक, देव और मनुष्य—इन सब प्राणियों का समावेश हो जाता है।

865. पृथ्वीकाय किसे कहते हैं?

उ. काय का अर्थ है—शरीर। पृथ्वी है जिन जीवों का शरीर, वे सब पृथ्वीकायिक कहलाते हैं। इस वर्ग में मिट्टी, मुरड़, हीरा, पन्ना, कोयला, सोना, चांदी आदि अनेक प्रकार के जीव आते हैं। मिट्टी की एक छोटी सी डली में असंख्य जीव होते हैं। ये जीव एक साथ रहने पर भी अपनी-अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रखते हैं।

866. अप्काय किसे कहते हैं?

उ. पानी ही जिन जीवों का शरीर है, वे जीव अप्कायिक हैं। सब प्रकार का पानी, ओले, कुहरा आदि अप्काय के जीव हैं। इन जीवों के शरीर इतने सूक्ष्म होते हैं कि एक-एक शरीर में हमें दिखाई ही नहीं देता। पानी की एक बूंद अप्कायिक जीवों के असंख्य शरीरों का पिण्ड है।

867. तैजस्काय किसे कहते हैं?

उ. जिन जीवों का शरीर अग्नि है, वे जीव तैजसकायिक कहलाते हैं। इस जीव निकाय में अंगारे, ज्वाला, उल्का आदि का समावेश है। पानी की बूंद की भांति अग्नि की एक छोटी-सी चिनगारी में भी अग्नि के असंख्य जीवों के शरीरों का अस्तित्व है।

868. वायुकाय किसे कहते हैं?

उ. जिन जीवों का शरीर वायु है, वे जीव वायुकायिक कहलाते हैं। संसार में जितने प्रकार की वायु है, वह इसी काय में अन्तर्गर्भित है। इस काय में भी असंख्य जीव हैं, जो पृथक्-पृथक् शरीर में रहते हैं।

869. वनस्पतिकाय किसे कहते हैं?

उ. जिन जीवों का शरीर वनस्पति है, वे जीव वनस्पतिकायिक कहलाते हैं। इस काय में रहने वाले जीवों के दो प्रकार हैं—प्रत्येक वनस्पति और साधारण वनस्पति।

870. प्रत्येक वनस्पति से क्या तात्पर्य है?

उ. प्रत्येक वनस्पति के जीव एक-एक शरीर में एक-एक जीव ही होते हैं। एक जीव के आश्रित असंख्य जीव रह सकते हैं पर उनकी सत्ता स्वतंत्र है।

871. साधारण वनस्पति किसे कहते हैं?

उ. साधारण वनस्पति में एक-एक शरीर में अनन्त जीवों का पिण्ड होता है। सब प्रकार की काई, कंद, मूल आदि साधारण वनस्पति के जीव है।

872. शरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म शरीर प्राप्ति का हेतुभूत हो, उसे शरीर नाम कर्म कहते हैं।

873. शरीर-नामकर्म की उपप्रकृतियां कितनी हैं?

उ. शरीर नामकर्म की पांच उपप्रकृतियां हैं—

1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. आहारक, 4. तैजस और 5. कार्मण।

874. शरीर किसे कहते हैं?

उ. 'सुख-दुःखानुभव साधनं शरीरम्' अर्थात् जिसके द्वारा सुख-दुःख की अनुभूति होती है उसे शरीर कहते हैं।

875. औदारिक शरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. उदार-सूक्ष्म अर्थात् हाड-मांस आदि से बना स्थूल शरीर। मांस, अस्थि, रक्त, वीर्य आदि सात धातुओं से निर्मित शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं। मोक्ष जाने में यह साधक है। अर्थात् मोक्ष की ओर ले जाने वाला यही शरीर माध्यम है। जिस नामकर्म के उदय से जीव को औदारिक शरीर की प्राप्ति होती हो उसे औदारिक नामकर्म कहते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक (मनुष्य-तिर्यंच) औदारिक शरीरधारी होते हैं।

876. वैक्रिय शरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. वैक्रिय, अर्थात् छोटे-बड़े आदि विविध रूप-विक्रिया कर सकने वाला शरीर। जिस नामकर्म के उदय से जीव को वैक्रिय शरीर की प्राप्ति होती है उसे वैक्रिय शरीर नामकर्म कहते हैं।

नारक और देवों के यह शरीर सहज होता है। मनुष्य और तिर्यंच भी वैक्रिय लब्धि प्राप्त कर इस शरीर का निर्माण कर सकते हैं। वायुकायिक जीवों के स्वाभाविक रूप से वैक्रिय शरीर होता है।

877. उत्तर वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं?

उ. देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच द्वारा निर्मित नया शरीर उत्तर वैक्रिय शरीर कहलाता है।

878. चारों गति के जीवों की वैक्रिय और उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी है?

उ. वैक्रिय की अवगाहना—

गति	जघन्य	उत्कृष्ट
देवगति	अंगुल का असंख्यातवां भाग	सात हाथ
नरकगति	अंगुल का असंख्यातवां भाग	500 धनुष प्रमाण
मनुष्यगति	अंगुल का असंख्यातवां भाग	साधिक एक लाख योजन
वायुकाय	अंगुल का असंख्यातवां भाग	अंगुल का असंख्यातवां भाग
तिर्यंच	अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी	900 योजन

उत्तर वैक्रिय की अवगाहना–

गति	जघन्य	उत्कृष्ट
देवगति	अंगुल का असंख्यातवां भाग	एक लाख योजन
नरकगति	अंगुल का असंख्यातवां भाग	एक हजार धनुष प्रमाण

879. वैक्रिय शरीर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस नामकर्म के उदय से जीव को वैक्रिय शरीर की प्राप्ति होती है, उसे वैक्रिय शरीर नामकर्म कहते हैं।

880. वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं?

उ. छोटे-बड़े आदि विविध रूप-विक्रिया कर सकने वाला शरीर वैक्रिय शरीर कहलाता है।

881. वैक्रिय शरीर कितने प्रकार का होता है?

उ. दो प्रकार का— 1. भव प्रत्ययिक वैक्रिय शरीर
2. लब्धिप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर।

882. भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं?

उ. वह वैक्रिय शरीर जिसकी प्राप्ति में भव मुख्य होता है, उसे भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर कहते हैं।

883. किन-किन जीवों के भवप्रत्ययिक वैक्रिय होता है?

उ. देवों और नारकी जीवों के भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर होता है।

884. लब्धिप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं?

उ. जो शरीर तप, त्याग, संयम आदि से प्राप्त होता है, उसे लब्धिप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर कहते हैं।

885. किन-किन जीवों के लब्धिप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर होता है?

उ. पंचेन्द्रिय मनुष्य और तिर्यंच के लब्धि प्रत्ययिक वैक्रिय शरीर होता है।

886. पर्याप्त बादर वायुकाय में भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर होता है या नहीं?

उ. पर्याप्त बादर वायुकाय में जब तक वैक्रिय सप्तक की उद्वलना नहीं हुई हो तब तक ही वैक्रिय शरीर होता है अत: यह भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर नहीं है।

887. *उत्तर वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं?*

उ. देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच द्वारा निर्मित नया वैक्रिय शरीर उत्तर वैक्रिय शरीर कहलाता है।

888. *चारों गति के जीवों के उत्तर वैक्रिय शरीर का कालमान कितना है?*

उ.

गति	कालमान जघन्य	कालमान उत्कृष्ट
देव	अन्तर्मुहूर्त	15 दिन
नारक	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
मनुष्य	चार मुहूर्त	चार मुहूर्त
तिर्यंच पंचेन्द्रिय	चार मुहूर्त	चार मुहूर्त
वायुकाय	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त

889. *आहारक शरीर नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिस नाम कर्म के उदय से जीव को आहारक शरीर की प्राप्ति होती है, उसे आहारक शरीर नामकर्म कहते हैं।

890. *आहारक शरीर किसे कहते हैं?*

उ. आहारक लब्धि से प्राप्त शरीर को आहारक शरीर कहते हैं।

891. *आहारक शरीर की लब्धि कौनसे गुणस्थान में प्राप्त होती है और उसका प्रयोग कौनसे गुणस्थान में होता है?*

उ. आहारक शरीर की लब्धि सातवें गुणस्थानवर्ती साधु को प्राप्त होती है पर उसका प्रयोग छठे गुणस्थान में अवस्थित साधु ही कर सकता है।

892. *आहारक शरीर का निर्माण कितनी बार हो सकता है?*

उ. एक भव की अपेक्षा दो बार अनेक भवों की अपेक्षा चार बार।

893. *आहारक शरीर कौनसे संस्थान वाला होता है?*

उ. समचतुरस्र संस्थान वाला।

894. *आहारक शरीर सूक्ष्म होता है या स्थूल?*

उ. आहारक शरीर औदारिक और वैक्रिय की अपेक्षा सूक्ष्म तथा तैजस और कार्मण की अपेक्षा स्थूल होता है।

895. आहारक शरीर[1] किसको प्राप्त होता है?

उ. चतुर्दश पूर्वधर मुनि को।

896. आहारक शरीर किन-किन प्रयोजनों से सर्वज्ञ की सन्निधि में जाता है?

उ. आहारक शरीर चार कारणों से सर्वज्ञ की सन्निधि में जाता है—

(1) प्राणी दया (2) अर्हत् की ऋद्धि का दर्शन

(3) नवीन अर्थ का अवग्रहण (4) संशय अपनयन।

897. तैजस शरीर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस नामकर्म के उदय से जीव को तैजस शरीर की प्राप्ति होती है उसे तैजस शरीर नाम कर्म कहते हैं।

898. तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उ. तैजस शरीर-उष्मामूलक विद्युत शरीर। जो शरीर दीप्ति का कारण है, आहार आदि पचाने की क्षमता रखता है और जो तेजोलब्धि का निमित्त है, वह तैजस शरीर है। यह पूर्ववर्ती तीनों शरीरों से सूक्ष्म है। यह शरीर संसार के समस्त जीवों में विद्यमान रहता है।

899. लब्धिप्रत्ययिक तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उ. विशिष्ट तप के प्रभाव से जो तैजस लब्धि प्रकट होती है उसे लब्धि प्रत्ययिक तैजस शरीर कहते हैं।

इस लब्धि से अपकार करने के लिए श्राप रूप एवं उपकार हेतु वरदान रूप जो तेजोवर्गणा छोड़ी जाती है उसे क्रमशः तेजोलेश्या और शीतलेश्या कहते हैं।

900. कार्मण शरीर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस नाम कर्म के उदय से जीव को कार्मण शरीर की प्राप्ति होती है उसे कार्मण शरीर नाम कर्म कहते हैं।

---

1. आहारक शरीर चौदह पूर्वों के धारक लब्धिवान् मुनि को प्राप्त होता है। जब चौदह पूर्वधारी मुनि को किसी गहन विषय में संदेह उत्पन्न होता है और सर्वज्ञ की सन्निधि नहीं होती और औदारिक शरीर से अन्य क्षेत्रवर्ती सर्वज्ञ के पास जाना संभव नहीं होता तब वे मुनि अपनी आहारक लब्धि का प्रयोग करते हैं। उस लब्धि से एक हाथ का छोटा-सा विशिष्ट शरीर बनाते हैं। यह शरीर सुन्दर व अव्याघाती (न किसी को रोकता है, न ही किसी से रुकता है) होता है। इस शरीर में मुनि सर्वज्ञ के पास जाकर अपना संदेह निवारण करते हैं। पुनः औदारिक में आ जाते हैं। उसके पश्चात् वह शरीर बिखर जाता है। यह सब कार्य अन्तर्मुहूर्त में ही हो जाता है।

901. कार्मण शरीर किसे कहते हैं?

उ. कार्मण शरीर अर्थात् कर्म शरीर। पूर्ववर्ती औदारिक आदि चारों शरीरों का कारण है—कार्मण शरीर। इस दृष्टि से इसे कारण शरीर भी कहा जाता है।

902. कार्मण वर्गणा किसे कहते हैं?

उ. कार्मण शरीर के रूप में प्रयुक्त होने वाले सजातीय पुद्गल-समूह को कार्मण वर्गणा कहते हैं।

903. कर्म और कार्मण शरीर भिन्न-भिन्न हैं अथवा एक ही हैं?

उ. 'कर्म' कार्मण शरीर में रहते हैं पर कर्म भिन्न है, कार्मण शरीर भिन्न है। कर्म की उत्पत्ति बंधन नाम कर्म और राग-द्वेष के निमित्त से होती है। शरीर की उत्पत्ति शरीर नाम कर्म के उदय से होती है। इसी प्रकार इनका विपाक भी भिन्न है। ज्ञानावरण आदि कर्म का विपाक अज्ञान आदि उत्पन्न करता है। कार्मण शरीर का विपाक कार्मण शरीर को ही परिपुष्ट करता है।

904. कार्मण शरीर का निर्माण किससे होता है?

उ. अष्टविध कर्म-पुद्गलों से।

905. अरूप आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर को कैसे प्राप्त करती है?

उ. कर्म शरीर के द्वारा।

906. अन्तरालगति के समय कौनसा शरीर होता है?

उ. तैजस और कार्मण।

907. किन-किन जीवों के कितने-कितने शरीर होते हैं?

उ.
* पृथ्वीकाय, अप्काय, तैजसकाय, वनस्पतिकाय और तीन विकलेन्द्रिय असंज्ञी तिर्यंच, असंज्ञी मनुष्य, सर्व युगलियां—इन जीवों के तीन-तीन शरीर हैं—औदारिक, तैजस, कार्मण।
* वायुकाय, संज्ञी तिर्यंच तथा मनुष्यणी में शरीर चार पाते हैं—(आहारक शरीर को छोड़कर)।
* गर्भज मनुष्य में शरीर पांच पाते हैं।
* सात नारकी और सर्व देवता में शरीर तीन पाते हैं—वैक्रिय, तैजस और कार्मण।
* सिद्धों में शरीर नहीं पाता।

908. शरीरों की क्रम व्यवस्था क्या है?

उ. * औदारिक शरीर स्वल्प पुद्गलों से निष्पन्न तथा स्थूल परिणतिवाला है।

* वैक्रिय आदि शेष चार शरीर क्रमशः बहु, बहुतर, बहुतम पुद्गलों से निष्पन्न होते हैं। इसकी परिणति क्रमशः सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम होती है।

909. किस शरीर की कितने काल की स्थिति?

उ. शरीर	जघन्य	उत्कृष्ट
औदारिक	अन्तर्मुहूर्त	3 पल्योपम
वैक्रिय	10 हजार वर्ष	33 सागरोपम
आहारक	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
तैजस	जीव के साथ अनादि।	
कार्मण	जीव के साथ अनादि।	

910. एक साथ कितने शरीर हो सकते हैं?

उ. दो शरीर–तैजस और कार्मण।

तीन शरीर– (1) औदारिक, तैजस, कार्मण।
(2) वैक्रिय, तैजस, कार्मण।

चार शरीर– (1) औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कार्मण।
(2) औदारिक, आहारक, तैजस, कार्मण।

एक शरीर कभी भी नहीं हो सकता।

एक साथ पांच शरीर भी नहीं हो सकते हैं।

911. अंगोपांग नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म शरीर के अंग-प्रत्यंगों की प्राप्ति में निमित्तभूत बनता है, वह अंगोपांग नाम कर्म है।

912. अंगोपांग किसे कहते हैं?

उ. शरीर के मुख्य अवयवों को अंग कहते हैं।

(1) अंग आठ हैं—दो हाथ, दो पैर, पीठ, सिर, छाती, पेट।

(2) उपांग—अंगुली, नाक, कान आदि अंगों के साथ जुड़े हुए होने के कारण छोटे अवयवों को उपांग कहते हैं।

913. अंगोपांग नामकर्म की कितनी उपप्रकृतियां हैं?

उ. अंगोपांग नामकर्म की तीन उपप्रकृतियां हैं—(1) औदारिक अंगोपांग, (2) वैक्रिय अंगोपांग और (3) आहारक अंगोपांग।

तैजस और कार्मण के अंगोपांग नहीं होते हैं।

914. *तैजस और कार्मण शरीर में अंगोपांग नामकर्म का उदय क्यों नहीं होता?*

उ. तैजस और कार्मण शरीर में आत्म प्रदेश शेष तीन शरीरों के आधार पर आकार ग्रहण करने से उनका स्वतंत्र आकार नहीं होता है, अतः अंगादि भी नहीं होते हैं।

जिस प्रकार अलग-अलग बर्तन में डाले हुए पानी का अपना कोई स्वतंत्र आकार नहीं होता है, उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीर का अपना कोई विशिष्ट आकार नहीं होता है।

915. *बंधन नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जो कर्म पूर्व गृहीत एवं वर्तमान में ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों के पारस्परिक सम्बन्धों का हेतुभूत बनता है उसे शरीर बंध नाम कर्म कहते हैं।

916. *शरीर बंधन नाम कर्म की कितनी उपकृतियां हैं?*

उ. पांच–(1) औदारिक बंधन नाम कर्म, (2) वैक्रिय बंधन नाम कर्म, (3) आहारक बंधन नाम कर्म, (4) तैजस बंधन नाम कर्म, (5) कार्मण बंधन नाम कर्म।

917. *गर्गर्षि ऋषि के मत में बंधन कितने प्रकार के माने गये हैं?*

उ. पन्द्रह प्रकार के। (जिनका नामोल्लेख प्रश्न सं. 7,103 प्रकृतियों में किया गया है)

918. *बंधन नाम कर्म को किस उपमा से उपमित किया गया है?*

उ. बंधन नाम कर्म को लाख की उपमा से उपमित किया गया है। जिस प्रकार लाख (गोंद, फेविकॉल) दो पदार्थों को जोड़ देता है ठीक उसी प्रकार बंधन नाम कर्म पूर्व गृहीत औदारिक आदि के वर्गणा के पुद्गलों को नये ग्रहण किये गये औदारिक आदि पुद्गलों से जोड़ता है।

919. *संघातन नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. संघात का अर्थ है—एकत्र करना। (जैसे-झाड़ू के बिखरे हुए घास के तिनकों को इकट्ठा करना)। शरीर के गृहीत और ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों के बंधन को संघात यानी गाढ़ बंध करने में निमित्त भूत कर्म पुद्गलों को शरीर-संघात नामकर्म कहते हैं।

920. *संघातन नाम कर्म को किसकी उपमा दी गई है?*

उ. संघातन नाम कर्म को दंताली की उपमा दी गई है। जिस प्रकार दंताली अलग-अलग स्थानों पर बिखरी हुई घास को एकत्र करती है, ठीक उसी प्रकार संघातन नाम कर्म बिखरे हुए पुद्गलों को एकत्र करता है।

921. संघातन नाम कर्म की कितनी उपकृतियां हैं?

उ. संघातन नाम कर्म की पांच उपप्रकृतियां हैं—

(1) औदारिक शरीर संघात नाम कर्म, (2) वैक्रिय शरीर संघात नाम कर्म, (3) आहारक शरीर संघात नाम कर्म, (4) तैजस शरीर संघात नाम कर्म, (5) कार्मण शरीर संघात नाम कर्म।

922. औदारिक संघातन नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. औदारिक शरीर की रचना के अनुरूप पुद्गलों को एकत्र करने वाले कर्म को औदारिक संघातन नाम कर्म कहते हैं। (इसी प्रकार शेष चारों शरीर पर यही बात लागू होती है। केवल शरीर का नाम बदल जाएगा।)

923. शरीर नाम कर्म और संघातन नाम कर्म में क्या अन्तर है?

उ. शरीर की रचना के योग्य पुद्गलों का ग्रहण, पुद्गलों का शरीर के रूप में परिगमन और शरीर की रचना आदि कार्य, शरीर नाम कर्म सम्पन्न करता है परन्तु संघातन नाम कर्म शरीर की रचना के लिए आवश्यकतानुसार पुद्गलों के जत्थे एकत्र करके प्रदान करता है।

स्थूल शरीर की रचना होने पर पुद्गलों के अधिक जत्थे तथा सूक्ष्म शरीर की रचना होने पर पुद्गलों के कम जत्थे प्रदान करना संघातन नाम कर्म का कार्य है।

924. संहनन नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से शरीर अस्थि संरचना की मजबूती निर्भर करती है उसे संहनन नाम कर्म कहते हैं।

925. संहनन किसे कहते हैं?

उ. संहनन का एक अर्थ है—अस्थि संरचना।

संहनन का दूसरा अर्थ है—अमुक-अमुक प्रकार के अस्थि संचय से उपमित शक्ति विशेष।

926. संहनन नाम कर्म की उपप्रकृतियां कितनी हैं?

उ. संहनन नाम कर्म की उपप्रकृतियां छह हैं—

1. वज्रऋषभनाराच संहनन नाम कर्म
2. ऋषभनाराच संहनन नामकर्म
3. नाराच संहनन नामकर्म
4. अर्धनाराच संहनन नामकर्म
5. कीलिका संहनन नामकर्म
6. सेवार्त संहनन नामकर्म

927. *वज्रऋषभनाराच संहनन नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिस कर्म के उदय से वज्रऋषभनाराच संहनन प्राप्त होता है, उसे वज्रऋषभनाराच संहनन नाम कर्म कहते हैं।

928. *वज्रऋषभनाराच संहनन किसे कहते हैं?*

उ. वज्रऋषभनाराच—वज्र-कील, ऋषभ-वेष्टन और नाराच का अर्थ है मर्कट बंध। जिस संहनन में अपनी माता की छाती से चिपके हुए मर्कट-बंदर के बच्चे की-सी आकृति वाली संधि की दोनों हड्डियां परस्पर गुंथी हुई हो, उन पर तीसरी हड्डी का परिवेष्टन हो और चौथी हड्डी की कील उन तीनों का भेदन करती हुई हो, ऐसी सुदृढ़तम अस्थि-रचना को वज्रऋषभनाराच संहनन कहा जाता है।

929. *ऋषभनाराच संहनन नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. ऋषभनाराच संहनन में हड्डियों की आंटी और वेष्टन होते हैं, कील नहीं होती। जिस कर्म के उदय से ऋषभनाराच संहनन प्राप्त होता है उसे ऋषभ नाराच संहनन नामकर्म कहते हैं।

930. *नाराच संहनन नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. नाराच संहनन में हड्डियों की आंटी होती है लेकिन वेष्टन और कील नहीं होती। जिस कर्म के उदय से नाराच संहनन प्राप्त होता है उसे नाराच संहनन नाम कर्म कहते हैं।

931. *अर्धनाराच संहनन नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. अर्धनाराच संहनन में हड्डी का एक छोर मर्कट बंध से बंधा हुआ होता है और दूसरा छोर कील से भेदा हुआ होता है। जिस कर्म के उदय से अर्धनाराच संहनन की प्राप्ति हो उसे अर्धनाराच संहनन नाम कर्म कहते हैं।

932. *कीलिका संहनन नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. कीलिका संहनन में हड्डियां केवल एक कील से जुड़ी हुई होती हैं, मर्कट बंध आदि कुछ नहीं होते। जिस नाम कर्म के उदय से कीलिका संहनन की प्राप्ति हो उसे कीलिका संहनन नामकर्म कहते हैं।

933. *सेवार्त संहनन नामकर्म किसे कहते हैं?*

उ. सेवार्त संहनन में हड्डियां पर्यन्त भाग में एक-दूसरे से स्पर्श करती हुई-सी होती है। जिस कर्म के उदय से सेवार्त संहनन की प्राप्ति हो, उसे सेवार्त संहनन नामकर्म कहते हैं।

934. वज्रऋषभनाराच आदि छहों संहनन किन-किन शरीरों में होता है?

उ. केवल औदारिक शरीर में ही छहों संहनन होते हैं। शेष चार शरीर अस्थि बिना के होने के कारण उनमें कोई भी संहनन नहीं होता।

935. चार गति में से किस गति में कौनसा संहनन पाता है?

उ.
- * नारकी और देवता में संहनन नहीं होता।
- * पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य में संहनन एक पाता है—सेवार्त।
- * गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच में संहनन छहों ही पाते हैं।
- * सर्वयुगलिया, तिरेसठ शलाका पुरुष में संहनन एक पाता है—वज्रऋषभनाराच।
- * सिद्धों में संहनन नहीं होता।

936. शुक्ल-ध्यान की साधना के लिए और मोक्ष गमन के लिए कौनसा संहनन होना जरूरी है?

उ. वज्रऋषभनाराच।

937. उत्कृष्ट साधना की भांति उत्कृष्ट क्रूर-कर्म कौनसे संहनन वाले प्राणी करते हैं?

उ. वज्रऋषभनाराच संहनन वाले। एक ओर मोक्ष; दूसरी ओर सातवी नरकभूमि–एक ही माध्यम से (वज्रऋषभनाराच संहनन से) दो परिणतियां पुरुषार्थ के सम्यक् और असम्यक् प्रयोग पर निर्भर करती हैं।

938. किस संहनन वाला कौन से देवलोक में उत्पन्न होता है?

उ.

देवलोक		**संहनन**
1 से 4 देवलोक	–	छह–सभी
5 से 6 देवलोक	–	पांच–सेवार्त को छोड़कर
7 से 8 देवलोक	–	चार–कीलिका, सेवार्त को छोड़कर
9 से 12 देवलोक	–	तीन–अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त को छोड़कर
9 ग्रैवेयक	–	दो–वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच
5 अनुत्तर	–	एक–वज्रऋषभनाराच

939. *किस संहनन वाला जीव कौनसी नरक में जाता है?*

उ.

नरक	–	**संहनन**
1, 2	–	छह–सभी
3	–	पांच–सेवार्त को छोड़कर
4	–	चार–कीलिका, सेवार्त को छोड़कर
5	–	तीन–अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त को छोड़कर।
6	–	दो–वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच।
7	–	एक–वज्रऋषभनाराच।

940. *शास्त्रों में (आगमों में) देव को वज्रऋषभनाराच वाले और नारकी को सेवार्त संहनन वाले कहा गया है और चार गति में संहनन की व्याख्या में देव और नारक को संहनन रहित कहा गया है, ऐसा क्यों?*

उ. देव और नारकी के शरीर में अस्थियां नहीं होती किन्तु वे क्रमशः वज्रऋषभनाराच संहनन युक्त और सेवार्त संहनन युक्त होते हैं अर्थात् उनमें प्रथम व छठे संहनन जितनी शक्ति होती है।

941. *संस्थान नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. शरीर के आकार विशेष को संस्थान कहते हैं। जो शरीर की आकृति रचना का हेतुभूत है उस कर्म को संस्थान नाम कर्म कहते हैं।

942. *संस्थान नाम कर्म कितने प्रकार का है?*

उ. छः प्रकार का–(1) समचतुरस्र, (2) न्यग्रोध परिमण्डल, (3) सादिज, (4) वामन, (5) कुब्ज, (6) हुण्डक।

943. *समचतुरस्र संस्थान किसे कहते हैं?*

उ. सम अर्थात् समान, चतुर यानी चार, अस्र यानी कोण। पर्यंकासन में स्थित होने पर जिस पुरुष के बायें कंधे और दाहिने घुटने, दाहिने कंधे और बायें घुटनें, दोनों घुटनों के बीच का अन्तर तथा ललाट और पर्यंक के बीच का अन्तर ये चारों अन्तर समान हो उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं।

944. *समचतुरस्र संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिस कर्म के उदय से जीव प्रथम संस्थान समचतुरस्र की प्राप्ति करता है, उसे समचतुरस्र नाम कर्म कहते हैं।

945. *समचतुरस्र संस्थान किसके होता है?*

उ. केवल पंचेन्द्रिय जीवों के होता है।

946. न्यग्रोध–परिमण्डल संस्थान नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. न्यग्रोध (वटवृक्ष) की तरह जिसमें नाभि से ऊपर के अवयव प्रमाण युक्त नहीं होते वह न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान है। जिस कर्म के उदय से जीव न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान प्राप्त करता है उसे न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नाम कर्म कहते हैं।

947. सादिज संस्थान नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. सादिज–जिसमें नाभि से नीचे का भाग लक्षणयुक्त हो, वह सादिज संस्थान है। जिस कर्म के उदय से जीव सादिज संस्थान की प्राप्ति करता है उसे सादिज संस्थान नाम कर्म कहते हैं।

948. कुब्ज संस्थान नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. कुब्ज—जिसके हाथ, पैर, सिर और ग्रीवा लक्षण युक्त हो, हृदय, उदर और पीठ लक्षणहीन हो, पीठ पर अधिक पुद्गलों का संचय हो, वह कुब्ज संस्थान है। जिस कर्म के उदय से जीव को कुब्ज संस्थान की प्राप्ति हो, वह कुब्ज संस्थान नाम कर्म है।

949. वामन संस्थान नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. वामन—जिस शरीर में हृदय, उदर और पीठ लक्षणयुक्त हो, शेष अवयव लक्षणहीन हो वह वामन संस्थान है। जिस कर्म के उदय से जीव को वामन संस्थान की प्राप्ति हो उसे वामन संस्थान नाम कर्म कहते हैं।

950. हुण्डक संस्थान नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. हुण्डक–जिसमें सब लक्षण विसंवादी होते हैं, शरीर के सब अवयव प्राय: प्रमाणहीन और असंस्थित होते हैं, वह हुण्डक संस्थान है। जिस कर्म के उदय से जीव को हुण्डक संस्थान की प्राप्ति हो, उसे हुण्डक संस्थान नाम कर्म कहते हैं।

951. आहारक शरीर का संस्थान कौनसा होता है?

उ. समचतुरस्र।

952. चार गति में से किस गति में कौनसा संस्थान पाता है?

उ. * सात नारकी, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में संस्थान एक पाता है—हुण्डक।

* सर्वदेवता, सर्वयुगलिया, तिरेसठ शलाका-पुरुष में संस्थान एक पाता है—समचतुरस्र।

* गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य में संस्थान पाते हैं—छहों ही।

953. *पांच स्थावर में संस्थान कौन-कौनसे हैं?*

उ. पांच स्थावर में हुण्डक संस्थान पाता है। अलग-अलग जानकारी की दृष्टि से पांच स्थावर में संस्थान का विवरण—

पृथ्वीकाय का संस्थान	–	चन्द्र मसूर की दाल के समान।
अप्काय का संस्थान	–	पानी के बुद्बुद के समान।
तेजसकाय का संस्थान	–	सूई के करनाले के समान।
वायुकाय का संस्थान	–	ध्वजा पताका के समान।
वनस्पतिकाय का संस्थान	–	अनेक प्रकार का।

954. *संस्थान कितने प्रकार का है?*

उ. संस्थान दो प्रकार का है—

1. इत्थंस्थ	–	नियत आकार
2. अनित्थंस्थ	–	अनियत आकार

955. *क्या पुद्गल के भी संस्थान होता है?*

उ. हां, पुद्गल के भी संस्थान होता है। पौद्गलिक संस्थान के भी पांच प्रकार हैं—

1. वृत्त–कुलालचक्र की तरह बाहर से गोल तथा अन्दर से पोलाल रहित मोदक की भांति।
2. परिमण्डल–वलय की तरह बाहर से गोल और भीतर से शुषिर-चुड़ी की भांति।
3. त्रिकोण–सिंघाड़े की तरह।
4. चतुष्कोण–चौकोर-कुम्भिका की तरह। पंचकोण, षट्कोण, इसी में आ जाते हैं।
5. आयत–दण्ड की तरह दीर्घ। यह विस्तृत अर्थ का भी बोधक है।

956. *संहनन और संस्थान पुद्गल के होते हैं या जीव के?*

उ. संहनन और संस्थान दोनों पुद्गल के होते हैं। किन्तु संहनन और संस्थान जीव-गृहीता शरीर रूप में परिणत पुद्गल विशेष में माना गया है। संस्थान शरीर के अतिरिक्त पुद्गल में भी होता है, उसका स्वरूप भिन्न है। शरीर मुक्त जीव के संहनन और संस्थान दोनों नहीं होते।

957. *वर्ण नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. शरीर के रंग पर प्रभाव डालने वाले कर्म को वर्ण नाम कर्म कहते हैं। इसके पांच प्रकार हैं—(1) कृष्णवर्ण नाम, (2) नीलवर्ण नाम, (3) रक्तवर्ण

नाम, (4) पीतवर्ण नाम और (5) श्वेतवर्ण नाम। जिस कर्म के उदय से शरीर कृष्णादि वर्ण वाला होता है। उसे उसी वर्ण नाम कर्म से पुकारा जाता है।

958. गंध नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. शरीर की गंध पर प्रभाव डालने वाले कर्म को गंध नाम कर्म कहते हैं। गंध नाम कर्म के दो भेद हैं—सुगन्ध नाम कर्म और दुर्गंध नाम कर्म।

959. सुगन्ध नाम कर्म और दुर्गन्ध नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. 1. सुगंध नाम कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में कस्तुरी, गुलाब, चंदन आदि जैसी सुगंध हो, उसे सुगंध नाम कर्म कहते हैं।

2. दुर्गन्ध नाम कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में लहसुन, कीचड़ आदि जैसी दुर्गंध होती हो उसे दुर्गंध नामकर्म कहते हैं।

960. रस नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. शरीर के रस पर प्रभाव डालने वाले कर्म को रस नाम कर्म कहते हैं। रस नाम कर्म की उपप्रकृतियां पांच हैं—तिक्त रस नाम कर्म, कटु रस नाम कर्म, कषाय रस नाम कर्म, आम्ल रस नाम कर्म, मधुर रस नाम कर्म। जिस कर्म के उदय से शरीर तिक्तादि रस वाला होता है, उसे उसी रस नाम कर्म से पुकारा जाता है।

961. स्पर्श नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. शरीर के स्पर्श पर प्रभाव डालने वाले कर्म को स्पर्श नाम कर्म कहते हैं। इसकी आठ उपप्रकृतियां हैं—(1) गुरु स्पर्श नाम कर्म, (2) लघु स्पर्श नाम कर्म, (3) मृदु स्पर्श नाम कर्म, (4) कर्कश स्पर्श नाम कर्म, (5) शीत स्पर्श नाम कर्म, (6) उष्ण स्पर्श नाम कर्म, (7) स्निग्ध स्पर्श नाम कर्म, (8) रुक्ष स्पर्श नाम कर्म।

962. वर्ण-गंध-रस-स्पर्श नाम कर्म के कुल कितने भेद हैं?

उ. बीस।

963. बीस प्रकृतियों में शुभ कितनी और अशुभ कितनी?

उ. * शुभ प्रकृतियां—11–(1) रक्त वर्ण, (2) पीत वर्ण, (3) श्वेत वर्ण, (4) सुगन्ध, (5) कषाय रस, (6) आम्ल रस, (7) मधुर रस, (8) लघु स्पर्श, (9) मृदु स्पर्श, (10) स्निग्ध स्पर्श, (11) उष्ण स्पर्श।

* अशुभ प्रकृतियां—9–(1) नील वर्ण, (2) कृष्ण वर्ण, (3) दुर्गंध, (4) तिक्त रस, (5) कटु रस, (6) गुरु स्पर्श, (7) कर्कश स्पर्श, (8) रुक्ष स्पर्श और (9) शीत स्पर्श।

964. आनुपूर्वी नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. विग्रहगति से अग्रिम जन्म स्थान जाते हुए जीव को आकाश प्रदेश की श्रेणी के अनुसार गमन कराने वाला हेतुभूत कर्म आनुपूर्वी नाम कर्म है। आनुपूर्वी का उदय वक्रगति से होता है।

965. विग्रह गति से क्या तात्पर्य है?

उ. एक भव से दूसरे भव में उत्पन्न होने के मध्य के काल में होने वाली आत्मा की गति को विग्रहगति[1] कहते हैं।

966. आनुपूर्वी नाम कर्म की उपप्रकृतियां कितनी हैं?

उ. चार–(1) नरकानुपूर्वी नामकर्म, (2) तिर्यंचानुपूर्वी नाम कर्म, (3) मनुष्यानुपूर्वी नामकर्म, (4) देवानुपूर्वी नाम कर्म।

967. किस भव में किस आनुपूर्वी का उदय हो सकता है?

उ. जिस भव का आयुष्य और गति का उदय होता है उसी के अनुरूप जीव के आनुपूर्वी का उदय होता है—

* नरक आयुष्य नरक गति का उदय होता है तो नरकानुपूर्वी का उदय होता है।
* देवायुष्य एवं देवगति का उदय होने पर देवानुपूर्वी का उदय होता है।
* मनुष्य और तिर्यंच गति के जीव को चारों आनुपूर्वियों का उदय हो सकता है।
* देवगति और नरकगति के जीवों को मनुष्यानुपूर्वी व तिर्यंचानुपूर्वी का उदय हो सकता है।

968. विहायोगति नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस गति से आकाश-स्थान विशेष को पाया जाए उसे विहायोगति कहते हैं। गमन सदैव आकाश प्रदेश में ही होता है, पृथ्वी पर चलने वाला भी

---

1. विग्रहगति से समापन्न जीव इलिकागति से अनुत्तर विमान में जाता है अथवा वहाँ से आता है, तब सात रज्जूप्रमाण क्षेत्र का स्पर्श करता है तथा जो जीव छठी नरक में जाता है अथवा वहाँ से आता है, तब रज्जूप्रमाण क्षेत्र का स्पर्श करता है।

आकाश में चलता है। जिस कर्म के उदय से विहायोगति प्राप्त होती है उसे विहायोगति नाम कर्म कहते हैं।

969. *विहायोगति नाम कर्म के कितने भेद हैं?*

उ. विहायोगति नाम कर्म के दो भेद हैं—शुभ विहायोगति (प्रशस्त विहायोगति), अशुभ विहायोगति (अप्रशस्त विहायोगति)।

970. *शुभ विहायोगति नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिस कर्म के उदय से जीव को हंस जैसी सुन्दर, प्रशंसनीय चाल, गति अथवा गमन क्रिया की प्राप्ति होती है, उसे शुभ विहायोगति नाम कर्म कहते हैं।

971. *अशुभ विहायोगति नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिस कर्म के उदय से जीव को गर्दभ जैसी अशुभ चाल-गति-गमन क्रिया की प्राप्ति होती है, उसे अशुभ विहायोगति नाम कर्म कहते हैं।

972. *प्रत्येक प्रकृति किसे कहते हैं?*

उ. जिस प्रकृति का कोई भेद नहीं होता, जो स्वयं में एक होती है उसे प्रत्येक प्रकृति कहते हैं।

973. *आठ प्रत्येक प्रकृतियां कौन-कौनसी हैं?*

उ. प्रत्येक प्रकृतियां–(1) अगुरुलघु नाम, (2) उपघात नाम, (3) पराघात नाम, (4) उच्छ्वास नाम, (5) आतप नाम, (6) उद्योत नाम, (7) निर्माण नाम, (8) तीर्थंकर नाम।

974. *अगुरुलघु नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर अधिक हलका अथवा अधिक भारी नहीं होता उसे अगुरुलघु नाम कर्म कहते हैं।

975. *अगुरुलघु नाम कर्म की प्रकृति का उदय किन जीवों के होता है?*

उ. यह प्रकृति ध्रुवोदयी प्रकृति है। इस प्रकृति का उदय प्रत्येक संसारी जीव के अवश्य ही होता है।

976. *उपघात नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिस कर्म के उदय से जीव अपने अधिक या विकृत अवयवों द्वारा दुःख पाते हैं अथवा जो कर्म जीव के उपघात-बेमौत मरण का कारण हो उसे 'उपघात नाम कर्म' कहते हैं।

977. *पराघात नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिस कर्म के उदय से जीव विजय प्राप्त करता है और प्रतिपक्षी की हार होती है उसे पराघात नाम कर्म कहते हैं।

978. *उच्छ्वास नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिस कर्म के उदय से जीव सुखपूर्वक श्वास-उच्छ्वास ले सकता है उसे उच्छ्वास नाम कर्म कहते हैं।

979. *आतप नाम कर्म किसे कहते हैं?*

उ. जिस कर्म के उदय से जीव स्वयं शीतल होते हुए भी दूसरों के तापयुक्त होता है उसे आतप नाम कर्म कहते हैं।

980. *आतप नाम कर्म का उदय किन-किन जीवों के होता है?*

उ. आतप नाम कर्म का उदय मात्र सूर्य विमान में स्थित जो पृथ्वीकायिक रत्न है, उन रत्नरूप पृथ्वीकायिक जीवों को आतप नाम कर्म का उदय होता है।

981. *आतप नाम कर्म वाला सम्यक्त्वी होता है या मिथ्यात्वी?*

उ. आतप नाम कर्म के उदय वाला जीव मिथ्यात्वी होगा, सम्यक्त्वी नहीं।

982. *किन-किन जीवों में उद्योत नाम कर्म का उदय हो सकता है?*

उ. * पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय के, मूल औदारिक में तीन पर्याप्तियां पूर्ण करने के बाद उद्योत नाम कर्म का उदय हो सकता है।

* तीन, चार, पांच अथवा छह पर्याप्तियां पूर्ण करने के पश्चात् साधु के वैक्रिय शरीर में उद्योत नाम कर्म का उदय हो सकता है।

* आहारक शरीर सम्बन्धी-श्वासोच्छ्वास, भाषा या मन पर्याप्ति पूर्ण करने से पूर्व अथवा बाद में मुनि के आहारक शरीर में उद्योत नाम कर्म का उदय हो सकता है।

* संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उत्तर वैक्रिय शरीर में तीन पर्याप्तियां पूर्ण होने के बाद और तीसरी, चौथी या पांचवीं अथवा छठी पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद उद्योत नाम कर्म का उदय हो सकता है।

983. *किन-किन जीवों में उद्योत नाम कर्म का उदय होता है?*

उ. * भवनपति आदि चारों निकाय के देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर में तीन पर्याप्तियां पूर्ण होने के बाद अथवा चौथी या पांचवीं या छठी पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद उद्योत नाम कर्म का उदय होता है।

* चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा इन चार ज्योतिष्क विमानों के पृथ्वीकायिक रत्नों के शरीर में तीसरी पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद उद्योत नाम कर्म का उदय होता है।
* जुगनु जैसे चतुरिन्द्रिय जीव के शरीर में उद्योत नाम कर्म का उदय होता है।

984. किन-किन जीवों में उद्योत नाम कर्म का उदय नहीं होता है?

उ. * देवों के मूल वैक्रिय शरीर में, नारकी जीवों के मूल वैक्रिय और उत्तर वैक्रिय शरीर में उद्योत नाम कर्म का उदय नहीं होता।
* मनुष्यों के (1 से 5 गुणस्थानवर्ती) वैक्रिय शरीर में और मूल औदारिक शरीर में उद्योत नामकर्म का उदय नहीं होता हैं।
* वायुकाय के मूल (औदारिक) शरीर में एवं वैक्रिय शरीर में और तेजसकाय के मूल (औदारिक) शरीर में उद्योत नाम कर्म का उदय नहीं होता है।
* मुनि के जन्म से मिले औदारिक शरीर में उद्योत नाम कर्म का उदय नहीं होता।

985. निर्माण नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव के अवयव यथास्थान व्यवस्थित होते हैं तथा उसका शरीर फोड़े-फुंसियों से रहित होता है उसे निर्माण नाम कर्म कहते है।

986. अंगोपांग का निर्माण अंगोपांग नाम कर्म करता है तो फिर निर्माण नाम कर्म की क्या आवश्यकता है?

उ. मस्तक, हाथ, पांव आदि अंग, उपांग एवं अंगोपांग की रचना अंगोपांग नाम कर्म करता है परन्तु उन्हें व्यवस्थित-यथास्थान पर जमाने का कार्य निर्माण नाम कर्म करता है। अत: दोनों नाम कर्म भिन्न-भिन्न हैं। यह ध्रुवोदयी प्रकृति है। अर्थात् प्रत्येक जीव के इसका उदय अवश्यमेव होता है।

987. तीर्थंकर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव को तीर्थंकरत्व की प्राप्ति होती है, उसे तीर्थंकर नाम कर्म कहते हैं।

988. तीर्थंकर किसे कहते हैं?

उ. साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना करते हैं वे तीर्थंकर कहलाते हैं।

989. तीर्थंकर नाम कर्म बंध के कितने कारण हैं और कौन-कौन से हैं?

उ. तीर्थंकर नाम कर्म बंध के बीस कारण हैं—

(1) अरिहंत वात्सल्य (2) सिद्ध वात्सल्य
(3) प्रवचन वात्सल्य (4) गुरु वात्सल्य
(5) स्थविर वात्सल्य (6) बहुश्रुत वात्सल्य
(7) तपस्वी वात्सल्य (8) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग
(9) दर्शन (10) विनय
(11) आवश्यक (12) निरतिचार
(13) क्षणलव-ध्यान (14) तप
(15) त्याग (16) वैयावृत्त्य
(17) समाधि (18) अपूर्व ज्ञानग्रहण
(19) श्रुत-भक्ति (20) प्रवचन-प्रभावना।

990. तीर्थंकर नाम कर्म का बंध कब होता है?

उ. तीर्थंकर भव के पूर्व तीसरे भव में।

991. तीर्थंकर नाम कर्म का उदय कब होता है?

उ. तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में।

992. तीर्थंकर नाम कर्म का उदय हर केवली के होता है या नहीं?

उ. नहीं।

993. त्रस दशक प्रकृतियां कौन-कौनसी हैं?

उ. त्रस दशक प्रकृतियां–(1) त्रस, (2) बादर, (3) प्रत्येक, (4) पर्याप्त, (5) स्थिर, (6) शुभ, (7) सुभग, (8) सुस्वर, (9) आदेय, (10) यश:कीर्ति।

994. त्रस नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव को स्वतंत्र रूप से गमनागमन का सामर्थ्य उत्पन्न होता है उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं।

995. त्रस किसे कहते हैं?

उ. 1. ताप आदि से संतप्त होने पर जो छाया आदि की ओर गतिशील होते हैं वे त्रस हैं।

2. एक स्थान से दूसरे स्थान में स्वयं गमन करने वाले जीव त्रस कहलाते हैं।

3. जिन किन्हीं प्राणियों में सामने जाना, पीछे हटना, संकुचित होना,

फैलना, शब्द करना, इधर-उधर जाना, भयभीत होना, दौड़ना—ये क्रियाएं हैं और गति-आगति के विज्ञाता हैं वे त्रस हैं।

996. त्रस जीव कितने प्रकार के हैं?

उ. दो प्रकार के—लब्धित्रस और गतित्रस।

997. लब्धित्रस और गतित्रस किसे कहते हैं?

उ. द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीव लब्धित्रस है, इनके त्रस-त्रस नाम कर्म का उदय होता है। अग्नि और वायु गतित्रस है। यद्यपि इनके स्थावर नाम कर्म का उदय है फिर भी गतिशीलता के कारण ये त्रस कहलाते हैं।

998. त्रस जीवों के उत्पन्न होने के स्थान कितने व कौन-कौनसे हैं?

उ. त्रस जीवों के उत्पन्न होने के आठ स्थान हैं—

(1) अण्डज–जो अण्डों से पैदा होते हैं, जैसे–पक्षी, सर्प आदि।

(2) पोतज–जो जन्म के समय खुले अंगों सहित होते हैं, जैसे–हाथी आदि।

(3) जरायुज–जो जन्म के समय मांस की झिल्ली से लिपटे रहते हैं, जैसे–मनुष्य, गाय, भैंस आदि।

(4) रसज–जो दही आदि रसों में उत्पन्न होते हैं, जैसे–कृमि आदि।

(5) स्वेदज–जो पसीने से उत्पन्न होते हैं, जैसे–जूं, लीख आदि।

(6) सम्मूर्च्छिम–जो नर-मादा के संभोग के बिना ही उत्पन्न होते हैं, जैसे–मक्खी, चींटी आदि।

(7) उद्भिज्–जो पृथ्वी को फोड़कर निकलते हैं, जैसे टिड्डी, पतंग आदि।

(8) औपपातिक–जो गर्भ में रहे बिना ही स्थान विशेष में पैदा होते हैं, जैसे–देव और नारक।

999. बादर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस नाम कर्म के उदय से जीव को ऐसा स्थूल शरीर प्राप्त होता है जो आंखों से देखा जा सके उसे बादर नाम कर्म कहते हैं।

1000. बादर नाम कर्म का उदय किन-किन जीवों के होता है?

उ. एकेन्द्रिय जीवों के सूक्ष्म और बादर दोनों नाम कर्म का उदय रहता है। शेष पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों के बादर नाम कर्म का उदय रहता है।

1001. बादर जीव कहां रहते हैं?

उ. लोक के एक भाग में।

1002. प्रत्येक नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव को एक स्वतंत्र शरीर की प्राप्ति हो उसे प्रत्येक नाम कर्म कहते हैं।

1003. किन-किन जीवों के प्रत्येक नाम कर्म का उदय होता है?

उ. साधारण वनस्पतिकाय को छोड़कर शेष सभी जीवों के प्रत्येक नाम कर्म का उदय होता है।

1004. पर्याप्त नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियां पूर्ण कर लेता है, उसे पर्याप्त नाम कर्म कहते हैं।

1005. पर्याप्त किसे कहते हैं?

उ. स्वयोग्य पर्याप्तियां पूर्ण करने वाले जीव को पर्याप्त कहते हैं।

1006. पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. जन्म के प्रारम्भ में जो पौद्गलिक शक्ति का निर्माण होता है, उसे पर्याप्ति कहते हैं।

1007. पर्याप्ति कितनी व कौन-कौनसी हैं?

उ. पर्याप्तियां छह हैं—आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनःपर्याप्ति।

1008. पर्याप्ति निर्माण का कालक्रम क्या है?

उ. पर्याप्ति का प्रारम्भ एक साथ होता है। पूर्णता आहार पर्याप्ति की एक समय में हो जाती है तथा शेष की पूर्णता का काल क्रमशः एक-एक अन्तर्मुहूर्त है।

1009. पर्याप्ति जीव है या अजीव?

उ. पर्याप्ति पौद्गलिक शक्ति होने के कारण अजीव है।

1010. किन-किन जीवों में कौन-कौनसी अथवा कितनी-कितनी पर्याप्तियां पाई जाती हैं?

उ. एकेन्द्रिय में प्रथम चार (भाषा व मन को छोड़कर), तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पांच प्रथम (मन को छोड़कर), सन्नी पंचेन्द्रिय में छह तथा असन्नी मनुष्य में साढ़े तीन (मन, भाषा को छोड़कर तथा श्वास लेना उच्छ्वास नहीं), पायी जाती है।

1011. कोई भी जीव न्यूनतम कितनी पर्याप्तियां पूर्ण करता है?

उ. कोई भी जीव न्यूनतम प्रथम तीन पर्याप्तियां पूर्ण करता है। तीन पर्याप्तियों को पूर्ण करने के बाद ही जीव मृत्यु को प्राप्त हो सकता है, उससे पूर्व नहीं।

1012. औदारिक, वैक्रिय और आहारक इन तीन शरीरों में पर्याप्तियां पूर्ण करने का क्रम क्या है?

उ. औदारिक शरीर वाला जीव पहली पर्याप्ति एक समय में पूर्ण करता है और इसके बाद अन्तर्मुहूर्त में दूसरी, इसके बाद तीसरी। इस प्रकार चौथी, पांचवीं और छठी प्रत्येक क्रमशः अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त के बाद पूर्ण करता है।

वैक्रिय और आहारक शरीर वाले जीव पहली पर्याप्ति एक समय में पूरी कर लेते हैं और उसके बाद अन्तर्मुहूर्त में दूसरी पर्याप्ति, उसके बाद तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी पर्याप्ति अनुक्रम से एक-एक समय में पूरी करते हैं। किन्तु देव पांचवीं और छठी इन दोनों पर्याप्तियों को अनुक्रम से पूर्ण न कर एक साथ एक समय में ही पूरी कर लेते हैं।

1013. सबसे कम कौनसी पर्याप्ति वाले जीव हैं?

उ. मनःपर्याप्ति वाले।

1014. स्थिर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव मजबूत एवं स्थिर होते हैं, उसे स्थिर नाम कर्म कहते हैं।

1015. शुभ नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से शरीर सुन्दर एवं लावण्ययुक्त होता है उसे शुभ नाम कर्म कहते हैं। अथवा जिस कर्म के उदय से शरीर के नाभि से मस्तक तक के भाग सुन्दर एवं शुभ हो उसे शुभ नाम कर्म कहते हैं।

1016. सुभग नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव सबको प्रिय लगता है, उसे सुभग नाम कर्म कहते हैं।

1017. सुस्वर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर मधुर व प्रिय लगता है, उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं।

1018. आदेय नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव का वचन आदेय व प्रामाणिक होता है, उसे आदेय नाम कर्म कहते हैं।

1019. यशःकीर्ति नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव को यशःकीर्ति मिलती है उसे यशःकीर्ति नाम कर्म कहते हैं।

1020. स्थावरदशक प्रकृतियां कौन-कौनसी हैं?

उ. स्थावरदशक प्रकृतियां—(1) स्थावर, (2) सूक्ष्म, (3) साधारण, (4) अपर्याप्त, (5) अस्थिर, (6) अशुभ, (7) दुःभग, (8) दुःस्वर, (9) अनादेय, (10) अयशःकीर्ति।

1021. स्थावर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव स्वतंत्र रूप से गमनागमन नहीं कर सकता, उसे स्थावर नाम कर्म कहते हैं।

1022. स्थावर नाम कर्म का उदय किन-किन जीवों के होता है?

उ. एकेन्द्रिय जीवों के।

1023. सूक्ष्म नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिन जीवों का शरीर दृष्टिगम्य नहीं होता वे सूक्ष्म कहलाते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव को सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति हो, जो आंखों से नहीं देखा जा सकता हो, वह सूक्ष्म नाम कर्म कहलाता है।

1024. सूक्ष्म जीव कहां रहते हैं?

उ. सूक्ष्म जीव पूरे लोक में व्याप्त हैं।

1025. साधारण नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. जहाँ एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं उसे साधारण कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव को एक शरीर में अनन्त जीवों के साथ रहना पड़ता है, उसे साधारण नाम कर्म कहते हैं।

1026. किन-किन जीवों में साधारण नाम कर्म का उदय होता है?

उ. मात्र वनस्पतिकायिक जीवों में।

1027. अपर्याप्त नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव स्वयोग्य-पर्याप्तियां पूर्ण न कर सके और पहले ही मरण को प्राप्त हो, उसे अपर्याप्त नाम कर्म कहते हैं।

1028. अस्थिर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव के अवयव कमजोर, ढीले व अस्थिर होते हैं, उसे अस्थिर नाम कर्म कहते हैं।

1029. अशुभ नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सुन्दर नहीं होता है, उसे अशुभ नाम कर्म कहते हैं।

1030. दुर्भग नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव उपकार करने पर भी एवं संबंध रखने पर भी सबको अप्रिय लगता है उसे दुर्भग नाम कर्म कहते हैं।

1031. दु:स्वर नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव कर्कश स्वर वाला होता है उसे दु:स्वर नाम कर्म कहते हैं।

1032. अनादेय नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव का वचन अनादेय-अप्रामाणिक एवं अप्रिय होता है उसे अनादेय नामकर्म कहते हैं।

1033. अयश: कीर्तिनाम-कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव को अपयश और अकीर्ति मिलती है उसे अयशः कीर्तिनाम-कर्म कहते है।

1034. उपरोक्त नाम कर्म की प्रकृतियों में शुभ नाम कर्म की कितनी हैं?

उ. शुभ नाम कर्म के अनंत भेद हैं, किन्तु मुख्य भेद सैंतीस (37) हैं—

1. मनुष्य गति	2. देव गति
3. पंचेन्द्रिय जाति	4. औदारिक शरीर
5. वैक्रिय शरीर	6. आहारक शरीर
7. तैजस शरीर	8. कार्मण शरीर
9. समचतुरस्र संस्थान	10. वज्रऋषभनाराच संहनन
11. औदारिक अंगोपांग	12. वैक्रिय अंगोपांग
13. आहार अंगोपांग	14. प्रशस्त वर्ण
15. प्रशस्त गंध	16. प्रशस्त रस
17. प्रशस्त स्पर्श	18. मनुष्यानुपूर्वी
19. देवानुपूर्वी	20. अगुरुलघु
21. पराघात	22. उच्छ्वास
23. आतप	24. उद्योत
25. प्रशस्त विहायोगति	26. त्रस
27. बादर	28. पर्याप्त
29. प्रत्येक	30. स्थिर
31. शुभ	32. सुभग
33. सुस्वर	34. आदेय
35. यश:कीर्ति	36. निर्माण
37. तीर्थंकर नाम।	

1035. *अशुभ नाम कर्म की कितनी प्रकृतियां हैं?*

उ. चौतीस।

1. नरकगति	2. तिर्यंचगति
3. एकेन्द्रिय जाति	4. द्वीन्द्रिय जाति
5. त्रीन्द्रिय जाति	6. चतुरिन्द्रिय जाति
7. ऋषभनाराच संहनन	8. नाराच संहनन
9. अर्द्धनाराच संहनन	10. कीलिका संहनन
11. सेवार्त संहनन	12. न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान
13. सादिज संस्थान	14. वामन संस्थान
15. कुब्ज संस्थान	16. हुण्डक संस्थान
17. अप्रशस्त वर्ण	18. अप्रशस्त गंध
19. अप्रशस्त रस	20. अप्रशस्त स्पर्श
21. नरकानुपूर्वी	22. तिर्यंचानुपूर्वी
23. उपघात	24. अप्रशस्त विहायोगति
25. स्थावर	26. सूक्ष्म
27. साधारण	28. अपर्याप्त
29. अस्थिर	30. अशुभ
31. दुर्भग	32. दु:स्वर
33. अनादेय	34. अयश:कीर्तिनाम

1036. नाम कर्म बंध के कितने कारण हैं?

उ. नाम कर्म बंध के छह कारण हैं—

1. कायऋजुता–दूसरों को ठगने वाली शारीरिक चेष्टा न करना।
2. भावऋजुता–दूसरों को ठगने वाली मानसिक चेष्टा न करना।
3. भाषाऋजुता–दूसरों को ठगने वाली वचन की चेष्टा न करना।
4. अविसंवादन योग–कथनी और करनी में विसंवादन न करना।

ये शुभ नाम कर्म बंध के कारण हैं और इनके विपरीत करना अशुभ नाम कर्म बंध के कारण हैं। जैसे—काय वक्रता, भाव वक्रता, भाषा वक्रता और विसंवादन योग।

1037. नाम कर्म की स्थिति कितनी है?

उ. जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बीस करोड़ाकरोड़ सागर।

1038. नाम कर्म का अबाधाकाल कितना है?

उ. जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट दो हजार वर्ष।

1039. नाम कर्म का लक्षण एवं कार्य क्या है?

उ. नाम कर्म चित्रकार के समान है। चित्रकार अपनी कल्पना से नये-नये चित्रों का निर्माण करता है वैसे ही नाम कर्म शरीर संस्थान आदि को अनेक रूप देता है।

नाम कर्म के उदय से व्यक्ति में सुन्दरता-असुन्दरता के दर्शन होते हैं। जिस प्रकार हरिकेशबल का चाण्डाल कुल में जन्म और बीभत्स शरीर, अष्टावक्र के शरीर की वक्रता एवं सनत्कुमार चक्रवर्ती की सुन्दरता, यह सब नाम कर्म के उदय का ही परिणाम है।

1040. नाम कर्म भोगने के कितने हेतु हैं?

उ. नाम कर्म भोगने के अट्ठाईस हेतु हैं—

* शुभ नाम कर्म के उदय से जीव शारीरिक एवं वाचिक उत्कर्ष पाता है। इसके अनुभाव चौदह हैं—(1) इष्ट शब्द, (2) इष्ट रूप, (3) इष्ट गंध, (4) इष्ट रस, (5) इष्ट स्पर्श, (6) इष्ट गति, (7) इष्ट स्थिति, (8) इष्ट लावण्य, (9) इष्ट यश:कीर्ति, (10) इष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, (11) इष्ट स्वरता, (12) कान्त स्वरता, (13) प्रिय स्वरता, (14) मनोज्ञ स्वरता।
* अशुभ नाम कर्म के उदय से जीव शारीरिक एवं वाचिक अपकर्ष पाता है। इसके अनुभाव चौदह हैं—(1) अनिष्ट शब्द, (2) अनिष्ट रूप, (3) अनिष्ट गंध, (4) अनिष्ट रस, (5) अनिष्ट स्पर्श, (6) अनिष्ट गति, (7) अनिष्ट स्थिति, (8) अनिष्ट लावण्य, (9) अनिष्ट यश:कीर्ति, (10) अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, (11) अनिष्ट स्वरता, (12) हीन स्वरता, (13) दीन स्वरता, (14) अकान्त स्वरता।

1041. नाम कर्म का बंध कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. पहले से दसवें गुणस्थान तक।

1042. नाम कर्म का उदय कौनसे गुणस्थान में रहता है?

उ. सभी गुणस्थानों में।

1043. नाम कर्म का उपशम और क्षयोपशम कौनसे गुणस्थान में होता है?

उ. नाम कर्म का उपशम एवं क्षयोपशम नहीं होता है।

1044. नाम कर्म का क्षय कौनसे गुणस्थान में होता है?

उ. नाम कर्म का क्षय गुणस्थानों में नहीं, सिद्धों में होता है।

गोत्र कर्म

गोत्र कर्म

1045. गोत्र कर्म किसे कहते हैं?

उ. गोत्र का अर्थ है—कुलक्रमागत आचरण।

1. जो पुद्गल आत्मा की प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा में निमित्त बनते हैं, वह है गोत्र कर्म।
2. जीव को अच्छी या बुरी दृष्टि से देखे जाने में निमित्त बनने वाला कर्म गोत्र कर्म है।

1046. गोत्र कर्म की उत्तर प्रकृतियां कितनी हैं?

उ. गोत्र कर्म की उत्तर प्रकृतियां दो हैं—

(1) उच्च गोत्र और (2) नीच गोत्र।

1047. गोत्र कर्म पुण्य रूप है अथवा पाप रूप हैं?

उ. उच्च गोत्र पुण्य रूप है और नीच गोत्र पाप रूप है।

1048. गोत्र कर्म बंध के कितने हेतु हैं?

उ. गोत्र कर्म बंध के आठ कारण हैं—

(1) जाति (2) कुल (3) बल (4) रूप
(5) तप (6) श्रुत (7) लाभ (8) ऐश्वर्य

इन आठ बातों का मद–(अहं) न करना उच्च गोत्र कर्म बंध का कारण है और इनका मद (अहं) करना नीच गोत्र कर्म बंध का कारण है।

1049. उच्च गोत्र कर्म भोगने के कितने हेतु हैं?

उ. उच्च गोत्र कर्म के उदय से जीव विशिष्ट बनता है उसके अनुभाव आठ हैं—

(1) जाति विशिष्टता (2) कुल विशिष्टता
(3) बल विशिष्टता (4) रूप विशिष्टता
(5) तप विशिष्टता (6) श्रुत विशिष्टता
(7) लाभ विशिष्टता (8) ऐश्वर्य विशिष्टता[1]

---

1. कथा सं. 37

1050. नीच गोत्र कर्म भोगने के कितने हेतु हैं?

उ. नीच गोत्र कर्म के उदय से जीव हीनता को प्राप्त होता है। आगम में नीच गोत्र कर्म के उपभेद और अनुभावों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

उपभेद	–	**अनुभाव**
1. जाति नीच गोत्र	–	जाति विहीनता-मातृपक्षीय विशिष्टता का अभाव।
2. कुल नीच गोत्र	–	कुल विहीनता-पितृपक्षीय विशिष्टता का अभाव।
3. बल नीच गोत्र	–	बल विहीनता
4. रूप नीच गोत्र	–	रूप विहीनता
5. तप नीच गोत्र	–	तप विहीनता
6. श्रुत नीच गोत्र	–	श्रुत विहीनता
7. लाभ नीच गोत्र	–	लाभ विहीनता
8. ऐश्वर्य नीच गोत्र	–	ऐश्वर्य विहीनता।[1]

नीच गोत्र कर्म के उदय से मनुष्य को अपमान, दीनता, अवहेलना आदि का अनुभव होता है।

1051. उच्च गोत्र कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव को उच्च कुल आदि विशिष्टता प्राप्त होती है उसे उच्च गोत्र कर्म कहते हैं। उच्च गोत्र कर्म देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार ऐश्वर्य आदि विषयक उत्कर्ष का निर्वर्तक होता है।

1052. नीच गोत्र कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव को नीच कुल आदि हीनता प्राप्त होती है उसे नीच गोत्र कर्म कहते हैं। नीच गोत्र कर्म चाण्डाल नट, व्याध, धीवर, दास्यादि भावों का निर्वर्तक है।

1053. गोत्र कर्म की स्थिति कितनी है?

उ. जघन्य आठ-मुहूर्त, उत्कृष्ट बीस करोड़ाकरोड़ सागर।

1054. गोत्र कर्म का अबाधाकाल कितना है?

उ. जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट दो हजार वर्ष।

---

1. कथा सं. 38

1055. गोत्र कर्म का लक्षण एवं कार्य क्या है?

उ. गोत्र कर्म कुम्भकार के समान है। कुम्भकार जैसे—छोटे-बड़े कलश और मद्यघट, लोकपूज्य अथवा लोकनिन्द्य मन चाहे घड़ों का निर्माण करता है वैसे ही यह कर्म जीव के व्यक्तित्व को श्लाध्य-अश्लाध्य बनाता है। इस कर्म के उदय से जीव उच्च-नीच बनता है।

1056. गोत्र कर्म का उदय कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. पहले से चौदहवें गुणस्थान तक।

1057. गोत्र कर्म का बंध कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. पहले से दसवें गुणस्थान तक।

1058. गोत्र कर्म का उपशम और क्षयोपशम कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. गोत्र कर्म का उपशम और क्षयोपशम नहीं होता।

1059. गोत्र कर्म का क्षायिक भाव कौनसे गुणस्थान में होता है?

उ. गोत्र कर्म का क्षायिक भाव गुणस्थानों में नहीं सिद्धों में होता है।

1060. वंदना करता हुआ जीव कौनसे कर्म का बंध और क्षय करता है?

उ. वंदना करना हुआ जीव उच्च गोत्र कर्म का बंध और नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है।

1061. गोत्र कर्म बंध के आठ मदों को घटित करने वाले उदाहरण बताइये?

उ. 1. जाति मद – राजपुत्र-पुरोहित पुत्र-कर्मसंहिता हरिकेशबल मुनि
2. कुलमद – भ. महावीर का जीव मरीचि के भव में
3. बलमद – राजा श्रेणिक द्वारा-एक तीर में गर्भवती हिरणी को मारना
4. रूपमद – सनत्कुमार चक्रवर्ती
5. लाभ मद – सुभूय चक्रवर्ती
6. श्रुत मद – स्थूलिभद्र
7. ऐश्वर्य मद– मम्मण सेठ

अन्तराय कर्म

अन्तराय कर्म

1062. अन्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उ. अन्तराय का अर्थ है बीच में उपस्थित होना, विघ्न करना, व्याघात करना। जो कर्म क्रिया, लब्धि, भोग और बलस्फोटन करने में अवरोध उपस्थित करे उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

1063. अन्तराय कर्म की उत्तर प्रकृतियां कितनी हैं?

उ. पांच–(1) दान-अन्तराय कर्म, (2) लाभ-अन्तराय कर्म, (3) भोग-अन्तराय कर्म, (4) उपभोग-अन्तराय कर्म, (5) वीर्य-अन्तराय कर्म।[1]

1064. दान किसे कहते हैं?

उ. अपने, पराये अथवा दोनों के उपकार के लिए देना दान है।

1065. दान के कितने प्रकार हैं?

उ. दान के दो प्रकार हैं—

(1) व्यावहारिक (2) पारमार्थिक

अथवा

(1) लौकिक (2) लोकोत्तर

1066. लौकिक व लोकोत्तर दान किसे कहते हैं?

उ. सांसारिक प्रवृत्ति चलाने व असंयमी के पोषण के लिए दान देने को लौकिक दान कहते हैं। जो दान संयमी के विकास में सहायक होता है, उसे लोकोत्तर दान कहते हैं।

1067. स्थानांग सूत्र में दान के कितने प्रकार बताए गए हैं?

उ. स्थानांग सूत्र में दान के दस प्रकार बताए गए हैं—

(1) अनुकम्पा दान – करुणा से देना।
(2) संग्रह दान – सहायता के लिए देना।
(3) भय दान – भय से देना।
(4) कारुण्य दान – मृतक के पीछे देना।

---

1. श्रीपाल मैनासुन्दरी के कथानक में सुरसुन्दरी का प्रसंग, कथा सं. 23

(5) लज्जा दान – लज्जावश देना।

(6) गौरव दान – गर्वपूर्वक देना।

(7) अधर्म दान – हिंसा आदि पापों में आसक्त व्यक्तियों को देना।

(8) धर्म दान – संयमी को देना।

(9) करिष्यति दान – अमुक आगे सहयोग करेगा, इसलिए दान देना।

(10) कृतमिति दान – अमुक ने सहयोग किया था, इसलिए उसे देना।

1068. दस दान में लौकिक व लोकोत्तर कितने?

उ. धर्मदान लोकोत्तर व शेष नौ दान लौकिक हैं।

1069. दान-अन्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म का उदय दान देने में विघ्नकारी होता है, जो कर्म दान नहीं देने देता एवं दान की भावना भी पैदा नहीं होने देता वह दानान्तराय कर्म है।

मनुष्य सुपात्र दान देने में पुण्य जानता है, प्रासुक-एषणीय वस्तु भी पास में होती है, सुपात्र/संयमी-साधु भी उपस्थित है। इस प्रकार के सारे संयोग होने पर भी जिस कर्म के उदय से जीव दान नहीं दे पाता, वह दान अन्तराय कर्म है।

1070. लाभ-अन्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उ. लाभ-अन्तराय कर्म वस्तुओं की प्राप्ति में बाधक होता है। जिस कर्म के उदय से जीव के शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श आदि के लाभ एवं ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि के लाभ में विघ्न उपस्थित होता है, वह लाभ-अन्तराय कर्म है।

भगवान ऋषभदेव को तेरह मास, दस दिन तक प्रासुक-एषणीय आहार नहीं मिला और द्वारिका जैसी नगरी में 6 मास तक घूमते रहने पर भी ढंढ़ण मुनि[1] को भिक्षा नहीं मिली। यह लाभ-अन्तराय कर्म का उदय था।

1071. भोग-अन्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उ. भोग-अन्तराय कर्म–जो वस्तु एक बार ही भोगी जा सके उसे भोग कहते है। जैसे खाद्य-पेय आदि। जो कर्म भोग्य वस्तुओं के होने पर भी उन्हें भोगने नहीं देता उसे भोगान्तराय कर्म कहते हैं। शरीर में व्याधि होने पर सरस भोजन नहीं खाया जा सकता यह भोगान्तराय कर्म का उदय है।

---

1. कथा संख्या 39

1072. उपभोग अन्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उ. उपभोग—जो वस्तु बार-बार भोगी जा सके उसे उपभोग कहते हैं, जैसे–मकान, वस्त्र आदि। जो कर्म उपभोग में आने वाली वस्तुओं के होने पर भी उन्हें भोगने नहीं देता उसे उपभोग-अन्तराय कर्म कहते हैं। वस्त्र, आभूषण होने पर भी वैधव्य के कारण उसका उपभोग न कर सकना उपभोग अन्तराय कर्म का उदय है।

मम्मण सेठ के पास अपार सम्पत्ति प्राप्त थी परन्तु उपभोग-अन्तराय कर्म के उदय के कारण वह अपनी सम्पत्ति का उपभोग नहीं कर सका।[1]

1073. वीर्यान्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उ. वीर्य—एक प्रकार की शक्ति विशेष है। संसारी जीव में सत्तारूप अनन्तवीर्य होता है। जो कर्म आत्मा के वीर्य गुण का अवरोधक होता है उसे वीर्यान्तराय कर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय से अल्प-आयुष्यवाला युवा भी अल्प-प्राणवाला होता है, उसे वीर्यान्तराय कर्म कहते हैं।

जो कर्म जीव के सत्तारूप शारीरिक और आत्मिक शक्ति के प्रकटीकरण में अवरोध उपस्थित करता है, वह वीर्यान्तराय कर्म है।

1074. वीर्य के कितने प्रकार हैं?

उ. वीर्य के तीन प्रकार हैं—

(1) बाल वीर्य—जिसके अंश मात्र भी त्याग प्रत्याख्यान नहीं है, जो अव्रती होता है, उस बाल का वीर्य बाल-वीर्य कहलाता है।

(2) पण्डित वीर्य—जो सर्वव्रती होता है, उस पण्डित का वीर्य पण्डित-वीर्य कहलाता है।

(3) बाल-पंडित वीर्य—जो कुछ अंश में त्यागी है और कुछ अंश में अत्यागी है उस बाल-पण्डित का वीर्य बाल-पण्डित वीर्य कहलाता है।

1075. वीर्यान्तराय कर्म से क्या होता है?

उ. वीर्यान्तराय कर्म उपरोक्त तीनों प्रकार के वीर्यों का अवरोध करता है। इस कर्म के प्रभाव से जीव के उत्थान-चेष्टा विशेष, कर्म-भ्रमणादि क्रिया, बाल-शारीरिक सामर्थ्य, वीर्य-जीव से प्रभव शक्ति विशेष, पुरुषकार-अभिमान विशेष और पराक्रम-अभिमान विशेष को पूरा करने का प्रयत्न विशेष—ये क्षीण, हीन होते हैं।

---

1. कथा संख्या 40

1076. स्थानांग सूत्र में अन्तराय कर्म के दो भेद कौन-कौनसे बताए गए हैं?

उ. (1) प्रत्युत्पन्न विनाशी अन्तराय कर्म, जिसके उदय से लब्ध वस्तुओं का विनाश हो।

(2) पिहित आगामी पथ अन्तराय कर्म, लभ्य वस्तु के आगामी पथ यानी लाभ मार्ग का अवरोध।

1077. अन्तराय कर्म बंध के कितने कारण हैं?

उ. (1) दान, (2) लाभ, (3) भोग, (4) उपभोग, (5) वीर्य (जीव का सामर्थ्य)।

इन सब में कारण, बिना कारण विघ्न डालना अन्तराय कर्म बंध का हेतु है।

1078. अन्तराय कर्म स्थिति कितनी है?

उ. जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 30 करोड़ाकरोड़ सागर।

1079. अन्तराय कर्म का अबाधाकाल कितना है?

उ. जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

1080. अन्तराय कर्म का लक्षण एवं कार्य क्या है?

उ. अन्तराय कर्म कोषाध्यक्ष के समान है। अधिकारी द्वारा आदेश प्राप्त होने पर भी कोषाध्यक्ष के दिये बिना वांछित वस्तु नहीं मिलती उसी प्रकार सब वस्तुएं एवं अनुकूलताएं सुलभ होने पर भी अन्तराय कर्म के दूर हुए बिना उनका भोग नहीं हो सकता।

1081. अन्तराय कर्म भोगने के कितने हेतु हैं?

उ. अन्तराय कर्म के उदय से आत्मशक्ति का प्रतिघात होता है।

इनके अनुभाव पांच हैं—

(1) दानान्तराय, (2) लाभान्तराय, (3) भोगान्तराय,

(4) उपभोगान्तराय, (5) वीर्यान्तराय[1]।

1082. अन्तराय कर्म का उदय कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. पहले से बारहवें गुणस्थान तक।

1083. अन्तराय कर्म का बंध कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. पहले से दसवें गुणस्थान तक।

---

1. कथा संख्या 41

1084. अन्तराय कर्म का क्षयोपशम कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. पहले से बारहवें गुणस्थान तक।

1085. अन्तराय कर्म का उपशम कौनसे गुणस्थान तक होता है?

उ. अन्तराय कर्म का उपशम नहीं होता।

1086. अन्तराय कर्म का क्षय कौनसे गुणस्थानों में होता है?

उ. अन्तराय कर्म का क्षय तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान एवं सिद्धों में होता है।

1087. दानान्तराय कर्म के क्षयोपशम से किस-किस ने उत्कृष्ट भोग से दान देकर पुण्य का अर्जन किया था?

उ. सुख-विपाक की सारी घटनाएं दानान्तराय कर्म के क्षयोपशम से सम्बन्धित है। जैसे—कयवन्ना का कथानक भी प्रसिद्ध है।

परिशिष्ट

कहानियां

(1)

क्षितिप्रतिष्ठित नगर में दो भाई रहते थे—अर्हन्नक और अर्हन्मित्र। बड़े भाई की पत्नी छोटे भाई में अनुरक्त हो गई। छोटा भाई उसको नहीं चाहता था। वह उसे पीड़ित करने लगी। तब उसने कहा—'क्या तुम मेरे भाई को नहीं देखती?' उसने अपने पति अर्हन्नक को मार डाला फिर अर्हन्मित्र से बोली—'क्या अब भी तुम मुझे नहीं चाहोगे? अर्हन्मित्र के मन में इस स्थिति से विरक्ति उत्पन्न हुई और प्रव्रजित हो गया। वह भी आर्तध्यान से मरकर कुतिया बनी। साधु उस गांव में गए, जहाँ वह कुतिया उत्पन्न हुई थी। कुतिया ने मुनि को देखा। वह उसके पीछे लग गई और बार-बार उसका आश्लेष करने लगी। 'यह उपसर्ग है'—ऐसा सोचकर मुनि रात्रि में वहां से विहार कर गए। वह कुतिया मरकर अटवी में बंदरी बनी। एक बार वे मुनि कर्मधर्म संयोग से उसी अटवी के मध्य से गुजर रहे थे। बंदरी ने मुनि को देखा और उनके कंठों से चिपक गई। मुनि बड़ी मुश्किल से छुटकारा पाकर पलायन कर गए। वहाँ से मरकर वह बंदरी यक्षिणी हुई। उसने अपने अवधिज्ञान से देखा पर वह मुनि के छिद्र नहीं खोज पाई क्योंकि मुनि अप्रमत्त थे। वह पूर्णरूप से मुनि के छिद्र देखने लगी।

काल बीतने पर मुनि के समवयस्क श्रमणों ने उससे कहा—'अर्हन्मित्र! धन्य हो तुम, क्योंकि तुम कुतिया और बंदरी के प्रिय हो। एक बार वह मुनि गड्ढे को पार कर रहा था। उसमें 'पादविष्कम्भक' जितना पानी था। उसने पानी को पार करने के लिए पैर पसारे। गतिभेद हुआ तब यक्षिणी ने छिद्र देखकर उसका ऊरु तोड़ डाला। कहीं मैं पानी में गिरकर अप्काय की विराधना न कर डालूं—यह सोचकर मिथ्यादुष्कृत कहता हुआ मुनि जमीन पर गिर पड़ा। सम्यग्दृष्टि वाली किसी दूसरी यक्षिणी ने उस पूर्व यक्षिणी को डांटा और देवप्रभाव से मुनि का ऊरु पुनः उसी स्थान पर जुड़ गया।

❑ ❑ ❑

(2)

अग्निशर्मा तापस और गुणसेन राजा दोनों बाल मित्र थे। राजा गुणसेन ने अग्निशर्मा तापस को तीन बार मासखमण तप के पारणे का निमंत्रण दिया किन्तु हर बार गुणसेन राजा अपनी राज्य-व्यवस्था की व्यस्तता के कारण पारणे का दिन भूलता रहा और अग्निशर्मा तापस हर बार निराश होकर लौटता रहा। अग्निशर्मा

तापस का मासखमण तप का पारणा तीन-तीन बार टल जाने से वे कुपित हो गए। तीव्र आवेश के कारण अग्निशर्मा ने गुणसेन के प्रति द्वेष की गांठ बांध ली। राजा गुणसेन से वैर का बदला लेने हेतु अग्निशर्मा तापस ने गुणसेन राजा को मारने का निदान किया। इस प्रकार प्रत्येक जन्म में द्वेषवृत्ति से निदान करके अग्निशर्मा का जीव गुणसेन के जीव को मारता रहा। मुनि-हत्या के महापाप का भार ढ़ोता हुआ अग्निशर्मा का जीव अनेक जन्मों तक दुर्गति में परिभ्रमण करता रहा किन्तु गुणसेन का जीव प्रत्येक जन्म में क्षमा, समता व संयम रखकर अग्निशर्मा के द्वारा दिये गए उपसर्गों को सहता रहा। इस उत्कृष्ट साधना के फलस्वरूप नौवें भव में गुणसेन का जीव समरादित्य के रूप में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। यह नौ जन्मों की तीव्र द्वेष परम्परा का फल है।

❑ ❑ ❑

(3)

नंद नामक नाविक लोगों को गंगा नदी के आर-पार पहुंचाता था। एक बार धर्मरुचि अनगार नाव में बैठकर गए। तर आने पर अन्यान्य लोग नाविक को भृति (मूल्य) देकर चले गए। अनगार बिना मूल्य दिये जाने लगे। नाविक ने उन्हें रोक लिया। उस गांव की भिक्षा-वेला अतिक्रांत हो गई। फिर भी नाविक ने उन्हें मुक्त नहीं किया। उस तप्त बालू में वे मुनि भूखे-प्यासे खड़े थे। वे कुपित हो गये। मुनि दृष्टिविषलब्धि से सम्पन्न थे। नाविक की ओर दृष्टि जाते ही वह जलकर भस्म हो गया और मरकर एक सभा में छिपकली बना। संयोग से साधु भी विहार करते-करते उस गांव में पहुंचे। गांव में भिक्षा ग्रहण कर उस सभा में भोजन करने बैठे। छिपकली उसी कमरे की भित्ति पर थी। उसकी दृष्टि मुनि पर पड़ी। वह क्रोधारुग्ण हो गई। जब मुनि भोजन करने लगे, तब वह ऊपर से कचरा गिराने लगी। मुनि अन्यत्र जाकर बैठे। वहाँ भी उसने वैसा ही किया। मुनि स्थान बदलते रहे और वह भी वहाँ जाती रही। मुनि को भोजन करने का स्थान नहीं मिला। मुनि ने छिपकली की ओर देखा और सोचा—'अरे यह कौन है?' उन्हें याद आया यह तो पापी नाविक नंद है। मुनि ने अपनी दृष्टि से उसको जला डाला।

वह छिपकली मरकर मृतगंगा में हंस रूप में उत्पन्न हुई। एक बार मुनि माघ मास में सार्थ के साथ प्रातःकाल में उधर से निकले। हंस ने मुनि को देखा। वह अपने पंखों में पानी भरकर मुनि को सींचने लगा। वहाँ भी वह हंस जलकर सिंहयोनि में अंजनक पर्वत पर जन्मा। एक बार मुनि विचरण करते हुए वहाँ पधारे। मुनि को देखते ही सिंह उठा और पकड़ लिया। मुनि ने उसे जला डाला। वहाँ से मरकर वह

बनारस में एक बटुक बना। मुनि वहां भिक्षा के लिए घूम रहे थे। बच्चों के साथ बटुक भी मुनि को मारने लगा। मुनि ने रुष्ट होकर उस बटुक को जला डाला। वह बटुक मरकर वहीं का राजा बन गया। वह अपने पूर्वजन्म की स्मृति करने लगा। उसने अपने पूर्वभव के अशुभ जन्मों को देखा और सोचा यदि मैं अभी मारा जाऊंगा तो सबके द्वारा तिरस्कृत होऊंगा। इसलिए उसने अपने ज्ञान से एक समस्या प्रस्तुत करते हुए कहा—'जो इस समस्या की पूर्ति करेगा, उसे मैं आधा राज्य दूंगा।' वह समस्या थी—'गंगा नदी पर नाविक नंद, सभा में छिपकली, मृतगंगा के तट पर हंस, अंजनकपर्वत पर सिंह, बनारस में बटुक और वहीं राजा।' लोगों ने समस्या सुनी।

एक बार मुनि बनारस आये और उद्यान में ठहरे। उद्यानपालक भी यही समस्या बार-बार उच्चरित कर रहा था। मुनि के पूछने पर उसने सारी बात बता दी। मुनि बोला—'मैं इस समस्या की पूर्ति कर दूंगा।' मुनि ने कहा—'जो इन सबका घातक है वह यहीं आया हुआ है।' वह राजा के समक्ष गया और यही बात कही। बात को सुनकर राजा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। राजा के आरक्षक आरामिक को पकड़ कर मारने लगे। उसने कहा—'जिसने इसकी पूर्ति की है, उसे मारो, मैं इस संदर्भ में कुछ नहीं जानता। एक मुनि ने मुझे यह पूर्ति दी है। राजा की मूर्च्छा टूटी।' राजा ने पूछा—यह पूर्ति किसने की?' आरामिक बोला—'एक श्रमण ने।' राजा ने श्रमण के पास अपने आदमियों को भेजा और पूछा—आपकी अनुमति हो तो मैं आपको वंदना करने आऊं? मुनि ने अनुमति दी। राजा आया और अतीत की आलोचना कर श्रावक बना। मुनि पूर्वाचरित पापों का प्रायश्चित्त कर सिद्ध हो गए।

❑ ❑ ❑

(4)

बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि भगवान की राजीमती के साथ लगातार नौ जन्मों तक स्नेह-राग की परम्परा चली। प्रथम जन्म से ही दोनों का पति-पत्नी के रूप में तीव्र स्नेह-राग का सम्बन्ध जुड़ा हुआ था। तीव्र रागबंध के कारण सभी जन्मों में वे पति-पत्नी ही बनते रहे। इतना नहीं देवलोक में भी देव-देवी के रूप में साथ उत्पन्न हुए और वियोग भी दोनों का साथ-साथ हुआ। इस प्रकार बढ़ते हुए स्नेह राग के कारण वे नौवें जन्म में भी विवाह-संबंध से जुड़ने वाले थे। दोनों की सगाई हो चुकी थी। परन्तु विवाह होने से पूर्व नेमिनाथ प्रभु राग का बंधन तोड़कर विरक्त बन गए और वीतराग मार्ग पर आरूढ़ हो गये। अकस्मात् राग-बंधन टूटने से राजीमती आर्तध्यान करने लगी किन्तु कुछ देर बाद सम्यक् ज्ञान का प्रादुर्भाव होने से वह भी विरक्त होकर साधना करती हुई कर्मों से मुक्त हो गई। यही थी नौ जन्मों के स्नेह राग की भव परम्परा।

इसी प्रकार कहा जाता है शंख और कलावती का तीव्र स्नेह राग उन्हें इक्कीस जन्मों तक भाई-बहन के रूप में या पति-पत्नी के रूप में जोड़ता रहा।

❑ ❑ ❑

(5)

मणिरथ राजा अपने छोटे भाई युगबाहु की पत्नी मदनरेखा पर मोहित हो गया था। काम-राग की उसमें इतनी तीव्रता थी कि वह छोटे भाई को मारकर मदनरेखा को पाने के लिए लालायित हो उठा था। उसने युगबाहु की गर्दन पर विष बुझी तलवार से वार कर दिया। युगबाहु के मर जाने के बाद भी मणिरथ राजा मदनरेखा को नहीं पा सका। परन्तु तीव्र कामराग की वजह से उसका घोर कर्मबंध हुआ और अन्त में जहरीले सांप के काटने से वह मरणकाल को प्राप्त हो गया। वह मरकर नरक में पहुंचा और आगे भी अनेक जन्मों तक भटकता रहेगा।

❑ ❑ ❑

(6)

औत्पत्तिकी बुद्धि के लिए रोहक, अभयकुमार आदि प्रसिद्ध हैं।

उज्जयिनी नगरी से कुछ दूरी पर एक छोटा-सा गांव था, जहाँ नट लोग रहते थे। वहाँ भरत नाम का एक नट था, जिसके पुत्र का नाम था रोहक। रोहक उम्र में छोटा था, लेकिन बुद्धि का बेताज बादशाह था।

एक बार रोहक अपने पिता के साथ क्षिप्रा नदी के तट पर गया। पिता ने कहा, 'बेटा ! तू यहीं पर खेलना, मैं नगर में जाकर कुछ काम निपटाकर आता हूँ।'

रोहक नदी तट पर खेल रहा था। अचानक उसे एक कुतूहल जगा और उसने नदी के तट पर उज्जयिनी नगरी का नक्शा तैयार कर लिया। उसी समय उज्जयिनी नगरी का राजा घोड़े पर सवार होकर उसी मार्ग से जा रहा था। वह राजा जैसे ही नक्शे के पास आया, उस रोहक ने राजा को रोक लिया और बोला, 'यहाँ उज्जयिनी है—यह राजा का महल है—आप अपने घोड़े को दूर से ले जाओ। बालक के इस जवाब को सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ।

राजा ने सोचा, यह बालक बुद्धिशाली लगता है, अतः मेरे मंत्री पद के लिए योग्य है—फिर भी इसकी विशेष परीक्षा करनी चाहिए।

रोहक की बुद्धि का परीक्षण करने के लिए राजा ने गांव वालों के पास एक

मेढा भेजा और यह आज्ञा दी कि पन्द्रह दिन बाद इसे लौटा देना है, पर ध्यान रहे इस अवधि में उसका वजन कम या अधिक नहीं होना चाहिए।

राजा का यह आदेश पाकर ग्रामवासी चिंतातुर हो गये। ग्राम के बाहर एकत्रित हुए। रोहक को बुलाया। राजा के आदेश को सुनाया।

रोहक ने कहा—इसे खाने के लिए पर्याप्त चारा दो, पर इसको भेड़िये के पिंजरे के पास बांध दो। पर्याप्त चारा खाकर यह दुर्बल नहीं होगा और भेड़िये को देखकर बलवृद्धि को प्राप्त नहीं होगा। उन्होंने ऐसा ही किया। पन्द्रह दिन बाद राजा को मेढा लौटा दिया। राजा ने उसे तोला, पर मेढे के वजन में कोई अन्तर नहीं पाया। यह औत्पत्तिकी बुद्धि का उदाहरण है।

—आव. नि. 588/13

❑ ❑ ❑

(7)

वैनयिकी बुद्धि

एक नगर के राजा को यह ज्ञात हुआ कि शत्रु राजा नगर को घेरने के लिए सेना के साथ आ रहा है। राजा ने पानी के सारे साधनों को नष्ट करने के लिए पानी में विष डालने की योजना बनाई। उसने विष-वैद्यों को आमंत्रित किया। एक वैद्य चने जितना विष लेकर आया। यह देख राजा रुष्ट हो गया। वैद्य बोला—राजन्! यह शतसहस्रवेधी विष है। इससे लाखों-लाखों प्राणी मारे जा सकते हैं। राजा ने पूछा—इसका प्रमाण क्या है? वैद्य बोला—राजन्! कोई वृद्ध हाथी मंगाए। राजा के आदेश से एक अत्यन्त क्षीणकाय हाथी लाया गया। विष वैद्य ने उसकी पूंछ का एक बाल उखाड़ा और उसी बाल से उसमें विष संचरित कर दिया। उस विपन्न हाथी में वह विष फैलता हुआ दिखाई दिया और पूरा हाथी विषमय हो गया। वैद्य बोला—इस विष से यह हाथी भी विषमय हो गया है। जो व्यक्ति इसे खाएगा, वह भी विषमय हो जाएगा। यह इस विष का शतसहस्रवेधी होने का प्रमाण है। राजा ने पुनः पूछा—'क्या विष प्रतिकार का भी कोई उपाय है?' वैद्य बोला—हां है। वैद्य ने उसी बाल से वहीं एक औषधि का प्रक्षेप किया। हाथी स्वस्थ होकर चलने लगा। राजा वैद्य की वैनयिकी बुद्धि से प्रसन्न हो गया।

—आव. नि. 588/17

❑ ❑ ❑

(8)

कार्मिकी बुद्धि

एक बार एक चोर ने किसी सेठ के यहाँ पद्म के आकार की सेंध लगाई। प्रात:काल लोगों ने चोर के कला-चातुर्य की प्रशंसा की। वह चोर भी लोगों की प्रशंसा सुनने वहाँ आया। लोगों की प्रशंसा सुनकर एक किसान बोला—'अभ्यास कर लेने पर कुछ भी दुष्कर नहीं होता।' चोर ने जब यह बात सुनी तो आग-बबूला हो गया। चोर ने लोगों से उसका परिचय पूछा। एक दिन उसको खेत में खड़ा देखकर वह उसके पास आया और बोला—'मैं तुम्हें अभी अपनी छूरी से मारता हूँ।' किसान ने इसका कारण पूछा तो चोर बोला—'उस दिन तुमने मेरे द्वारा लगाई गई सेंध की प्रशंसा नहीं की थी।' उसकी बात सुनकर किसान बोला—'मैंने ठीक ही तो कहा था कि जो जिस विषय का अभ्यास कर लेता है, वह उसमें प्रकर्ष प्राप्त कर लेता है। तुम मेरा कौशल देखो।' किसान ने भूमि पर एक वस्त्र बिछाया और मुट्ठी में मूंग लेकर बोला—'यदि तुम कहो तो मैं इन सबको अधोमुख गिरा हूं, यदि कहो तो ऊर्ध्वमुख या तिरछा गिरा दूं।' चोर के कहने पर उसने मूंगों को अधोमुख गिराया। तस्कर बहुत विस्मित और प्रसन्न हुआ और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसका क्रोध उपशान्त हो गया। पद्माकार सेंध लगाना चोर की तथा मूंग को अधोमुख गिराना किसान की कर्मजा बुद्धि थी।

आव. नि. 588/20

❑ ❑ ❑

(9)

पारिणामिकी बुद्धि

नंदीषेण महाराज श्रेणिक का पुत्र था। उसका अनेक लावण्यवती कन्याओं के साथ विवाह हुआ। एक बार विरक्त होकर वह भगवान महावीर के पास मुनि बन गया। उसका एक शिष्य संयम को छोड़कर गृहवास में जाने के लिए उत्सुक हो गया। नंदीषेण ने सोचा—'यदि भगवान राजगृह में समवसृत हो तो अस्थिर मुनि रानियों को तथा अन्य अतिशायी वस्तुओं को देखकर स्थिर हो सकता है।' यह सोचकर नंदीषेण राजगृह गए। भगवान भी वहाँ पधार गए। महाराज श्रेणिक अपने अन्त:पुर के साथ भगवान के दर्शन करने निकला। अन्य कुमार भी अपने-अपने

अन्त:पुर के साथ प्रस्थित हुए। नंदीषेण का अन्त:पुर श्वेत परिधान में था। वह पद्म सरोवर के मध्य हंसिनियों की भांति अत्यन्त शोभित हो रहा था। सभी रानियां सुअलंकृत थीं। वे अन्यान्य अन्त:पुर की रानियों की शोभा को हरण कर रही थीं। अस्थिरमना मुनि ने उन्हें देखकर सोचा—मेरे पूज्य आचार्य नंदिषेण ने इतना सुन्दर अन्त:पुर छोड़ा है। हतभाग्य मैंने तो ऐसा कुछ भी नहीं छोड़ा है फिर मैं भोग के लिए गृहवास में क्यों जाऊं? यह चिंतन कर वह निर्वेद को प्राप्त हुआ और आलोचन-प्रतिक्रमण कर संयम में स्थिर हो गया। यह नंदीषेण और साधु दोनों की पारिणामिकी बुद्धि है।

आवनि 588/22

❑ ❑ ❑

(10)

वल्कलचीरी (सनिमित्तक) जाति-स्मृति

राजा सोमचन्द्र और रानी धारिणी ने दिशाप्रोक्षित तापस के रूप में दीक्षा ग्रहण की। वे एक आश्रम में रहने लगे। दीक्षित होते समय रानी गर्भवती थी। समय पूरा होने पर रानी ने एक बालक को जन्म दिया। उसे वल्कल में रखने के कारण बालक का नाम वल्कलचीरी रखा।

कुछ वर्ष बीते। एक दिन कुमार वल्कलचीरी उटज में यह देखने के लिए गया कि राजर्षि पिता के उपकरण किस स्थिति में है? वहाँ वह अपने उत्तरीये के पल्ले से उनकी प्रतिलेखना करने लगा। अन्यान्य उपकरणों की प्रतिलेखना कर चुकने के बाद ज्योंही वह पात्र-केसरिका की प्रतिलेखना करने लगा तो प्रतिलेखना करते-करते उसने सोचा—'मैंने ऐसी क्रियायें पहले भी की हैं।' वह विधि का अनुस्मरण करने लगा। तदावरणीय कर्मों का क्षयोपशम होने पर उसे जाति-स्मृति ज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे देवभव, मनुष्यभव तथा पूर्वाचरित श्रामण्य की स्मृति हो आई। इस स्मृति से उसका वैराग्य बढ़ा। धर्मध्यान से अतीत हो, विशुद्ध परिणामों में बढ़ता हुआ, शुक्लध्यान की दूसरी भूमिका का अतिक्रमण कर विकारों, आवरणों और अवरोधों को नष्ट कर वह केवली हो गया।

आवश्यक चूर्णि 1 पृ. 455-460

❑ ❑ ❑

(11)

स्वाध्याय में काल और अकाल का विवेक

एक मुनि कालिक श्रुत का स्वाध्याय कर रहा था। रात्रि का पहला प्रहर बीत गया, उसे इसका भान नहीं रहा। वह स्वाध्याय करता ही रहा। एक सम्यक् दृष्टि देवता ने यह जाना। उसने सोचा—यह मुनि अकाल में स्वाध्याय कर रहा है। कोई नीच जाति का देवता इसको ठग न ले, इसलिए उसने छाछ बेचने का स्वांग रचा। छाछ लो, छाछ लो।' यह कहता हुआ वह उस मार्ग से निकला। वह बार-बार उस मुनि के उपाश्रय के पास आता जाता रहा। मुनि ने 'मन ही मन' वह छाछ बेचने वाला मेरे स्वाध्याय में बाधा डाल रहा है। यह सोचकर उसने कहा—अरे! अज्ञानी! क्या यह छाछ बेचने का समय है? समय की ओर ध्यान दो। तब उसने कहा—मुनि प्रवर ! क्या यह कालिक श्रुत का स्वाध्याय काल है? मुनि ने यह बात सुनी और सोचा—यह कालिक श्रुत का स्वाध्याय काल नहीं है। आधी रात बीत चुकी है। मुनि ने प्रायश्चित्त स्वरूप 'मिच्छा मि दुक्कड़ं' का उच्चारण किया। देवता बोला, फिर ऐसा मत करना। अन्यथा तुच्छ देवता से ठगे जाओगे। अच्छा है स्वाध्याय काल में ही स्वाध्याय करो, न कि अस्वाध्याय काल में।

—आवश्यक निर्युक्ति—118

❑ ❑ ❑

(12)

विभंग ज्ञान शिव राजर्षि

हस्तिनापुर नगर में शिव नामक राजा था। उसकी पत्नि का नाम धारिणी तथा पुत्र का नाम शिवभद्र था। राज्य की धुरा वहन करते हुए शिवराजा के मन में एक संकल्प उभरा—'मेरे पूर्वजन्म के सुचीर्ण कर्मों का फल है, जिसके कारण मेरे भण्डार में सोना, चांदी तथा धनधान्य आदि बढ़ रहे हैं इसलिए अब मुझे पुनः पुण्यकर्म करना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने दूसरे दिन विपुल भोजन बनवाया। लोगों को भोजन करवा कर दान दिया और अत्यधिक समृद्धि व उत्सव के साथ शिवभद्र का राज्याभिषेक किया। फिर ताम्रमय तापस भाण्डों को बनवाकर उन्हें लेकर दिशात्प्रोक्षित तापस बन गया। यावज्जीवन बेले-बेले की तपस्या में दोनों हाथ ऊपर उठाकर सूर्य की आतापना लेते हुए वह विहरण करने लगा। वह प्रथम बेले के पारणे के दिन

आतापन भूमि से उतरकर, वल्कल वस्त्रों को पहनकर, तांबे के बर्तनों को ग्रहणकर पूर्व-दिशा की प्रेक्षा करता था। प्रेक्षा करके वह बोलता—'पूर्व दिशा में प्रस्थान प्रस्थित शिवराजर्षि की रक्षा करें। वहाँ जो हरियाली आदि है, उनकी आज्ञा दें। ऐसा कहकर पूर्व दिशा में नीचे पड़े हुए कंद आदि को ग्रहण करता, उपलेपन सम्मार्जन आदि करता, स्वच्छ जल ग्रहण करके दर्भ और वालुका से वेदिका की रचना करता, उसमें समीधा, काष्ठ आदि डालता, मधु-घृत आदि से अग्नि प्रज्ज्वलित करता, फिर अतिथि पूजा करके स्वयं आहार ग्रहण करता। इसी प्रकार दूसरे बेले के पारणे में दक्षिण दिशा की प्रेक्षा करता और यम महाराज की आज्ञा लेता। तीसरे बेले के पारणे में पश्चिम दिशा की प्रेक्षा कर वरुण महाराज की आज्ञा ग्रहण करता। चौथे बेले के पारणे में उत्तर दिशा की प्रेक्षा करते हुए वैश्रमण महाराज की आज्ञा लेता। इस प्रकार बेले-बेले की तपस्या में दिशाचक्रवाल तपःकर्म के साथ सूर्याभिमुख होकर आतापना लेने से उसके तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से विभंग अज्ञान उत्पन्न हो गया। वह शिवराजर्षि हस्तिनापुर के लोगों को कहता कि इस लोक में सात द्वीप एवं सात समुद्र हैं, इसके आगे द्वीप एवं समुद्र नहीं है।

उस समय भगवान महावीर हस्तिनापुर में समवसृत हुए। भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए गौतम स्वामी ने अनेक लोगों के मुख से यह बात सुनी। इस संदर्भ में गौतम स्वामी ने अपना संशय भगवान के सामने रखा। देवता और मनुष्यों की सभा में भगवान् महावीर ने कहा—'गौतम ! जो शिवराजर्षि ने कहा है, वह मिथ्या है। इस तिर्यक् लोक में जंबूद्वीप आदि असंख्येय द्वीप तथा लवणसमुद्र आदि असंख्येय समुद्र हैं।' यह बात सुनकर परिषद् प्रसन्न होकर भगवान को वंदना कर वापस चली गई। लोगों ने भगवान महावीर की बात सुनकर उसके मन में शंका उत्पन्न हो गई और उसका विभंग अज्ञान पतित हो गया। उसने मन में सोचा—भगवान् महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, वे सहस्राम्बा वन में विहरण कर रहे हैं। मैं जाऊं और भगवान् को वंदना करूं, यह इहलोक और परलोक के लिए हितकर होगा।' ऐसा सोचकर यह सब भंडोपकरण लेकर भगवान् महावीर के पास गया और वंदना-नमस्कार किया। भगवान् से धर्म देशना सुनकर उसे परम संवेग उत्पन्न हो गया। ईशानकोण की ओर अभिमुख होकर उसने तापस के उपकरण छोड़ दिये और स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया। फिर भगवान् के पास जाकर चारित्र स्वीकार किया और ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। विशुद्ध परिणामों में उसको केवलज्ञान की उत्पत्ति हो गई और वह सिद्ध बन गया।

—आव.नि. 547

❑ ❑ ❑

(13)

विशिष्ट ज्ञानी आचार्य कमलप्रभ शहर में पधारे। शहर के काफी लोग प्रवचन में गए। प्रवचन सुना। प्रवचनोपरान्त जनता ने आचार्य से जिज्ञासा की—गुरुदेव! आज राजकुमारी की शादी है। दो बारातें आयेगी, एक राजा के मित्र के यहाँ से और दूसरी रानी के मामा के यहाँ से। राजा की मनोभावना है कि मेरी बेटी राजकुमारी की शादी मेरे मित्र के बेटे के साथ हो और रानी की मनोभावना है कि राजकुमारी की शादी मेरे मामा के लड़के के साथ हो। आप ज्ञानी है, आप ही बताइए कि—राजकुमारी की शादी किसके साथ होगी?

आचार्य ने कहा—राजकुमारी की शादी दोनों में से किसी के साथ नहीं होगी। गुरुदेव! फिर किसके साथ होगी? आचार्य ने कहा—सामने फुटपाथ पर जो गरीब युवक सोया हुआ है उसके साथ होगी। लोगों को सुनकर आश्चर्य हुआ। सबने सोचा—जो होगा सो देखा जाएगा।

उसी प्रवचन सभा के मध्य एक वृक्ष पर भारण्डपक्षी बैठा हुआ था। उसने सारी बात सुनी। उसके मन में आया कि मुझे गुरु की बात को झूठा साबित करना है। वह सोये हुए उस गरीब युवक को चद्दर सहित अपने चोंच में उठाकर शहर से दूर जंगल में ले जाकर उसे छोड़ दिया। जैसे ही उस युवक की आंख खुली—वह गालियां देने लगा—अरे कौन पापी, दुष्टी है जिसने मुझे ऐसे जंगल में लाकर छोड़ दिया? सोचा था—आज राजकुमारी की शादी है—अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट पकवान खाऊंगा। पर सारी मन की बात मन में ही रह गई।

भारण्डपक्षी ने सोचा—अरे ! यह तो मुझे गालियां दे रहा है। मैं शहर में जाकर कुछ मिठाइयां लाकर इसे दे दूं। ताकि पेट भरने पर यह गालियां देना बंद कर देगा।

वह शहर में गया। राजमहल की छत पर काफी टोकरियां मिठाइयों से भरी हुई थीं। उसके बीच कमलकोश की आकृति वाली टोकरी में राजकुमारी को सजाकर, हाथ में माला देकर बिठाया हुआ था। उसे मां ने शिक्षा देते हुए कहा था बेटी! न मेरी बात मानना और न ही राजा की, जो पहले सामने आए उसके गले में ही यह वरमाला डाल देना। भाग्योदय से भारण्डपक्षी राजकुमारी वाली टोकरी को मिठाई की टोकरी समझकर उठाकर ले आया और उस युवक के पास रख दी। हुआ क्या? जैसे ही युवक ने मिठाई खाने के लिए टोकरी खोली तो अन्दर राजकुमारी थी। युवक ने सोचा—अरे, यह क्या? इसका मैं क्या करूं? मिठाई खाता तो पेट भरता। राजकुमारी माँ के निर्देशानुसार उस युवक के गले में वरमाला डालने लगी। युवक ने आना-कानी करते हुए कहा—देखो, मैं गरीब हूँ। मेरे पास न मकान है और न कोई पेटपूर्ति का साधन। मैं स्वयं भीख मांग-मांग कर पेट भरता हूँ। तुम्हारा पालन पोषण

मैं कैसे करूंगा? अत: तुम मेरे गले में वरमाला मत डालो। मुझे अपना पति स्वीकार मत करो। राजकुमारी ने कहा—गरीब हो या अमीर। माँ के निर्देशानुसार 'आप ही मेरे पति हो' कहते हुए उसने युवक के गले में वरमाला डाल दी।

इधर शहर में दोनों बारातें पहुंचीं। राजकुमारी नहीं मिलने पर बारातें खा-पीकर वापस लौट गई। राजा ने राजकुमारी को ढूंढ़ने के लिए चारों ओर कर्मचारियों को भेजा। तीन ओर से नकारात्मक जवाब मिला। चौथी ओर जाने वाले कर्मचारियों ने देखा कि एक युवक राजकुमारी का हाथ पकड़े हुए आ रहा हैं, राजा को सूचना दी। राजा ने उसको राजमहल में बुलाया। बुलाकर बेटी को एकान्त में समझाया। राजकुमारी ने कहा—पिताश्री ! मैंने जिसके गले में वरमाला डाल दी वही मेरा पति है, दूसरा और कोई नहीं।

यह सब कुछ भारण्डपक्षी ने अपनी आंखों से देखा। उसने सोचा—वास्तव में गुरुदेव की बात ही सच्ची हुई। भारण्डपक्षी आकर गुरुदेव के चरणों में नतमस्तक हो गया। उसने कहा—गुरुदेव! आप मुझे पहचानते हो, मैं कौन हूँ? मैं आपके सौ शिष्यों में से एक था। मैं मरकर तिर्यंच योनि में भारण्डपक्षी बना। मैं जब आपके शिष्य रूप में था तब आप जो कहते उसे मैं उलटा मानता। आप कहते दिन तो मैं कहता रात और आप कहते रात तो मैं कहता दिन। मैं आपके शिष्यत्व काल में आपका प्रत्यनीक बना रहा उसी कारण मैं मरकर तिर्यंच बना। फिर भी मैं नहीं संभला। आपकी बात को झूठी साबित करने के लिए मैं उस युवक को जंगल में छोड़ आया। परन्तु आप की बात ही सच्ची रही। गुरुदेव! मुझे माफ करें, अब मेरा कल्याण करें। गुरुदेव ने उसे प्रायश्चित्त देकर शुद्ध किया। उसने संथारा किया। पन्द्रह दिन के संथारे में मरकर वह आठवें देवलोक में गया।

❑ ❑ ❑

(14)

ज्ञानदाता का नाम छिपाना

एक गांव में एक नापित रहता था। वह अनेक विद्याओं का ज्ञाता था। उसके पास एक विद्या ऐसी थी जिसके प्रभाव से उसका 'क्षुरप्रभांड' (हजामत का सामान) आकाश मार्ग से साथ-साथ चलता था। उसे जहाँ हजामत करनी होती थी वह उस स्थान पर बैठ जाता और इशारा करने पर सामान नीचे आ जाता था। नापित का ऐसा करिश्मा देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे।

एक परिव्राजक उस विद्या को हस्तगत करना चाहता था। वह नापित की सेवा में रहा और विविध प्रकार से उसे प्रसन्न कर वह विद्या प्राप्त की। अब वह अपने विद्याबल से अपने त्रिदंड को आकाश में स्थिर रखने लगा। इस आश्चर्य से बड़े-बड़े लोग उस परिव्राजक की पूजा करने लगे। एक बार राजा ने पूछा—भगवन्! क्या यह आपका विद्या का अतिशय है या तप का अतिशय है? उसने कहा—यह विद्या का अतिशय है। राजा ने पुनः पूछा—आपने यह विद्या किससे प्राप्त की? परिव्राजक बोला—मैं हिमालय में साधना के लिए गया। यहाँ मैंने एक फलाहारी तपस्वी ऋषि की सेवा की और उनसे यह विद्या प्राप्त की। परिव्राजक के इतना कहते ही आकाशस्थित वह त्रिदंड भूमि पर आ गिरा। मंत्री ने राजा को बता दिया, इस परिव्राजक ने अपने ज्ञानदाता गुरु का नाम छिपाया है। अब इसकी विद्या नष्ट हो गई।

❑ ❑ ❑

(15)

ज्ञान बिल्व

राजा हर्षवर्धन के शासनकाल में कुणाला जनपद में परिव्राजक का भारी प्रभाव था। राज्य में उनके बहुत आश्रम थे। बाहर से भी परिव्राजक आते रहते थे। राजा स्वयं परिव्राजक भक्त था। उस समय कुणाला की राजधानी परिव्राजकों की भी राजधानी मानी जाती थी।

कुणाला के दो बड़े प्रभावशाली आश्रम थे—एक का नाम मूंजाश्रम था, जिसके कुलपति मंजुनाथ स्वामी थे। दूसरा था—चवर्णाश्रम, जिसके कुलपति विज्जूनाथ स्वामी थे। दोनों कुलपति अपने-अपने धर्मग्रन्थों के प्रकाण्ड विद्वान थे, मर्मज्ञ थे, अधिकृत वक्ता थे। दोनों के आश्रम में संन्यासियों की संख्या लगभग समान थी। दोनों अपने-अपने आश्रम की महत्ता बढ़ाने में अहर्निश प्रयत्नशील थे।

राजा हर्षवर्धन को अपने प्रभाव क्षेत्र में खींचने के लिए दोनों ओर से काफी प्रयत्न हो रहा था। सभी यह जानते थे—जिस पर राजा का झुकाव होगा, उस आश्रम का प्रभाव स्थायी रहेगा। दोनों को समान तुला पर रखते हुए राजा भी थक गया था। उसने सोचा—जिस आश्रम का कुलपति या संन्यासी प्रभावशाली हो, उसी आश्रम को राजकीय मान्यता प्राप्त आश्रम घोषित कर दिया जाये।

राजा ने दोनों कुलपतियों से सलाह-मशविरा करके एक वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया। जिसका विषय था—'क्षणिकवाद या कूटस्थ नित्यवाद।' विवेचन के लिए दोनों को आधा-आधा घण्टे का समय दिया गया। यथासमय दोनों कुलपति अपने-अपने शिष्य समुदाय के साथ पहुंचे और भद्रासन पर बैठ गये। राजा, मंत्री आदि विशिष्ट व्यक्ति भी मंच पर बैठ गये।

मंच के मध्य में तीन भद्रासन लगे हुए थे। दो बराबर, जिन पर दोनों कुलपति बैठे थे। मध्य में ऊंचा भद्रासन था। जो इस प्रतियोगिता में विजयश्री वरेगा, वह इस भद्रासन पर बैठकर प्रवचन करेगा। निर्णायक मण्डल में उपाध्यायजी, महामंत्री एवं राजपुरोहित थे। तीनों ही मनस्वी, धार्मिक और तटस्थ मनोवृत्ति वाले व्यक्ति थे।

पहले कौन बोले? इसके लिए चिट्ठी का सहारा लिया गया। जिसमें चवर्णाश्रम के कुलपति विज्जूनाथ स्वामी को बोलने का अवसर पहले मिला। उन्होंने विषय पर बोलना प्रारम्भ किया। सब कुछ जानते हुए भी वह सकपका गये, ज्ञान का स्रोत बंद हो गया, विचारों का प्रवाह रुक गया। आधा घण्टे के निर्धारित समय के विपरीत केवल बीस मिनट ही बोल सके, वह भी प्रभावहीन रहा।

अब मंजुनाथ स्वामी ने बोलना प्रारम्भ किया। उन्होंने विषय का सुन्दर प्रतिपादन किया। विषय जितना गंभीर था, विवेचन उतना ही सरल, सरस एवं प्रवाहपूर्ण था। प्रवचन सम्पन्न होते ही लोग जय-जयकार करने लगे। राजा ने मंजुनाथ स्वामी को विजयी घोषित किया।

मंजुनाथ ने ऊंचे भद्रासन पर बैठकर प्रवचन किया। राजा ने राज्य की ओर से उसे सम्मानित किया। स्वर्ण पालकी में बैठाकर आश्रम पहुंचाया। आश्रम में प्रसन्नता का वातावरण छा गया।

चवर्णाश्रम में मायूसी छा गई। आश्रम के संन्यासियों को भी कुलपतिजी के प्रभावहीन भाषण से भारी निराशा हुई। कुलपति को भी अपने पर बहुत ग्लानि हुई। अपने पद से त्यागपत्र देकर बात को ठंडा करना चाहा। आश्रम के कई संन्यासियों ने विज्जूनाथजी को पद न छोड़ने का आग्रह भी किया पर कुलपति सहमत नहीं हुए। आश्रम के ही एक युवा संन्यासी को कुलपति का भार सौंप दिया गया।

विज्जूनाथ स्वामी आश्रम की अनुमति लेकर तीर्थयात्रा पर निकले। तीर्थयात्रा तो एक बहाना था, उसे तो यह पता लगा था—मैं जानता हुआ भी समय पर अनजान कैसे हो गया? मेरा ज्ञान का स्रोत अचानक अवरूद्ध कैसे हो गया? इसके लिए वे विशिष्ट ज्ञानी की खोज कर रहे थे। घूमते-घूमते कलंजर आश्रम पहुंचे। विशिष्ट ज्ञानी के बारे में पूछने पर आश्रम के संन्यासियों ने कहा—यहाँ से दो योजन दूर बिजोली पर्वत है, वहाँ गणपति गुफा में मंगुनाथ स्वामी रहते हैं। वे केवल साधु-

संन्यासियों से ही मिलते हैं, गृहस्थों से नहीं। उन्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त है, आप उनके पास जाकर अपनी जिज्ञासा शांत कर सकते हैं।

दूसरे ही दिन विज्जूनाथजी बिजोली पहाड़ की गणपति गुफा में पहुंचे। मंगुनाथ स्वामी को उन्होंने साष्टांग दण्डवत् किया। उनकी आंखों से अश्रुधारा बह चली। मंगुनाथ स्वामी ने माला सहित हाथ ऊंचा किया और संबोधित करते हुए कहा—विज्जूनाथ! दुःख मत कर। कर्मों को भोगना अनिवार्य है।

गद्‌गद् स्वर में विज्जूनाथ ने पूछा—ब्रह्मर्षे! मैंने ऐसे क्या कर्म किये, जिससे मैं जानता हुआ भी अनजान बन गया?

माला को गले में डालते हुए बाबा ने कहा—विज्जूनाथ! पूर्व जन्म में भी तूं किंजल्प आश्रम में सर्वाधिक अवस्था प्राप्त संन्यासी विश्वनाथ नाम से प्रसिद्ध था। जब आश्रम के कुलपति ब्रह्मलीन हो गये तब कुलपति जैसे महिमामण्डित पद के लिए वहाँ खिंचाव शुरू हो गया था।

कुलपति पद के लिए मुख्य रूप से दो प्रतिद्वन्द्वी थे—प्रणवनाथ और अभयनाथ स्वामी। दोनों का आश्रम में समान प्रभाव था। आश्रम के सभी संन्यासियों ने यह तय किया—दोनों में जो विशिष्ट ज्ञानी हो उसे कुलपति बनाया जाए। इसका अन्तिम निर्णय विश्वनाथ बाबा पर छोड़ दिया। बाबा के निर्णय को आखिरी निर्णय मानने के लिए दोनों पक्ष राजी हो गए।

बाबा ने कुछ प्रश्न बनाए। दोनों को अलग-अलग बुलाकर प्रश्न पूछे। निर्णय देते वक्त बाबा ने पक्षपात कर लिया। विशिष्ट ज्ञानी प्रणवनाथ का नाम न लेकर अभयनाथ का नाम घोषित कर दिया, जिससे प्रणवनाथ इस पद से वंचित रह गया।

पक्षपातपूर्ण निर्णय देने से तथा ज्ञानी को कम ज्ञानी कहने से कर्मों का बंधन हुआ, उनके फलस्वरूप तूं जानता हुआ अनजान बन गया। ज्ञानावरोधक कर्मबंध के साथ अन्य कर्मों का बंधन हो गया, जिससे तुझे प्रभावहीन होकर कुलपति का पद भी छोड़ना पड़ा।

—कर्मलोकः
अवसर पर विस्मृति

❑ ❑ ❑

(16)

ज्ञान-प्राप्ति में विघ्न डालना

एक विधवा का इकलौता बालक अपनी बौद्धिक विलक्षणता से एक अध्यापक का कृपापात्र बन गया। अध्यापक भी उसे उदारतापूर्वक पढ़ाते थे और उसकी फीस माफ करवा देते थे। अध्यापक स्वयं उसे पाठ्य-पुस्तकें भी देते थे। यहाँ तक कि जिस विषय में वह बालक कमजोर था उस विषय को वे प्रतिदिन एक घण्टा उसे अधिक पढ़ाते थे।

बालक की सफलता और उन्नति पड़ौसी से देखी नहीं गई। उसने एक दिन मौका पाकर अध्यापक से कहा—"मास्टरजी ! आप जिस बालक को फ्री पढ़ाते हैं और जिसका हर दृष्टि से खयाल रखते हैं, उसकी माँ आपको बहुत भला-बुरा कहती है। वह हरदम यही कहती है, मास्टरजी पढ़ाई के बहाने मेरे बच्चे से अपने घर का काम करवाते हैं। उन्होंने तो मेरे बेटे को नौकर समझ रखा है। इस प्रकार प्रतिदिन मैं आपके लिए ऐसी अपमानपूर्ण बातें सुनकर थक गया हूँ पर आप कितने भले हैं जो दयाभाव से उसके बच्चे को पढ़ाते हैं।" पड़ौसी के इस प्रकार बहकाने से अध्यापकजी उसकी बातों में आ गये। उन्होंने दूसरे द्रिन से ही उसे पढ़ाना और सहायता देना बंद कर दिया। फलतः उस बालक की ज्ञान प्राप्ति में विघ्न उपस्थित हो गया। पड़ौसी ने ऐसा करके ज्ञानावरणीय कर्म का बंध कर लिया। इस प्रकार जो व्यक्ति किसी की ज्ञान साधना में बाधक बनते हैं, ज्ञान प्राप्ति के साधनों को समाप्त करने या बिगाड़ने का प्रयास करते हैं वे ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करते हैं।

❑ ❑ ❑

(17)

ज्ञानान्तराय

धारा नरेश जयबाहु के दो रानियां थीं—विजयवती और विनयवती। दोनों मामा-बुआ की बहनें थीं। दोनों के हृदय में पुत्र प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा थी। दोनों ज्येष्ठ पुत्र की माता बनने का स्वप्न देख रही थीं। दोनों की यह लालसा थी—मेरा

पुत्र राजा बने। राजा ने बहुत सूझबूझ से काम लिया। उसने यह घोषणा की—दोनों रानियों के प्रथम पुत्र को बड़ा माना जाएगा, पर युवराज उसी को बनाया जाएगा जो मेरी दृष्टि में योग्य होगा। इस घोषणा से बड़े राजकुमार की माँ बनने की महत्ता समाप्त हो गई।

संयोगवश दोनों रानियों के पुत्ररत्न जनमे। राजा ने दोनों का समान रूप से उत्सव मनाया और नाम दिया गया—विजयबाहु और विनयबाहु। दोनों के लालन-पालन की समुचित व्यवस्था की।

राजा चाहता था—दोनों पुत्रों के प्रति समान वत्सलता बनी रहे और दोनों पुत्रों के मन में इनके प्रति समान श्रद्धा का भाव जगे इसलिये दोनों पुत्रों को दोनों माताएं परस्पर में रखा करती थीं, किन्तु दोनों का मन सशंक रहता था। दोनों अपने पुत्र को ही राज सिंहासन पर बैठा हुआ देखना चाहती थीं।

महारानी विजयवती इस मामले में क्षुद्र मनोवृत्ति वाली थी। एक बार मध्यरात्रि में नींद टूट गई। महारानी का चिन्तन अपने पुत्र पर चला गया और सोचने लगी—अभी से कुछ प्रयत्न करूं, जिससे विजयबाहु आगे जाकर राजा बन जाए। इसके लिए विनयबाहु को निष्क्रिय बनाना होगा। अगर वह हर क्षेत्र में सक्रिय रहा, तो कांटे की स्पर्धा हो जाएगी। इसे अभी से मंदबुद्धि वाला बना दिया जाए, जिससे विजयबाहु के राजा बनने का मार्ग प्रशस्त हो जाए।

महारानी ने इसकी क्रियान्विति के लिए एक योजना बनाई। अगले दिन विनयबाहु को जो केवल ढाई वर्ष का था, अपनी गोद में लेकर खिलाते हुए अपने कक्ष में ले गई, वहाँ उसे अफीम मिलाकर दूध पिला दिया। फिर चुपचाप उसे उसकी माता की गोद में थमा दिया। आधा घण्टे के बाद बच्चे को नींद आने लगी। महारानी विनयवती ने उसे सुला दिया और स्वयं दूसरे कार्यों में प्रवृत्त हो गई।

धायमाता ने जब बच्चे के मुख में झाग देखा तो दंग रह गई और वह जोर से चिल्लाई। उस चिल्लाहट के साथ पूरा राजमहल इकट्ठा हो गया। पुत्र को मूर्च्छावस्था में देखकर राजा उद्विग्न हो उठा, फिर भी धैर्य से उपचार में लगा। राजकीय वैद्य आए। विभिन्न प्रकार के औषधि उपचारों से बच्चे को बारह घण्टों के बाद विषमुक्त बनाया और क्रमशः मूल स्थिति को राजकुमार ने प्राप्त किया।

राजा को रानी विजयवती के इस कुकृत्य का अनुमान लग गया, फिर भी खामोशी के साथ सब कुछ सहन कर चलने लगा। महारानी इस कार्य के बाद प्रायः अस्वस्थ रहने लगी। दोनों राजकुमार विद्यासम्पन्न बने, दोनों की धूमधाम से शादी हुई। शादी के कुछ दिनों बाद ही महारानी विजयवती चल बसी।

अपना आयुष्य पूर्णकर अमरावती के राजमहल में महारानी चित्रवती की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई। अतिशय रूपवती होने से अमरवाहन ने उसका नाम रूपमाला दिया। रूपमाला आठ वर्ष की हुई। पूर्व में किये हुए दुष्कर्म उदय में आये। एक दिन घूमने के लिए बगीचे में गई, बरसात का मौसम था, एक दिन पहले की मुसलाधार वर्षा से बगीचे की बावड़ी पूरी भरी हुयी थी। रूपमाला उस बावड़ी के किनारे-किनारे चल रही थी। अचानक किनारे की मिट्टी खिसकने से वह फिसल गई और भीतर चली गई। साथ चलने वाली सहेलियों ने शोर मचाया। तत्काल उद्यान के कर्मचारी दौड़ते हुए आए, उनमें कई तैराक भी थे, बावड़ी में कूदे उसे निकालकर बाहर ले आए।

राजा को यह सूचना मिलते ही महारानी तथा अन्य राजमहल के सदस्यों के साथ आया। रूपमाला को राजमहल में ले गये। उपचार चालू किया। काफी प्रयत्नों के बावजूद भी राजकन्या की मूर्च्छा नहीं टूट सकी, चेतना पुनः नहीं लौट सकी। मूर्च्छावस्था में उसको भोजन-पानी दिया जाता रहा।

राजा के मन में रूपमाला को विदुषी तथा संगीतज्ञ बनाने की उत्कृष्ट अभिलाषा थी, पर वह धरी ही रह गई। समय व्यतीत होता गया, उपचार चलता रहा, बारह वर्ष की प्रलम्ब अवधि के बाद कुछ चेतना लौटी। वह अपना नाम तथा माता-पिता को पहचानने लगी। उसको कपड़े पहनने तक का भान नहीं रहा और न किसी से बात कर सकती थी। केवल वह भूख और प्यास बुझाने के लिए इशारा कर सकती थी, परिवार के लिए केवल भार स्वरूप थी।

राजा स्वयं आश्चर्यचकित था, ऐसा क्यों हुआ है? किसी ने राजा को सुझाया—यदि अट्ठम तप (तीन दिन का उपवास) करके 'मनरूक् देव' की आराधना की जाए, तो सम्भव है—कुछ काम बन जाए।

राजा ने तेला किया। देव प्रकट हुआ। राजा ने रूपमाला के बारे में जानकारी दी तथा सहायता की प्रार्थना की।

मनरूक् देव ने गंभीर मुद्रा में कहा—राजन्! हम सहायक उसी के बनते हैं, जिसके पुण्य प्रबल हों। अगर पुण्य नहीं हो तो हम कुछ नहीं कर सकते। पुण्य तो व्यक्ति का अपना-अपना होता है। हम तो केवल निमित्त मात्र होते हैं। नये सिरे से हम कुछ नहीं कर सकते।

देव ने आगे कहा—तुम्हारी पुत्री रूपमाला ने पिछले जन्म में ऐसे कार्य किये थे, जिनको अब भोगना ही पड़ेगा। उसने अपनी सौत के लड़के विनयबाहु को बारह घण्टे तक मूर्च्छावस्था में रखा था, बाद में भी वह काफी समय तक अस्वस्थ बना रहा। उस समय के बंधे हुए कर्म अब अपना फल दिखा रहे हैं। बारह घण्टों के बदले

उसे बारह वर्ष तक मूर्च्छा में रहना पड़ेगा। राजन् ! हम इसके लिए कुछ भी कर पाने में असमर्थ हैं।

इतना कहकर देव अदृश्य हो गया। राजा अपनी पुत्री के अशुभ कर्मों के बारे में सोचता रहा।

—कर्मलोक : बौद्धिक विकलता

❑ ❑ ❑

(18)

ज्ञानी का अपमान

श्रुतज्ञानावरणीय कर्म बंध से सम्बन्धित अष्टावक्र की कहानी प्रासंगिक मालूम पड़ती है। कहा जाता है अष्टावक्र के शरीर के आठ अवयव टेढ़े-मेढ़े एवं वक्र थे इसलिए उन्हें अष्टावक्र कहा जाता था। वे बहुत ज्ञानी थे और नगर से बाहर जंगल में रहते थे। एक दिन राजा जनक ने उन्हें विद्वानों की विशेष सभा में बुलाया। अष्टावक्र इस बात को जानते थे कि राजा जनक विद्वानों का आदर करते हैं अत: वे उनकी सभा में गये।

जैसे ही अष्टावक्र ने राजसभा में प्रवेश किया वहाँ बैठे हुए राजा सहित सभी विद्वान उन्हें देखकर जोर-जोर से हंसने लगे। जब उनका हंसना बंद हुआ तब अष्टावक्र ने उन्मुक्त होकर जोर से हंसना प्रारम्भ कर दिया। यह नजारा देख कर सभी विद्वान् एक-दूसरे को साश्चर्य देखने लगे।

राजा जनक ने अष्टावक्र से पूछा, "महात्मन्! हम लोग तो सकारण हंसे, आप किस कारण हंस रहे हो?"

अष्टावक्र ने कहा—"राजन् आपने मुझे विद्वानों की सभा में बुलाया था किन्तु यहाँ प्रवेश करते ही मुझे यह एहसास हुआ कि ये चमारों की सभा है। इसीलिए मुझे हंसी आ गई। जो चमार होते हैं वे ही चमड़ी को देखते हैं। आपने भी मेरा ज्ञान नहीं देखा मात्र चमड़ी को देखकर हंस पड़े। यह सुनकर राजा सहित सभी विद्वानों ने अष्टावक्र से क्षमायाचना की। इस प्रकार विशिष्ट ज्ञानी पुरुषों का उपहास करने से श्रुतज्ञानावरण कर्म बंधता है।

❑ ❑ ❑

(19)

मोदक—एक मुनि के मन में मोदक खाने की इच्छा जगी। स्त्यानर्द्धि के उदय से रात्रि में वह उठा, दिन में जिस घर में मोदक देखे थे उसी घर में पहुँचा, मन इच्छित मोदक खाकर शेष बचे मोदक को पात्र में डाल, उपाश्रय में जाकर सो गया। पुनः जगने पर गुरु के पास आलोचना की। उसे संघ से बहिष्कृत कर दिया गया।

❑ ❑ ❑

(20)

असातावेदनीय

देवशाल नगर के राजा विजयसेन के श्रीमती नाम की रानी थी। उनके एक पुत्र था जयसेन तथा एक पुत्री थी कलावती। कलावती अपूर्व सुन्दर और गुणवती थी। जब वह विवाह योग्य हुई तो उसका चित्र लेकर एक चित्रकार शंखपुर देश के राजा शंख के पास गया। राजा शंख उस चित्र पर मोहित हो गया। पूछने पर चित्रकार ने बताया, जो भी पुरुष इस कन्या द्वारा पूछे गए चार प्रश्नों का उत्तर देगा, स्वयंवर में यह कन्या उसी के गले में वरमाला डालेगी।

राजा मोहित तो था ही, उसने सरस्वती देवी की आराधना की। देवी ने प्रकट होकर बताया–'स्वयंवर मंडप के एक स्तंभ पर पुतली बनी होगी। उस पर हाथ रख देना। वह राजकुमारी के चारों प्रश्नों का उत्तर दे देगी।

राजा शंख ने स्वयंवर मण्डप में जाकर ऐसा ही किया। उसका विवाह कलावती के साथ हो गया। राजा शंख और रानी कलावती बड़े प्रेम से रहने लगे। रानी कलावती गर्भवती भी हो गई।

एक बार कलावती का भाई जयसेन वहाँ आया। अन्य अनेक वस्त्राभूषणों के अतिरिक्त उसने अपनी बहन को दो बहुमूल्य कंगन भी दिये। कंगन पहनकर वह बहुत खुश हुई। वह दासी से कहने लगी–'मुझ पर उसका कितना स्नेह है कि इतने कीमती और खूबसूरत कंगन भेंट किये हैं। उसके प्रेम को मैं शब्दों में नहीं कह सकती।'

रानी के अन्तिम शब्द राजा शंख ने सुन लिये। वह उस समय उसके कक्ष के पास से ही गुजर रहा था। उसे यह भ्रम हो गया कि रानी किसी दूसरे पुरुष से प्रेम

करती है। इस भ्रम के कारण राजा ने उसे जंगल में छुड़वा दिया और चाण्डालों से कहकर दोनों हाथ कटवां दिये।

शोक के तीव्र आघात से रानी कलावती मूर्च्छित हो गई। जब उसे होश आया तो वह रुदन करने लगी। लेकिन उसके रुदन को सुनने वाला कौन था? स्वयं ही चुप हो गई। इसी दशा में वन में एक नदी के किनारे उसने पुत्र प्रसव किया।

वह पुत्रवती तो बन गई लेकिन पुत्र को उठाने और उसका पालन-पोषण करने के लिए उसके पास हाथ न थे। शोकार्त होकर उसने अपने शीलधर्म की दुहाई दी तो नदी की अधिष्ठात्री देवी ने उसके हाथ वापस दे दिये।

उसने अपने पुत्र को उठा लिया और उसे स्तन-पान कराने लगी। तभी कुछ तापस उधर आ निकले। वे रानी को अपने आश्रम में ले गये। आश्रम में रहकर रानी अपने पुत्र का पालन-पोषण करने लगी।

इधर चाण्डालिनियों ने शंख राजा को रानी कलावती के कंगन सहित कटे हुए हाथ दिये। इन कंगनों पर जयसेन नाम पढ़कर राजा को अपनी भूल मालूम हुई। उसे पश्चात्ताप हुआ। उसने खोजी घुड़सवार दौड़ाये। रानी कलावती का पता चल गया। राजा स्वयं जाकर उसे तापस आश्रम से ले आया। राजा उसके शीलधर्म से बहुत प्रभावित हुआ।

एक बार शंखपुर में एक ज्ञानी मुनि आये। दोनों मुनि के दर्शनार्थ गये। रानी ने जिज्ञासा प्रकट की–गुरुदेव! निरपराधिनी होते हुए भी मेरे हाथ क्यों काटे गये? इसका क्या कारण है?

गुरुदेव ने बताया–पिछले जन्म में तुम महेन्द्रपुर के राजा नर विक्रम की पुत्री सुलोचना थी। राजा नर-विक्रम को भेंट में एक तोता मिला। तुम उसे बड़े प्रेम से पालने लगी। एक बार तुम उस तोते को साथ लेकर मुनि दर्शन के लिए गयी। मुनि के दर्शन करते ही तोते को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह जान गया कि–'पिछले जन्म में मुनि था, लेकिन परिग्रह की उपाधि के कारण मैंने संयम की विराधना की इसलिए तोता बना हूँ। ऐसा जानते ही उसने नियम बना लिया कि–''मैं भगवान, मुनि अथवा त्यागीजनों के दर्शन-वंदन के बाद ही आहार ग्रहण करूँगा। दर्शनों के लिए अब तोता पिंजरे से निकलकर उड़ जाता। एक बार वह कई दिनों तक वापस नहीं आया। सुलोचना को यह बहुत बुरा लगा। जब तोता वापस आया तो उसने उसके पंख काट दिये।

मुनिराज ने बताया–उस तोते का जीव ही राजा शंख बना है और पंख कटवाने के कारण ही तुम्हारे भी हाथ कट गये।

यह घटना सुनकर राजा शंख और रानी कलावती दोनों प्रतिबुद्ध हो गए तथा आगे ग्यारहवें भव में मुक्त हो गये।

—पुहवीचंद चरित्रये

❑ ❑ ❑

(21)

असातावेदनीय

श्रावस्ती के राजा कनककेतु के एक पुत्र था, जिसका नाम था खंधक। खंधककुमार अनेक कार्य में कुशल तथा विचक्षण था। खंधक की बहिन कुमारी सुनन्दा भी विदुषी और सद्संस्कारी थी। सुनन्दा का विवाह कुन्ती नगर के महाराज पुरुषसिंह के साथ किया गया।

एक बार सावत्थी नगरी में विजयसेन मुनि आये। राजकुमार खंधक मुनि की वाणी सुनकर विरक्त हो गया और संयमी बन गया। संयम लेकर थोड़े ही दिनों में वह सुयोग्य बना।

खंधक मुनि गुरु से स्वतंत्र विहार की अनुज्ञा प्राप्त कर स्वतंत्र विचरने लगे। जब खंधक मुनि के पिता महाराज 'कनककेतु' को मुनि के पृथक् विहार का पता लगा तो पितृ-हृदयवश अपने 500 सुभटों को मुनि के अंगरक्षक के रूप में मुनि के साथ भेज दिया। खंधक मुनि को इनकी कोई अपेक्षा नहीं थी। फिर भी वे 500 सुभट छाया की तरह मुनि के साथ-साथ रहते थे। कोई कितनी ही सजगता रखे, परन्तु भवितव्यता को कोई टाल नहीं सकता।

खंधक मुनि विहार करते-करते अपनी बहिन की राजधानी कुन्ती नगर में आये। मुनि के मासखमण तप का पारणा था। सुभटों ने सोचा, यहाँ तो बहिन का ही राज्य है। मुनि को यहाँ क्या भय है। इस प्रकार विचार कर नगर में इधर-उधर घूमने चले गये। मुनि भिक्षा के लिए जाते हुए राजमहल के नीचे से गुजरे। ऊपर गवाक्ष में बैठे राजा-रानी अर्थात् पुरुषसिंह और सुनन्दा चौपड़ खेल रहे थे।

मुनि को देखकर रानी सुनन्दा को अपने भाई की स्मृति हो आई। खेल से दिल उचट गया। आंखों में आंसू बह गये। राजा ने सोचा—रानी मुनि को देखकर अन्यमनस्क क्यों हुई। उसे रानी के चरित्र पर संदेह हुआ। खेल समाप्त कर सभा में

आया। आव देखा न ताव, बिना विचारे ही जल्लाद को बुलाकर मुनि की चमड़ी उतारने का आदेश दे दिया। जल्लाद मुनि को पकड़कर श्मशान में ले गये। मुनि की नख से शिख तक सारी चमड़ी उतार दी। मुनिवर को भयंकर वेदना थी। फिर भी वे समाधिस्थ रहे। अद्‌भुत तितिक्षा से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में पहुंचे।

मुनि के छिले जाने के बाद यह दुश्चर्चा नगर में हवा की भांति फैल गई। जिसने भी सुना, उसने राजा की भर्त्सना की। सुभटों को जब पता लगा तब वे भी अपनी असावधानी पर बिसूर-बिसूर कर रोने लगे। भेद खुला तो अपने साले की इस भांति निर्मम हत्या से राजा पुरुषसिंह भी शोकाकुल हो उठा। रानी के दुःख का तो कोई ठिकाना ही नहीं था। किन्तु 'अब पछताय होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।'

संयोग की बात थी कि 'धर्मघोष' मुनि उसी दिन वहाँ पधारे। राजा-रानी तथा सहस्रों नागरिक मन ही मन दुःख, ग्लानि, घृणा समेटे मुनि की सेवा में उपस्थित हुए। राजा ने अनुताप करते हुए मुनि से यही प्रश्न किया—'भगवन्! मेरे से ऐसा जघन्यतम पाप क्यों हुआ?'

उत्तर देते हुए 'धर्मघोष' मुनि ने कहा—राजन्! खंधक से अपने पूर्वभव में एक महापाप हुआ था। खंधक उस समय भी राजकुमार था। उसने उस समय एक काचर छीला था। छिलका उतारकर वह बहुत प्रसन्न हुआ कि बिना कहीं तोड़े मैंने पूरे काचर का छिलका एक साथ उतार दिया। उसी प्रसन्नता से कुमार के गाढ़ कर्मों का बंधन हुआ। उसी घोर पाप-बंध के परिणामस्वरूप यहाँ उसकी चमड़ी उतारी गई। तू भी उसी काचर में उस समय एक बीज था। तूने अपना बदला यहाँ ले लिया।

—आवश्यक कथा

❑ ❑ ❑

(22)

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक नगर था, जिसके सौ दरवाजे होने से उसका नाम शतद्वार था। वहाँ के महाराज का नाम धनपति था। उस शतद्वार नगर के अग्निकोण में विजयवर्धमान नाम का ग्राम था। उस गांव में एक 'इकाई राठोर' नाम का ठाकुर था जो कठोर जाति का था। वह पांच सौ गांवों का स्वामी था। इकाई बहुत ही क्रूर अधर्मी और चण्डप्रकृति का था। वह पुण्य-पाप को कुछ भी नहीं मानता था। केवल जनता को जैसे-तैसे निचोड़कर धन इकट्ठा करना चाहता था। इतना ही नहीं, धन के लिए चोरी करवाना, राहगीरों को लुटवाना उसका प्रतिदिन का कार्य था। जनता के

दुःख-दर्द की उसे तनिक भी चिन्ता नहीं थी। उसे चिंता रहती थी अपनी तिजोरियां भरने की। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। पर सुनने वाला कौन था? वह तो स्वच्छन्द बना अत्याचार करने को तैयार रहता। परन्तु पाप किसी का बाप नहीं होता। संयोग की बात, उसके शरीर में सोलह प्रकार के महाभयंकर रोग एक साथ ही पैदा हो गये। अनेक रोगों से एक साथ घिर जाने से इकाई बहुत पीड़ित-व्यथित हुआ तथा अपने आपको दीन-हीन मानने लगा। चिकित्सकों को विविध प्रकार के प्रलोभन देकर चिकित्सा करने के लिए कहा। उन्होंने भी जी-जान लगाकर प्रयत्न किया। परन्तु सफलता पल्ले नहीं पड़ी। अन्ततः महावेदना भोगता हुआ मरकर प्रथम नरक में गया।

प्रथम नरक से निकल कर वह इकाई राठोर का जीव मृगा ग्राम में विजय क्षत्रिय की रानी मृगावती के उदर में आया। जिस दिन यह जीव मृगावती के गर्भ में आया, उसी दिन से मृगावती के प्रति विजय क्षत्रिय का प्रेम कम हो गया। मृगावती ने यह सारा गर्भ का प्रभाव माना। सोचा—हो न हो कोई पापात्मा मेरे गर्भ में आयी है। गर्भ के योग से उसे पीड़ा भी अधिक रहने लगी। रानी के गर्भ को गिराने, नष्ट करने के लिए अनेक औषधोपचार किये। पर पापी ऐसे नष्ट थोड़े ही होते हैं। रानी उदासीन बनी गर्भ का पालन करने लगी।

गर्भावस्था में ही शिशु को भस्मक रोग हो गया। वह जो भी खाता वह उसके तत्काल रक्त हो जाता। नौ महीने में पुत्र जन्मा। नाम मृगापुत्र दिया। परन्तु था जन्म से ही अंधा, बहरा, गूंगा तथा अंगोपांग के आकार से रहित। इन्द्रियों के मात्र चिह्न ही थे। ऐसे भयानक बालक को देखकर रानी भयभीत हो उठी। कूरड़ी पर उसे गिरवाने का विचार कर लिया। पर जैसे-तैसे रानी के मनोभावों का राजा को पता लग गया। राजा ने रानी से कहा—देख, ऐसा काम नहीं करना चाहिए। यह पहला बालक है। इसे मारने से अन्य बालक भी जीवित नहीं रहेंगे। इसलिए इसका पालन-पोषण कर।

पति की आज्ञा मानकर रानी उस बालक को एक भौंयरे (तलघर) में डाले रखती। प्रतिदिन उसे वहाँ भोजन दे देती। बालक जो भी भोजन करता उसके दुर्गन्धमय पदार्थ ही बनते थे। नरक के समान भयंकर वेदना भोगता हुआ वह वहाँ रह रहा था।

एक बार भगवान् महावीर उसी मृगा गांव के चन्दन पादप नामक उद्यान में पधारे। विजय राजा भी दर्शनार्थ आया। उसी गांव का एक जन्मान्ध भिखारी, जिसके ऊपर हजारों मक्खियां भिनभिना रही थीं, वह अपने किसी सज्जन साथी के सहारे

प्रभु के दर्शनार्थ आया था। प्रभु ने सभी को धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर सभी अपने-अपने स्थान को गए।

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा—प्रभु! उस जन्मांध व्यक्ति की भांति अन्य किसी स्त्री ने भी ऐसे किसी बालक को जन्म दिया है? भगवान ने कहा—मृगा रानी ने इससे भी अधिक भयावने पुत्र को जन्म दिया है। वह उसे भौंयरे में रखती है। वह जो भी खाता है उससे जो रुधिर-मांस बनता है, वह भी शरीर से झरता रहता है और वह उस रुधिर-मांस को पुनः-पुनः खाता रहता है। वह जन्म से ही अंधा, गूंगा, बहरा और लूला है। नरक से भी अधिक दुर्गन्ध आती है। वह मनुष्य केवल नाम का है, है तो लोढ़े का आकार।

गौतम स्वामी प्रभु की आज्ञा लेकर उसे देखने गये। मृगावती ने सोचा—इस गुप्त रहस्य का इन्हें कैसे पता चला? गौतम ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए भगवान महावीर का नाम बताया। मृगावती गौतम स्वामी को भौंयरे के पास ले गई। उसे देखकर गौतम स्वामी को बहुत आश्चर्य हुआ। कर्मों की विचित्र गति का चिन्तन करते हुए प्रभु के पास आए और उसका पूर्वभव पूछा।

प्रभु ने इसके सारे क्रूर कर्मों का कच्चा चिट्ठा सबके सामने रख दिया। भविष्य के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान ने कहा—'यह छत्तीस वर्ष की उम्र में मरकर सिंह होगा। वहाँ से मरकर प्रथम नरक में जाएगा। वहाँ से निकलकर नेवला होगा। वहाँ से दूसरी नरक में जाएगा। वहाँ से निकलकर पक्षी होगा। वहाँ से तीसरी नरक में जाएगा। इस प्रकार यह सातों नरक में जाएगा और अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करेगा। अन्त में महाविदेह क्षेत्र से मुक्त होगा।

मृगालोढ़ा के जीवन-चरित्र से यह ज्ञात होता है कि उसने पूर्व जन्म में प्राण-भूत आदि को बहुत कष्ट दिये जिसके कारण उसे इकाई जीवन के अन्त में एक साथ सोलह रोग उत्पन्न हुए और मृगालोढ़ा के आकार जैसा शरीर प्राप्त हुआ। यह सब असातावेदनीय का परिणाम है।

❑ ❑ ❑

(23)

अंगदेश की राजनगरी चम्पापुरी थी। जिस देश का शासक था सिंहरथ राजा। सिंहरथ के मंत्री का नाम मतिसागर था। सिंहरथ की रानी का नाम था कमलप्रभा। रानी कमलप्रभा ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम श्रीपाल रखा गया। अभी श्रीपाल पांच-छह वर्ष का शिशु ही था कि राजा सिंहरथ का स्वर्गवास हो गया।

सिंहरथ की चिता ठंडी भी नहीं हो पाई थी कि उसके छोटे भाई वीरदमन ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने श्रीपाल को भी मौत के घाट उतारने का षड्यंत्र रचाा। लेकिन मंत्री मतिसागर की सावधानी से रानी कमलप्रभा अपने पुत्र श्रीपाल को लेकर निकल गई। वन में सात सौ कोढ़ियों का दल मिला। वीरदमन के सैनिकों से बचने के लिए कमलप्रभा अपने पुत्र को लेकर कोढ़ी दल में मिल गई और उनके साथ रहने लगी। कोढ़ियों के सम्पर्क से श्रीपाल को भी कोढ़ हो गया। यद्यपि श्रीपाल कोढ़ी हो गया था, फिर भी सभी कोढ़ी उसे उम्बर राणा कहते और राजा के समान ही आदर देते।

श्रीपाल के कोढ़ी होने से रानी कमलावती चिंतित हो गई। जब कोढ़ी दल एक नगर के समीप पहुंचा तो कमलप्रभा नगर में कोढ़ की दवाई लेने चली गयी। जाते-जाते उसने कोढ़ियों के मुखिया से इतना अवश्य पूछ लिया कि आगे वे लोग किस नगर को जाएंगे। कोढ़ियों के मुखिया ने उज्जयिनी नगरी का नाम बता दिया। कमलप्रभा के जाने के बाद कोढ़ी-दल आगे बढ़ा और उज्जयिनी नगरी की सीमा पर पहुंचा।

मालव देश की राजधानी उज्जयिनी में उस समय प्रजापाल नाम का राजा राज्य करता था। उसकी दो पुत्रियां थीं—बड़ी सुरसुन्दरी और छोटी मैनासुन्दरी। सुरसुंदरी की माता का नाम सौभाग्यसुन्दरी और मैनासुन्दरी की माता का नाम रूपसुंदरी था। राजा प्रजापाल बहुत ही अभिमानी था। वह अपने आप को सबका भाग्यविधाता मानता था। समझता था कि मैं किसी को भी सुखी अथवा दुःखी कर सकता हूँ। सुरसुन्दरी तो राजा के अहं को तुष्ट करती थी; लेकिन मैनासुन्दरी जिनधर्म और कर्म सिद्धान्त में दृढ़ निष्ठा वाली थी, वह सुख-दुख का कारण अपने ही कर्मों को मानती थी।

एक दिन राजसभा में दोनों पुत्रियां आयीं। बातों के दौरान सुरसुन्दरी ने अपने पिता के विचारों का ही समर्थन किया। अतः राजा प्रसन्न हो गया और उसने उसका विवाह उनके इच्छित वर शंखपुर के राजकुमार अरिदमन के साथ कर दिया। किन्तु मैनासुन्दरी ने अपने पिता के विचारों का समर्थन नहीं किया; सुख-दुःख का कारण प्राणी के अपने कर्मों को बताया। इस पर राजा प्रजापाल उससे नाराज हुआ। उसने उसका विवाह कोढ़ी उम्बर राणा के साथ कर दिया।

मैनासुन्दरी इस दुःखद परिस्थिति में न घबराई। न निराश हुई। उसने नवपद की आराधना की और न केवल पति को वरन् उन सभी सात सौ कोढ़ियों को स्वस्थ कर दिया। सभी के कोढ़ जड़-मूल से नष्ट हो गये और उसका शरीर कुन्दन के समान

दमकने लगा। श्रीपाल की माता भी आ गई। वह अपने पुत्र और पुत्रवधू को देखकर बहुत हर्षित हुई।

इसके बाद श्रीपाल विदेश-यात्रा को चला गया। वहाँ उसने मदनसेना, रैनमंजूषा, मदनमंजूषा, गुणसुन्दरी, त्रैलोक्यसुन्दरी, शृंगार-सुन्दरी, मदनमंजरी आदि सात राजकन्याओं से और विवाह किया, अत्यधिक यश-सम्मान, ऋद्धि-समृद्धि प्राप्त की। उसने चतुरंगिणी सेना भी तैयार कर ली।

श्रीपाल ने विदेश यात्रा सम्पन्न कर मालवदेश की राजधानी उज्जयिनी के बाहर पड़ाव डाला और घर जाकर माता और पत्नी से मिला। साधारण बात-चीत के बाद श्रीपाल कुमार माता को कन्धे और पत्नी को हाथ पर बैठाकर हार के प्रभाव से आकाश मार्ग द्वारा अपने शिविर में आ पहुंचा। वहाँ वह अपनी माता को सिंहासन पर बैठाकर स्वयं उनके सामने बैठ गया। श्रीपाल की सातों रानियों ने आकर माता व मैनासुन्दरी के चरण स्पर्श किये। मां ने सबको आशीर्वाद दिया और मैनासुन्दरी ने मधुर वचनों से सबका स्वागत किया। अनन्तर श्रीपाल ने माता को आद्योपांत पूर्व वृत्तांत सुनाया।

अब श्रीपाल ने मैनासुन्दरी से कहा—प्रिये! सिद्धचक्र के प्रताप से उज्जयिनी को हथिया लेना मेरे लिये मुश्किल नहीं है। क्योंकि तुम्हारे पिता ने अभिमानवश जैनधर्म का अपमान किया था, न केवल धर्म का ही अपमान किया था बल्कि धर्म की वस्तुस्थिति बताने पर तुम्हारा जीवन भी दुःखमय बना दिया था। अब मैं तुम्हारे पिता को उनकी भूल का एहसास कराना चाहता हूँ कि उन्होंने क्रोधावेश में आकर कैसा अनुचित कार्य किया था। अब तुम मुझे यह बतलाओ कि उन्हें किस रूप में और किस प्रकार यहाँ उपस्थित होने को बाध्य किया जाए?

मैनासुन्दरी ने कहा—नाथ! मेरी समझ में, पिताजी का अभिमान दूर करना आवश्यक है। इसके लिए उन्हें कंधे पर कुल्हाड़ी रख कर नम्रतापूर्वक यहाँ उपस्थित होने को कहना चाहिए।

मैनासुन्दरी की बात सुन उसी समय उन्होंने एक दूत द्वारा मालवराज को यह संदेश भेज दिया। साथ में यह भी कहला दिया कि यदि उन्हें यह स्वीकार न हो तो युद्ध की तैयारी करे।

यथा समय दूत पहुँचा और श्रीपाल का संदेशा सुना दिया। दूत की बात सुनते ही प्रजापाल के शरीर में मानो आग लग गई। प्रजापाल ने पहले ही सुन लिया था कि शत्रु बड़ा प्रबल है। मंत्रियों से सलाह करने पर उन्होंने कहा—महाराज! क्रोध करने का अवसर नहीं है। शत्रुता और मित्रता समान वाले से ही करना उचित है।

मंत्रियों की बात सुन, राजा प्रजापाल ने दूत की बात मान ली और कंधे पर कुल्हाड़ी रख, पैरों से चलते हुए श्रीपाल के शिविर में पहुंचे। उन्हें आते देख, श्रीपाल ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। उनसे कुल्हाड़ी रखवाकर उत्तम वस्त्राभूषण पहनाकर सभामण्डप में ले गये। उसी समय मैनासुन्दरी वहाँ आई। उसने प्रजापाल को प्रणाम कर कहा—पिताजी! मेरी बातें याद करें। कर्म ही प्रधान है। देखो, कर्मयोग से मुझे जो पति मिले थे, उन्होंने अब कैसी उन्नति की है। इतना कह, मैनासुन्दरी ने राजा प्रजापाल से श्रीपाल का परिचय कराया। उन्होंने गद्‌गद होकर कहा—कुमार! आप गंभीर और गुणवान होने के कारण स्वयं अपना परिचय नहीं दिया। आपकी सुख-सम्पत्ति और वीरता देखकर मुझे अत्यन्त आनंद हो रहा है। श्रीपाल ने कहा—राजन्! यह सब नवपद का प्रताप है।

समूचे नगर में यह बात बिजली की तरह फैल गई कि उज्जयिनी को घेरा डालने वाला कोई शत्रु नहीं, यह राजा का जामाता है। यह सुनते ही राज दरबार में रानियां, पूरा परिवार, श्रीपाल और मैनासुन्दरी को देखने के लिए शिविर में पहुंचे। आनन्दपूर्वक एक-दूसरे से मिले-जुले।

सुरसुन्दरी नटी के रूप में—

आनन्द में वृद्धि करने के लिए श्रीपाल ने एक नाटक खेलने की आज्ञा दी। आज्ञा मिलते ही नाट्यदल तैयार हो गया। किन्तु नाटक के पहले ही दृश्य में जिस नटी का अभिनय था वह बार-बार कहने पर भी तैयार नहीं हुई। काफी देर तक समझाने बुझाने पर साधारण वेश पहनकर रंगमंच पर पहुंची। उस नटी ने रंगमंच पर अभिनय आरम्भ करने के पहले एक दोहा कहा—

कह मालव कह शंखपुर, कह बब्बर कह नट्ट।
नाच रही सुरसुन्दरी, विधि अस करत अकाज।।

नटी के मुंह से यह सुनते ही प्रजापाल विचार करने लगा—अरे! सुरसुन्दरी तो मेरी वही पुत्री है जिसकी मैंने शंखपुर के राजकुमार अरिदमन से शादी की थी। वह यहाँ कहाँ? प्रजापाल ने ध्यान से नटी की ओर देखा। देखते ही समझ गया कि यह नटी सुरसुन्दरी ही है। वह तुरंत रंगमंच से उतरकर अपनी माँ के पास पहुंची। बहुत रोयी। माँ ने उसे आश्वासन दिया। माँ ने पूछा—बेटी यह स्थिति कैसे हुई?

सुरसुन्दरी ने अपनी राम कहानी सुनाते हुए माता-पिता से कहा—आप लोगों ने धूमधाम से शादी कर मेरे पति के साथ मुझे विदा किया। हम सकुशल शंखपुर पहुंचे। किन्तु उस दिन नगर प्रवेश का मुहूर्त न मिलने के कारण हम नगर के बाहर एक बगीची में रुक गये। दुर्भाग्यवश मध्यरात्रि के समय डाकुओं ने हमारे डेरे पर छापा मारा। आपके दामादजी तो प्राण लेकर न जाने कहा चले गये और डाकुओं

के हाथों में पड़ गई। वे मुझे नेपाल ले गये और वहाँ मुझे बेच दिया। जिस मनुष्य ने मुझे खरीदा, वह वहाँ से मुझे बब्बरकुल ले गया और वहाँ उसने एक बड़ी रकम लेकर मुझे वेश्या के हाथ बेच दिया। उस वेश्या ने मुझे गाना-बजाना और नृत्य कला सिखाकर नटी बना दिया। वहाँ के राजा महाकाल नाटकों के बड़े ही शौकीन हैं। उन्हीं के यहाँ नटी होकर रहने के लिए मुझे बाध्य होना पड़ा। जब श्रीपाल कुमार वहाँ पहुंचे और इनके साथ राजकुमारी मदनसेना का ब्याह हुआ तब राजा ने एक नाटक-मण्डली भी दहेज में दी, मैं भी उसी मण्डली में थी।

उसी समय से मैं श्रीपाल कुमार के साथ रह कर नटी की तरह जीवन व्यतीत कर रही हूँ। कर्म योग के सिवा इसे मैं और क्या कहूं? जिस समय मैनासुन्दरी पर मैंने दु:ख पड़ते देखा था, उस समय मैं मन-ही-मन प्रसन्न और गर्वित हुई थी; किन्तु आज मुझे उसे मैना-पति का दास्यत्व अंगीकार करना पड़ा।

सुरसुन्दरी के उपरोक्त जीवन-प्रसंग से लगता है कि उसकी अरिदमन के साथ लग्न हुए होने पर भी उसे नटी की तरह नाचना पड़ा। पति के सहवास का योग नहीं मिल सका। यह भोगान्तराय कर्म का ही दुष्फल है।

उज्जयिनी से श्रीपाल चम्पानगरी के बाहर ठहरा। अपने पिता का राज्य लेने के लिए चाचा वीरदमन से युद्ध किया। वीरदमन की पराजय हुई। पराजय से खिन्न होकर उसने वहीं मुनिव्रत स्वीकार कर लिये।

श्रीपाल राजसिंहासन को ग्रहण कर पूरे अन्त:पुर के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

एक बार अवधिज्ञानी अजीतसेन राजर्षि घूमते-घूमते चंपानगरी पधारे। राजा श्रीपाल ने भी प्रवचन सुना। प्रवचन सुनने के बाद राजा श्रीपाल ने करबद्ध हो प्रश्न किया—गुरुदेव! कृपया मुझे यह बताइये कि बाल्यावस्था में मुझे किस कर्म के उदय से कुष्ट रोग हुआ था? किस कर्म के कारण स्थान-स्थान पर मुझे ऋद्धि-सिद्धि की प्राप्ति हुई? किस कर्म के कारण मैं समुद्र में गिरा? किस कर्म के कारण मुझे भांड होने का कलंक लगा? किस कर्म से ये विपत्तियां दूर हो गईं? किस कर्म से मुझे इतनी स्त्रियां प्राप्त हुईं?

अजीतसेन राजर्षि ने श्रीपाल की जिज्ञासाओं का समाधान करते कहा—श्रीपाल! सुनो, मैं तुम्हें तुम्हारा पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुना रहा हूँ—

इस भरतक्षेत्र में हिरण्यपुर नामक एक नगर है। कुछ समय पहले वहाँ श्रीकान्त नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम श्रीमती था। वह गुणवती, शीलवती और जैनधर्म में श्रद्धा रखने वाली थी। राजा को शिकार का बड़ा ही बुरा व्यसन था। रानी ने बहुत बार राजा को समझाया—राजन्! शिकार मत खेलिये।

किन्तु राजा के हृदय पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। जिस प्रकार पुष्करावर्तमेघ के बरसने पर भी मगसलिया पाषाण भीगता नहीं, उसी प्रकार चाहे जैसा उपदेश देने पर भी मूर्ख पर कोई असर नहीं होता।

एक बार वह राजा सात सौ उद्दण्ड कर्मचारियों के साथ शिकार खेलने गया। वहां एक मुनि को देखा। राजा ने साथियों से कहा—देखो, यह कोई कोढ़ी जा रहा है। सुनते ही कर्मचारियों ने मुनि को बहुत पीटा। फिर घर लौट आये।

एक दिन राजा अकेला ही शिकार खेलने गया। वहां एक मृग का पीछा किया। पीछे भागते-भागते मूल रास्ता भूल गया और भटकता हुआ नदी तट पर आया। वहाँ एक मुनि कायोत्सर्ग की मुद्रा में स्थित थे। राजा ने मुनि को कान पकड़कर उठाया और नदी के अगाध जल में डूबो दिया। बाद में दया आई और जल से मुनि को बाहर निकाल दिया। मुनि को मूर्च्छित अवस्था में छोड़, राजा घर आकर रानी को सारी बात बता दी। रानी ने कहा—प्राणनाथ! किसी साधारण प्राणी को भी दुःख देने से अनेक जन्म तक दुःख सहन करने पड़ते हैं फिर आपने तो एक मुनि को कष्ट पहुंचाया है, कब तक इस पाप के फल भोगने पड़ेंगे? रानी के समझाने पर राजा ने भविष्य में ऐसा न करने का संकल्प किया।

एक दिन की घटना है—राजा अपने महल के झरोखे में बैठा था। उधर से उसी समय गोचरी के निमित्त घूमते हुए एक मुनि आ निकले। राजा को अपने संकल्प की स्मृति नहीं रही और उसने अपने कर्मचारियों से कहा—इस भिक्षुक ने समूचे नगर को भ्रष्ट कर डाला। इसे नगर से बाहर निकाल दो। राजा की आज्ञा सुनते ही कर्मचारी मुनि को धक्का देकर बाहर निकालने लगे। रानी ने यह सब देख लिया। रानी ने कहा—राजन्! आपको अपनी प्रतिज्ञा याद नहीं रहती। ऐसे आचरणों से तो नरक के दरवाजे खुल जाएंगे। रानी ने उसी समय मुनि को महल में बुलवाकर राजा को क्षमायाचना करने के लिये कहा। राजा ने क्षमा मांगी। मुनि ने पाप से मुक्त होने के लिए नवपद का जप करने के लिए कहा। राजा और रानी ने नवपद की आराधना की। अनुष्ठान की समाप्ति के उत्सव पर रानी की आठ सखियों और राजा के सात सौ साथियों ने उसका अनुमोदन किया।

एक बार राजा श्रीकान्त ने 700 साथियों के साथ पड़ोसी सिंह राजा के नगर पर आक्रमण किया। उसने नगरी का कुछ भाग लूट लिया और गायों का एक झुण्ड अधिकृत कर अपने नगर की ओर लौटा। जब राजा सिंह ने यह समाचार सुना तब क्रोधित होकर सेना सहित उसके पीछे भागा। रास्ते में दोनों दल मिले। सिंह की भांति सिंह राजा के सैनिक श्रीकान्त दल पर टूट पड़े। देखते-देखते सात सौ सैनिक स्वर्गस्थ हो गये और श्रीकान्त भाग गया।

इस प्रकार सिंह राजा के द्वारा श्रीकान्त के जो सात सौ सैनिक मारे गये थे, वे दूसरे जन्म में क्षत्री हुए किन्तु उन्होंने मुनियों को सताने का अपराध किया था इसलिए वे सब कोढ़ी हो गये। श्रीकान्त मरकर पुण्य-प्रभाव से श्रीपाल के रूप में उत्पन्न हुआ। किन्तु उसने भी मुनियों को सताया था, इसलिये तुझे भी इस जन्म में कोढ़ी होना, समुद्र में गिरना और कलंकित होना पड़ा। तेरी जो रानी थी वह इस समय मैनासुन्दरी हुई है। तुझे जो ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुई है वह रानी के आदेशानुसार जो सिद्धचक्र की आराधना की थी, उसी का प्रताप है। सब सखियों ने तुम्हारी धर्माराधना प्रशंसा की थी वे तेरी छोटी रानियां हुईं। तेरे सात सौ साथियों ने नवपद महात्म्य की प्रशंसा की थी, इसलिये वे इस जन्म में राणा हुए।

सिंह राजा ने सात सौ सुभटों का विनाश करने का पश्चात्ताप किया। अंत में चारित्र ग्रहण कर, एक मास का संथारा किया। दूसरे जन्म में यह सिंह राजा मेरे रूप में उत्पन्न हुआ। उस जन्म में तूने मेरे राज्य पर आक्रमण कर उसे लूटा था, इसलिये इस जन्म में बाल्यावस्था से ही मैंने तेरा राज्य छीन लिया। उस जन्म में सात सौ सुभटों का मैंने विनाश किया था, इस जन्म में उन्होंने मुझे बांधकर तेरे सामने उपस्थित किया। पूर्व जन्म के सुकृत्यों के कारण मुझे उस समय जाति स्मरण ज्ञान हुआ, अतएव मैंने उसी समय अपने आपको संभाला और चारित्र ग्रहण किया। मुझे अवधिज्ञान होने पर तुम्हें उपदेश देने के लिए आया हूँ। श्रीपाल! उस जन्म में जिसने जैसे कर्म किये थे, इस जन्म में उसे वैसे ही फल मिले।

इस प्रकार पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर राजा श्रीपाल को वैराग्य हो गया। श्रीपाल ने नौ सौ वर्ष तक राज्य किया। अपने बड़े पुत्र त्रिभुवनपाल को राज्य देकर संयम ले लिया। मैनासुन्दरी भी साध्वी बन गई। तपाराधना करके श्रीपाल मुनि ने आयु पूर्ण की और नौवें देवलोक में उत्पन्न हुए। नौवें भव में इन्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी।

—रत्नशेखर सूरिकृत सिरि सिरिवाल कहा

❑ ❑ ❑

(24)

श्रावस्ती नगरी के राजा जितशत्रु की पटरानी का नाम धारिणी था। उसके एक पुत्र और पुत्री थी। पुत्र का नाम था खंधककुमार और पुत्री का नाम था पुरन्दरयशा। पुरन्दरयशा का विवाह दण्डक देश की राजधानी कुंभकटकपुर के स्वामी दण्डक राजा के साथ किया गया था। दण्डक राजा के मंत्री का नाम था—'पालक' जो महापापी, क्रूरकर्मी, अभव्य तथा जैनधर्म का द्वेषी था।

एक बार पालक श्रावस्ती नगरी में आया। प्रसंगवश खंधककुमार से धार्मिक चर्चा चल पड़ी। खंधक के तर्क-पुरस्सर विवेचन तथा जैनधर्म के गौरवपूर्ण प्रतिष्ठापन से पालक का खून खौल उठा। खंधक द्वारा प्रस्तुत किये गये अकाट्य तर्कों के सामने पालक को बहुत ही बुरी तरह से मुंह की खानी पड़ी, पर उपाय क्या? मन ही मन तिलमिलाता हुआ कुंभकटकपुर लौट आया। उसने खंधक के प्रति गांठ बांध ली।

भगवान श्री मुनिसुव्रत स्वामी एक बार श्रावस्ती नगरी में पधारे। राजकुमार खंधक ने भगवान का उपदेश सुना। विरक्त होकर 500 राजपुत्रों के साथ दीक्षित हो गया। खंधक ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में निष्णात हुआ।

एकदा खंधक के मन में आया कुंभकटकपुर नगर जाकर अपनी सहोदरी पुरन्दरयशा को अवश्य प्रतिबोध दूं। वहाँ जाने के लिए जब प्रभु से आज्ञा चाही, तब प्रभु ने फरमाया—वहाँ जाने में तुम्हें मरणान्तक कष्ट उपस्थित होगा।

खंधक ने फिर से पूछा—माना कि मारणान्तिक कष्ट होगा, पर सारे आराधक होंगे या विराधक।

प्रभु ने फरमाया—तुम्हारे सिवाय सभी आराधक होंगे। केवल तू ही एक विराधक होगा।

खंधक मुनि फिर भी नहीं रुके। उन्होंने सोचा—मेरा एक अहित होकर भी यदि सबका हित सधता हो तो लाभ का ही सौदा है। ऐसा विचार करके वे अपने 500 शिष्यों सहित कुंभकटकपुर चले आए और नगर के बाहर उद्यान में ठहर गए।

पालक को जब इस बात का पता लगा कि 500 शिष्यों के साथ खंधक यहाँ आये हैं तब उसने अपनी पराजय का बदला लेना चाहा। राजा को बरगलाने के लिए एक षडयंत्र रचा। उपवन में गुप्तरूप से शस्त्र गड़वाकर राजा से उसने कहा—'खंधक आपका राज्य छीनने आये हैं, मौके की ताक में हैं। अपने आवास स्थान के आस-पास गुप्त रूप से शस्त्र गड़वा रखे हैं। इसके साथ जो 500 श्रमण हैं, वे श्रमण नहीं सुभट हैं।'

राजा लोग कान के कच्चे होते ही हैं। उसे भी खंधक मुनि के प्रति शंका हो गई। उसने स्वयं जाकर उपवन की भूमि खुदवायी तो शस्त्र निकले। उन्हें देखते ही राजा दण्डक कुपित हो उठा। पालक को यह काम यों ही कहकर सौंप दिया कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करना।

पालक को और क्या चाहिए था? बगीचे में एक बहुत बड़ा कोल्हू लगवाया। एक-एक करके साधुओं को उसमें पीलने लगा। जनता में हाहाकार मच गया, पर कोई क्या करे? उसने चार सौ निन्यानबे साधुओं को उस कोल्हू में पिल दिया। चारों

ओर खून के नाले बहने लगे। मांस के लोथड़ों के ढेर पड़े हैं, पक्षीगण मंडरा रहे हैं, पर नृशंस को दया कहां?

महामुनि खंधक सभी संतों को समाधिस्थ रहने की बलवती प्रेरणा देते रहे। जब सबसे छोटे शिष्य को पिलने के लिए पालक ने पकड़ा तब खंधक मुनि का धैर्य डोल उठा। विचलित दिल खंधक ने पालक से कहा—मुझे इस लघु शिष्य का अवसान तो मत दिखा। मुझे भी तो तू पिलना चाहेगा। तेरे लिये पहले–पीछे में क्या फर्क पड़ता है? पहले मुझे पिल दे, बाद में इसे पिलना।

यह सुनते ही पालक की बांछें खिल उठी। त्यौरियां बदलकर बोला—'मुझे पता ही नहीं था कि तुझे इसी का अधिक दुःख है। इसलिये इसे तो तेरी आंखों के सामने अवश्य पिलूंगा। यों कहकर उस लघु साधु को कोल्हू में डाल दिया।

खंधक अपने आपको संभालकर नहीं रख सके। कुपित होकर तीखे स्वर में बोले—'देख मेरे त्याग और तप का यदि कुछ फल है तो मैं तुम्हारे लिए, तुम्हारे देश के लिये, तुम्हारे राजा के लिए नामोनिशान मिटाने वाला बनूं।' यों बोलते मुनि को पालक ने पकड़कर कोल्हू में डाल दिया।

खंधक मुनि दिवंगत होकर अग्निकुमार देव बने। अवधिज्ञान से जब उन्होंने अपना पूर्वजन्म देखा तब कुपित होना सहज ही था। अग्नि की विकुर्वणा करके सारे नगर को भस्म कर दिया। कुछ ही क्षणों में दण्डक देश दण्डकारण्य बन गया, कोई भी नहीं बचा। केवल पुरन्दरयशा, जो खंधक की बहन थी, बची। बचने का एक कारण था। रानी ने खंधक मुनि को पहले एक रत्नकम्बल दिया था। मुनि ने उस कम्बल का रजोहरण बनाया था। मुनि के पिले जाने पर खून से सने रजोहरण को कोई पक्षी मांस की बोटी समझकर चोंच में ले चला, पर भार अधिक होने से महारानी के सामने महलों में लाकर उसे गिरा दिया। रानी ने उसे पहचाना तब पता लगा—उसके भाई को, उनके 500 शिष्यों सहित पालक ने कोल्हू में पील दिया है। रानी बिसूर-बिसूरकर रोने लगी। विलाप करती हुई महारानी को देवता ने उठाकर प्रभु के समवसरण में पहुंचा दिया। वह वहाँ साध्वी बन गई। अवशेष सारे देश का खुरखोज ही नष्ट हो गया।

यह वही दण्डकारण्य है, जहाँ वनवास के समय राम, लक्ष्मण और सीता आये थे और लक्ष्मण के हाथों शम्बूक का अनायास ही वध हो गया।

–निशीथ चूर्णिः
त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र, पर्व 7

❑ ❑ ❑

(25)

दर्शन मोहनीय

आचार्य विश्वभद्र के संघ में 500 साधु थे। आचार्य ने पांच प्रमुख शिष्यों को शिक्षक नियुक्त किया। एक-एक शिक्षक मुनि को सौ-सौ साधु दिये गये।

आचार्य के उन शिक्षक शिष्यों में पांचवें मुनि थे—मणिभद्र, जो प्रखर व्याख्याता और बौद्धिक प्रतिभा के धनी थे। उनका बाह्य और आभ्यन्तर दोनों व्यक्तित्व सुन्दर था। आचार्यश्री के पांच प्रमुख शिष्यों में मुनि मणिभद्र का विशेष प्रभाव था। लोगों की यह आम धारणा थी कि आचार्यश्री के भावी पट्टधारी यहीं होंगे। आचार्यश्री भी इन्हें अधिक महत्त्व देते थे। संघ में कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने होते तो आचार्यश्री मणिभद्र मुनि को पूछे बिना नहीं लेते।

आचार्यश्री ने युवाचार्य नियुक्ति में मणिभद्र मुनि का नाम न लेकर उस साधु का नाम लिया जो चारित्र स्थविर और आगम स्थविर बन चुके थे। पूरे संघ में हर्ष की लहर दौड़ गई। इसका मणिभद्र मुनि को गहरा आघात लगा। विचारों में उतार-चढ़ाव आने लगा। भीतर-भीतर कुछ विद्रोह की भावना जगने लगी।

वहाँ एक प्रसिद्ध आश्रम था। उस आश्रम के कुलपति को मणिभद्र की मनःस्थिति का पता लगा। उन दिनों मणिभद्र मुनि का विहार क्षेत्र आश्रम के आस-पास ही था। कुलपति उनके व्यक्तित्व एवं विद्वत्ता से प्रभावित था।

कुलपति ने एक विश्वस्त व्यक्ति को मणिभद्र मुनि के पास भेजा और कुलपति पद प्रदान करने का प्रस्ताव रखा। मणिभद्र मुनि की महत्त्वाकांक्षा ने उनको साधना से विचलित कर दिया और वे आश्रम के सदस्य बन गये। धार्मिक क्षेत्र में भारी हलचल मची। धर्मसंघ को गहरा धक्का लगा। पुनः मणिभद्र मुनि को संघ में लाने का प्रयत्न किया, किन्तु असफल रहा।

छठे महीने में कुलपति ने मणिभद्र को कुलपति बना दिया। कुछ चामत्कारिक विद्याएं सीखा दीं। मणिभद्र बुद्धिमान तो थे ही, परिव्राजक मत का अच्छा प्रचार करने लगे। स्वयं के साथ अनेक साधुओं को भी ले गये थे। उनसे प्रभावित श्रावक भी परिव्राजक मतानुयायी बन गये। कुछ लोग इनके चमत्कारों के प्रभाव में आ गये। प्रतिदिन व्याख्यान में कभी मिश्री आकाश से मंगाते और प्रसाद के रूप में बांट देते। कभी केशर, कभी कुंकुम मंगवाते और श्रोताओं पर बिखेर देते।

मणिभद्र का प्रभाव इतना फैला, लोग स्वयं सत्यधर्म को भूल गये। केवल चमत्कारों में फंस गये। सिद्धांत को भूल गये। साधना गौण हो गयी। निर्ग्रन्थ धर्म में ही नहीं, सभी धर्म सम्प्रदायों में दरारें पड़ गयी। मणिभद्र का एक ही चिन्तन था—मेरा दबदबा रहे, केवल मेरा ही प्रभाव रहे। अनेकों बार मान्य सिद्धान्तों का भी खण्डन कर देते थे, जिससे धर्म की मौलिक आस्था में बहुत कमी आई। उनके दर्शन-मोहनीय की प्रकृति का कठोर बंधन हो गया।

मणिभद्र वहाँ से मरकर व्यन्तर देव बना। देवायुष्य भोग कर वह तिर्यञ्चगति में खूब भटका, इस बीच वह अनेकों बार नरक में भी चला गया। पैंतीस करोड़ाकरोड़ सागरोपम तक वह इसी प्रकार भव-भ्रमण करता रहा। इतने लम्बे समय के बाद उसका जीव मथुरा नगरी का राजकुमार बना। उसका नाम दिया गया—वीर्यध्वज। उसके पिता का नाम था—सूर्यध्वज। राजकुमार युवा बना। कला में दक्ष और विद्या के क्षेत्र में पारगामी बना।

एक बार सर्वज्ञ आचार्य समाधिगुप्त मथुरा नगरी में पधारे। राजा अपने युवा राजकुमार के साथ दर्शनार्थ गया। वीर्यध्वज पहली बार निर्ग्रन्थ प्रवचन में आया था। इसलिए उसे निर्ग्रन्थ परम्परा के प्रति कुतूहल होना स्वाभाविक था।

सर्वज्ञ आचार्य के प्रवचन का विषय था—सम्यक्श्रद्धा। उन्होंने कहा—सम्यक्त्व से गिर जाने से व्यक्ति को भव भ्रमण करना ही पड़ता है।

राजा ने पूछा—भंते! यहाँ पर कोई पड़वाई सम्यक्दृष्टिं (सम्यक्त्व से गिरने वाला) है क्या?

आचार्य—ऐसे तो हम में से अनेकों ऐसे हैं, जो प्रतिपातिक सम्यक्दृष्टि हो चुके हैं। पर यह तुम्हारा राजकुमार वीर्यध्वज है जो पैंतीस करोड़ाकरोड़ सागर के बाद आज पहली बार निर्ग्रन्थ प्रवचन में आया है। इतने समय तक यह धर्म से, साधुओं से विपरीत बना रहा। एक बार तो संतों की पिटाई करने से इसे नरक की भी हवा खानी पड़ी।

मणिभद्र मुनि के जीवन का इतिवृत्त सुनाते हुए सर्वज्ञ देव ने कहा—क्रोध एवं अहंकार के वशीभूत होकर, अनास्था के जाल में फंसकर व्यक्ति कर्मों का बंधन तो कर लेता है, पर भुगतने के लिए असंख्य और अनन्त-अनन्त भवों (जन्मों) में परिभ्रमण करना पड़ता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण है—यह राजकुमार वीर्यध्वज।

❑ ❑ ❑

(26)

एक बार गुरु-शिष्य दोनों एक गांव से दूसरे गांव जा रहे थे। मार्ग में गुरुजी के पैर से एक मृत मेढक के कलेवर का स्पर्श हो गया। शिष्य ने सचेत किया। "वह तो मरा हुआ ही था"—गुरु ने शान्त स्वर में शिष्य से कहा।

स्वस्थान पर आकर शिष्य ने फिर उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए कहा। गुरुजी मौन रहे। शिष्य ने सोचा—यह मेरी ही गलती है, मुझे अभी न कहकर सांध्य प्रतिक्रमण के समय कहना चाहिए। प्रतिक्रमण के समय फिर कहा, तब गुरुजी गुस्से से आग-बबूला हो उठे। गुस्से में तमतमाते हुए बोलने लगे—मेढक कहते-कहते मेरे पीछे ही पड़ गया। ले, तुझे अभी बता दूं कि मेढक कैसे मरता है? यो कहकर शिष्य को मारने दौड़े। शिष्य तो इधर-उधर छिप गया, अंधेरा अधिक था, अतः एक स्तम्भ से टकराकर गुरुजी वहीं गिर पड़े। चोट गहरी आई। तत्काल प्राण पंखेरू उड़ गये। मरकर चण्डकौशिक सर्प बने। सर्प भी इतने भयंकर थे, जिसकी दाढ़ में उग्र जहर था।

यह चण्डकौशिक वही है जिसने भगवान महावीर के डंक लगाये थे और वहीं पर भगवान के सम्बोधन से जातिस्मरणज्ञान करके अनशन स्वीकार कर लिया और देवयोनि में पैदा हुआ।

❑ ❑ ❑

(27)

वसन्तपुर नगर में जितशत्रु राजा था। वहाँ धनपति और धनावह नामक भाई श्रेष्ठी थे। उनकी बहिन का नाम धनश्री था; वह बालविधवा थी। वह धर्मध्यान में लीन रहती थी। एक बार मासकल्प की इच्छा से आचार्य धर्मघोष वहाँ आए। धनश्री उनके पास प्रतिबुद्ध हुई। दोनों भाई भी बहिन के स्नेहवश आचार्य के पास प्रतिबुद्ध हुए। धनश्री प्रव्रजित होना चाहती थी पर भाई उसको सांसारिक स्नेहवश दीक्षा की अनुमति नहीं दे रहे थे।

धनश्री धार्मिक कार्यों में बहुत अधिक व्यय करने लगी। उसकी दोनों भाभियां उसके इस कार्य से बहुत क्लेश पाती थी और अंटसंट बोलती रहती थीं। धनश्री ने सोचा—मुझे भाइयों के चित्त की परीक्षा करनी चाहिए। इनसे मुझे क्या? शयनकाल में विश्वस्त होकर माया से आलोचना करके वह भाभी से धार्मिक चर्चा करने लगी। फिर आवाज बदलकर उसका पति सुन सके वैसी आवाज में भाभी से बोली—'और

अधिक क्या? शाटिका की रक्षा करना।' यह सुनकर भाई ने सोचा—'निश्चित ही मेरी पत्नि दुश्चरित्रा है। भगवान ने असती स्त्रियों का पोषण निषेध किया है अतः मुझे इसका परित्याग कर देना चाहिए, यह सोचकर उसने पर्यंक पर बैठी हुई अपनी पत्नि का परित्याग कर दिया। उसने सोचा—'यह क्या हुआ?' भाई ने अपनी पत्नी से कहा—'तुम मेरे घर से निकल जाओ।' उसने सोचा—'मैंने ऐसा क्या दुष्कृत किया, जो मुझे घर से निकाला जा रहा है।' उसे अपनी कोई भी गलती याद नहीं आयी। उसने भूमि पर बैठकर कष्ट से सारी रात बिताई। प्रभात होने पर वह म्लान बनी हुई बाहर आई। धनश्री ने कहा—'आज इतनी म्लान क्यों हो?' उसने रोते हुए बताया—मुझे मेरा कोई अपराध नहीं दीख रहा है फिर भी मुझे घर से निष्कासित किया जा रहा है।' धनश्री बोली—'तुम विश्वस्त रहो। मैं तुम्हें तुम्हारे पति से मिला दूंगी।' धनश्री ने अपने भाई से कहा—यह क्या? यह म्लान क्यों है? उसका भाई बोला—'यह तुम्हारी बात से ही ज्ञात हुआ है।' भाई ने कहा—मैंने भगवान की देशना सुनी है। उन्होंने असती स्त्रियों की निवारण की बात कही है। धनश्री बोली—'अहो, तुम्हारी पंडिताई और विचार करने की क्षमता भी विचित्र है। मैंने सामान्य रूप से तुम्हारी पत्नी को भगवान की देशना सुनाई और शाटिका की रक्षा करने की बात सुनाई। क्या इतने मात्र से वह दुश्चारिणी हो गयी?' यह सुनकर भाई लज्जित हुआ और मिथ्यादुष्कृत किया। धनश्री ने सोचा कि मेरा भाई सम्पूर्णतः पवित्र और निर्मल रूप को स्वीकार करना चाहता है। दूसरे भाई की भी इसी प्रकार परीक्षा हुई। उसने भाभी से कहा—और अधिक क्या कहूं? तुम हाथ की रक्षा करना। यह सुनकर उसने भी अपनी पत्नी को तिरस्कृत करके घर से निकालना चाहा। लेकिन बहिन ने उसे यथार्थ स्थिति की अवगति दी। धनश्री ने सोचा—मेरा यह भाई भी पूर्ण पवित्रता को स्वीकार करने वाला है। माया और अभ्याख्यान दोष से उसने तीव्र कर्म बांध लिये। उसकी आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना ही तीव्र भावना से वह प्रव्रजित हो गयी।

दोनों भाई भी अपनी पत्नियों के साथ प्रव्रजित हो गए। आयुष्य का पालन कर सभी देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से दोनों भाई पहले च्युत होकर साकेत नगर में सेठ अशोकदत्त के घर में पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। उनका नाम समुद्रदत्त और सागरदत्त रखा गया। पूर्वभव की बहिन धनश्री भी वहाँ से च्युत होकर गजपुर नगर में धनवान श्रावक शंख के घर में पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई। वह अत्यन्त सुन्दर थी इसीलिए उसका नाम सर्वांगसुंदरी रखा गया। दोनों भाइयों की दोनों पत्नियां देवलोक से च्युत होकर कौशलपुर में नंदन नामक धनिक के घर में दो पुत्रियों के रूप में जन्मी। दोनों का नाम रखा गया—श्रीमती और कांतिमती। दोनों यौवन अवस्था को प्राप्त हुईं।

एक बार सर्वांगसुन्दरी साकेत नगर से गजपुर आई। अशोकदत्त श्रेष्ठी भी वहाँ आया हुआ था। उसने सर्वांगसुन्दरी को देखा और पूछा—यह किसकी कन्या है? उसे बताया गया कि यह शंख श्रेष्ठी की कन्या है। उसने शंख से अपने पुत्र समुद्रदत्त के लिए ससम्मान उसकी याचना की। शंख की स्वीकृति पर विवाह सम्पन्न हो गया। कुछ समय पश्चात् समुद्रदत्त उसे लेने आया। ससुराल वालों ने उसका स्वागत किया। वासगृह सजाया गया। उसी समय सर्वांगसुन्दरी के माया के कारण बंधा हुआ कर्म उदय में आ गया। समुद्रदत्त वासगृह में बैठा था। उसने जाती हुई दैविकी पुरुष-छाया को देखा और सोचा—'मेरी पत्नी दु:शीला है क्योंकि कोई उसको देखकर अभी-अभी गया है।' इतने में ही सर्वांगसुन्दरी वासगृह में आई। पति ने उसके साथ आलाप संलाप नहीं किया। अत्यन्त दु:खी होकर उसने धरती पर उदास बैठकर रात बिताई। प्रभात होने पर उसका पति अपने स्वजनवर्ग से बिना पूछे केवल एक ब्राह्मण को बताकर साकेत नगर चला गया। उसने कौशलपुर के श्रेष्ठी नंदन की पुत्री श्रीमती, वे और उसके भाई ने नंदन की दूसरी पुत्री कांतिमती के साथ विवाह कर लिया। सर्वांगसुन्दरी ने जब इस विवाह की बात सुनी तो वह अत्यन्त खिन्न हो गई। अब उसके और पति समुद्रदत्त के बीच व्यवहार समाप्त हो गया। सर्वांगसुन्दरी धर्मध्यान में तत्पर रहने लगी और कालान्तर में प्रव्रजित हो गयी।

एक बार अपनी प्रवर्तिनी के साथ विहरण करती हुई वह साकेत नगर में आई। उस समय सर्वांगसुन्दरी के माया द्वारा बंधा हुआ दूसरा कर्म उदय में आया। वह पारणक करने के लिए नगर में भिक्षाचर्या के लिए श्रीमती के घर गई। उस समय वह शयनगृह में हार पिरो रही थी। साध्वी को देखकर हार को वहीं रखकर वह भिक्षा देने उठी। इतने में ही चित्र में चित्रित एक मयूर उतरा और हार को निगल गया। साध्वी ने सोचा—यह कैसा आश्चर्य? भिक्षा लेकर साध्वी गई। श्रीमती ने देखा कि हार यहीं है। उसने सोचा, यह कैसी गजब की क्रीड़ा। परिजनों के पूछने पर वे बोले—'यहाँ केवल आर्या के अतिरिक्त कोई नहीं आया।' श्रीमती ने साध्वी का तिरस्कार किया और घर से निकाल दिया। साध्वी ने अपने उपाश्रय में जाकर प्रवर्तिनी से मयूर वाली आश्चर्यकारी बात कही। प्रवर्तिनी बोली—'कर्मों का परिणाम विचित्र होता है।' वह साध्वी उग्र तप करने लगी। अनर्थ से भयभीत होकर उसने श्रीमती के घर जाना छोड़ दिया। श्रीमती और कांतिमती के पति अपनी पत्नियों का उपहास करने लगे परन्तु दोनों विपरिणत नहीं हुई। उग्र तप करने वाली सर्वांगसुन्दरी के कुछ कर्म शिथिल हुए।

एक बार श्रीमती अपने पति के साथ वासगृह में बैठी थी। उस समय चित्र से नीचे उतरकर मयूर ने हार को उगल दिया। यह देखकर दोनों में विरक्ति पैदा हुई। उन्होंने सोचा—'ओह! साध्वी की कितनी गंभीरता है कि उसने कुछ नहीं बताया।'

वे उससे क्षमायाचना करने प्रवृत्त हुए। इतने में ही साध्वी को केवलज्ञान हो गया। देवताओं ने उसकी महिमा की। वे दोनों पति-पत्नी वहाँ आए। साध्वी से कारण पूछने पर उससे पूर्वभव का कथन किया। वे भी प्रव्रजित हो गए।

आव. नि. 583

❑ ❑ ❑

(28)

उद्योत नगरी के राजा जयवाहन को इस बात का गहरा अनुताप था—उसके कई मित्र साधु बन गये, कई उच्चकोटि के श्रावक बन गये। मैं साधुत्व से तो कोसों दूर हूँ पर श्रावकत्व भी स्वीकार नहीं कर सका। आत्मकल्याण त्याग और संयम से होगा, राज्य अथवा भोगविलासिता नहीं।

राजा कई बार यह भी सोचता था—मेरे मित्र साधु अथवा श्रावक बन गये। मेरे इस ओर कदम आगे क्यों नहीं बढ़े। मैं पीछे क्यों रहा।

एक बार तपस्वी इन्द्रियगुप्त अणगार विचरते-विचरते उद्योत नगरी पधारे। संत तपस्वी थे, उनकी चारों ओर प्रसिद्धि भी थी। उनके जीवन की यह महत्त्वपूर्ण बात थी—अनेक देवता उनके परमभक्त थे। प्रायः मुनि की उपासना में ही रहते। जब मुनि विहार करते तो देवता उन पर छाया कर देते थे। जहाँ पारणा करते वहाँ पुष्पवृष्टि कर देते थे। इससे पूरे राज्य में उनका भारी प्रभाव था। मुनि अवधिज्ञानी और मनः-पर्यवज्ञानी भी थे। उनको वचनसिद्धि प्राप्त थी। उनके प्रवचन में जैन-जैनेतर सबकी उपस्थिति रहती। उद्योतनगरी में भी ऐसा हुआ। राजा जयवाहन स्वयं अपने राजपरिवार के साथ वहाँ के उद्यान में दर्शनार्थ गया। प्रवचन सुना। सहवर्ती साधुओं में जो अपने साथी थे उनको देखा और उनका सम्यक् विकास सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, किन्तु स्वयं के त्यागमार्ग से पीछे रह जाने का खेद भी था। उसने तपस्वी मुनि से इसका कारण पूछा।

तपस्वी इन्द्रियगुप्त ने कहा—राजन्! यह पूर्वजन्म के कृत कर्मों का फल है। तूं पिछले जन्म में लाट देश का राजा था। तुम्हारा नाम था—जयवर्धन। तुम्हारे दो पुत्र थे—सूर्यवर्धन और चन्द्रवर्धन। लाट देश में साधुओं का आवागमन कम ही होता था। सूर्यवर्धन अपनी माँ से मिलने के लिए दूसरे नगर में गया हुआ था। वहां उसे संतों का योग मिला, प्रवचन सुना और तात्त्विक ज्ञान प्राप्त किया। साथ-साथ उसने कुछ संकल्प भी स्वीकार किये।

जब वह अपने नगर आया, राजा को सूर्यध्वज के नियम संबंधी जानकारी मिली तो राजा झुंझलाया और उसे प्रत्याख्यान के लिए निषेध कर दिया। वह न चाहते हुए भी पिता का आदेश शिरोधार्य कर नियमों को तोड़ दिया। राजा ने अपने राज्य में धार्मिक उपासना व प्रत्याख्यान के विरुद्ध निषेधाज्ञा जारी कर दी। राजा का मानना था कि धर्म कायरों का काम है। धर्म साहस और शक्ति को क्षीण करने का उपक्रम है। हिंसा से साहस बढ़ता है और साहस से शक्ति बढ़ती है।

राज्य में आये दिन शिकार के आयोजन होते रहते थे। राजा की प्रेरणा से पूरे राज्य में आबाल-वृद्ध सभी शिकारी बन गये। निशानेबाज शिकारियों में एक वहाँ का राजा भी था।

लाट नरेश (राजा) तुम्हारी मृत्यु भी शिकार करते हुए हुई। लाट के घने जंगलों में एक बार बवर्ची शेर नरभक्षी बन गया था। उस जंगल से सटे हुए छोटे-छोटे गांवों में आतंक फैल गया। राजा को इसकी सूचना मिलने पर उसने शिकार की योजना बनाई और दल-बल के साथ पहुंचा। तंबू लगाये गये, मचान बांधा गया, और नरभक्षी का पता लगाया गया। सन्ध्या के समय सज-धज कर राजा मचान पर चढ़ने की तैयारी कर रहा था। शेर झाड़ियों में छिपता-छिपता मचान के पास वाली झाड़ी में आ गया।

अवसर देखकर नरभक्षी शेर ने दहाड़ मारी। सारा जंगल थर्रा उठा। वे लोग संभलें, उससे पहले शेर बिजली की तरह झपटा, चढ़ रहे राजा को मूंह में दबोचा और घने जंगल में चला गया। कुछ प्रयत्न करे, उससे पहले वह दृष्टि से ओझल हो गया। इतने में सूर्यास्त भी हो गया। अंधेरे में राजा की तलाश करने की किसी की हिम्मत नहीं हुई।

राजा वहाँ से मरकर पांचवीं नरक में गया। वहाँ से पशु-पक्षियों की योनियों में भटकता रहा। अब पहली बार तुमने राजा के रूप में जन्म लिया है। उस समय बांधा हुआ मोहनीय कर्म अभी कुछ शेष है इसलिये श्रावक नहीं बन सका। राजन्! यहां से आयुष्य पूर्ण कर तूं देव बनेगा, फिर मनुष्य बनेगा, तब श्रावक बनेगा। वर्तमान में कर्मोदय है, उसे भोगना भी अनिवार्य है। निर्जरा धर्म की उपासना कर सकता है।

❑ ❑ ❑

(29)

काशी का राजकुमार जयसेन एक उद्धत राजकुमार था। वह शरीर से शक्तिशाली था। मन में अकड़न थी, टेढ़ापन था, क्रोध भी था। उसके साथी भी

वैसे ही थे। जयसेन गुरुकुल से पढ़कर आया। आने के बाद उसका अधिकतर समय उद्यानों, जंगलों में घूमने-फिरने या शिकार खेलने में ही व्यतीत होता था। राजा ने भी सोचा—अभी जिम्मेदारी से मुक्त है। यह अवस्था घूमने-फिरने की है। राजा की लापरवाही तथा मित्रों की उकसाहट ने राजकुमार को घुमक्कड़ एवं आवारा बना दिया।

एक बार वर्षा ऋतु में मुसलाधार वर्षा हुई। प्रात: राजकुमार ने कर्मचारियों को जंगल में ही भोजन की व्यवस्था करने का आदेश दिया। साथ में ही यह निर्णय लिया कि भोजन सामग्री यहाँ से नहीं लेंगे। जंगल में शिकार करेंगे और उसी के बने पदार्थ खायेंगे।

कर्मचारियों ने वैसी व्यवस्था कर दी। जंगल में तंबू लगा दिये गये। इधर राजकुमार आदि सभी शिकार के लिए घने जंगल में चले गये। वहाँ उन्होंने गर्भवती मादा सूअर को मारने का प्रयत्न किया। मादा सूअर ने भयभीत होकर दौड़ने की कौशिश की, पर उसका गर्भ गिर गया। उस तड़पते हुए बच्चे को छोड़कर उसे भागना पड़ा। उसको बहुत गुस्सा आया। उसने अपने झुण्ड में जाकर रोना रोया।

इधर उन्होंने तड़पते हुए सूअर के शिशु को मारा, कुछ खरगोशों को मारा और उन्हें तम्बू में ले आये। सबका मांस पकाया और खाने के लिए बैठे। इतने में सूअरों के टोले ने तंबू पर अचानक हमला कर दिया। कुछ को चीर डाला, कुछ को घायल कर दिया, तंबुओं को तहस-नहस कर दिया। कई नौकर भी घायल हो गये। अपना बदला लेकर सूअर जंगल में चले गये।

राजकुमार प्राण बचाकर भागा और एक वृक्ष पर चढ़ गया। ऊपर बैठा-बैठा सोचने लगा—हमने इस सूअर के बच्चे को मारा, इन्होंने हमारा बदला ले लिया। अगर किसी को नुकसान पहुंचाते हैं तो उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। वैर से वैर बढ़ता है। यह संतपुरुष कहते हैं, किन्तु आज मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है। आज मैं इस कुकृत्य को छोड़ दूंगा। चिन्तन की धारा बदलते ही राजकुमार विरक्त हो गया।

राजमहल में आते ही दीक्षा की तैयारी करने लगा। माता-पिता ने बहुत समझाया पर समझा नहीं। रात्रि में कुलदेवी ने आकर कहा—तुम्हारे अभी भोगावली कर्म शेष हैं, इसलिये तू थोड़े समय के बाद में दीक्षा ले लेना। अभी साधुत्व स्वीकार किया तो उसे छोड़कर पुन: गृहस्थी में जाना होगा।

विचारों के वेग में आया हुआ राजकुमार बोला—कृत कर्मों को तोड़ने के लिए ही तो साधु बनता है। यदि भोगने में ही लगा रहूंगा तब तोड़ूंगा क्या? मैं तो साधुत्व ग्रहण करूंगा।

देवी ने पुनः समझाते हुए कहा—राजकुमार! कुछ कर्म तोड़े जा सकते हैं, पर कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं, जिन्हें भोगना ही पड़ता है।

राजकुमार ने कहा—कुछ भी हो, जगदम्बे! मैं तो संयम ग्रहण करूंगा। आगे जो कुछ घटित होगा उसे देख लूंगा।

प्रातः राजकुमार ने आचार्य संयमभद्र के पास संयम स्वीकार किया। ज्ञानार्जन किया। प्रवचन कौशल बन गये। विचरते-विचरते मुनि जयसेन कटंगा नगर में पधारे। एक बार कटंगा नरेश ने एक नैमित्तिक से पूछा था, राजकुमारी प्रियंकरा की शादी कहाँ होगी? प्रत्युत्तर में नैमित्तिक ने कहा—कुछ दिनों बाद मकर संक्रान्ति के प्रथम दिन जयसेन मुनि आयेंगे, वे ही इसके पति होंगे। राजा के पूछने पर उसने मुनि का सारा जीवन भी बता दिया। राजा-राजकुमारी अभी प्रतीक्षा कर रहे थे।

मकर संक्रान्ति के प्रथम दिन मुनि जयसेन कटंगा पधारे। राजा को सूचना मिली। राजा ने सर्वप्रथम राजकुमारी को भेजा। प्रवचन सुनकर, मुनिजी के एकान्त में सेवा की और व्यथा सुनायी। शादी का अनुरोध किया तो मुनि ने आनाकानी की। राजकुमारी मुनि के शरीर से लिपट गई और आग्रहपूर्वक कहने लगी—अगर मेरे से शादी नहीं की, तो मैं आत्महत्या कर लूंगी।

मुनि विचलित तो हो गये—पर मुनि वेष त्यागने में हिचकिचा रहे थे। कुलदेवी ने प्रकट होकर कहा—राजकुमार! सोचते क्या हो? मुनि वेष छोड़ना पड़ेगा, अभी तो भोगावली कर्म बाकी है, उसे भोगना पड़ेगा। देवी के कहने से मुनि ने राजकन्या को स्वीकृति दी और मुनिवेष छोड़कर उसके साथ शादी की। शादी के साथ ही राजा ने उसे कटंगा का युवराज भी बना दिया। कटंगा नरेश के कोई लड़का नहीं था, केवल एक राजकन्या थी। युवराज जयसेन कुछ समय बाद राजा जयसेन बन गये। वे एकछत्र निष्कंटक राज्य भोगने लगे।

कई वर्षों के बाद आचार्य संयमभद्र के शिष्य इन्द्रियभद्र मुनि विचरते-विचरते कटंगा नगरी पधारे। राजा को सूचना मिली। इन्द्रियभद्र मुनि राजा के गुरुभाई तथा सहपाठी भी थे। अब वे चार ज्ञान के धनी बन गये थे। राजा अपने सहपाठी एवं गुरुभाई मुनि के दर्शनार्थ आया। प्रवचन सुना। त्याग और भोग का विश्लेषण सुनकर विरक्त हुआ।

राजा प्रवचन में बैठा-बैठा सोचने लगा—मैं इस भोग कीचड़ में इतने वर्षों तक सड़ता रहा, गंदगी से बचता रहा। यह मेरा सहपाठी अन्तर्मुखी बनकर अन्तर् जगत की यात्रा कर रहा है। अवधि ज्ञान, मनःपर्यवज्ञान जैसी विशिष्ट लब्धियों से युक्त है। मैं इन उपलब्धियों से वंचित रह गया।

राजा ने परिषद् में खड़े होकर संयम शिखर से गिरने का कारण पूछा? मुनि इन्द्रियगुप्त ने कहा—राजन्! यह सब पूर्वजन्म में कृत कर्मों का परिणाम है। तुम पूर्व जन्म में मलेश्वरम् के राजा थे। जब तुम राजा बने तब राज्य के कार्यों का निरीक्षण किया। उसी दिन वहां दीक्षा हो रही थी। तुमने दीक्षा पर रोक लगा दी और साथ ही यह घोषणा करवा दी—जो साधु पुनः गृहस्थी में आना चाहता हो, तो मैं उन्हें सम्पूर्ण सुख-सुविधायें प्रदान करूंगा, इस घोषणा से कई अस्थिर चित्त वाले मुनि होने के बजाय गृहस्थ हो गये। संयम धर्म का ह्रास हुआ। तुम्हारे चारित्र मोहनीय कर्म का कठोर बंधन हो गया।

एक बार तुम्हें अपने मित्र राजा के नगर में संतों का योग मिला। उनसे धर्म चर्चा हुई। त्याग का महत्त्व समझा, तब तुमने दीक्षा पर लगाई रोक को हटाया तथा लोगों को धर्म करने की प्रेरणा दी। दीक्षा पर लगाई रोक पर गहरा अनुताप किया, जिससे काफी कर्म हलके हो गये, किन्तु कुछ कर्म निकाचित बंध गये थे। वे नहीं टूटे, जिससे तुम्हें संयम पथ से हटना पड़ा।

राजा तुम्हारी संयम पर्याय उस समय मेरे से उज्ज्वल थी, किन्तु कर्मोदय से सब कुछ चौपट हो गया। अब भोगावली कर्म का अन्त आ चुका है। जागो! अपनी खोई सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करो।

राजा सुनकर प्रतिबुद्ध हुआ। अपने लड़के को राज्य का दायित्व सोंपकर, स्वयं महारानी सहित संयमी बनकर साधना में संलग्न बना।

❑ ❑ ❑

(30)

आयुष्य कर्म/नरक आयुष्य

सावत्थी नरेश भद्रबाहु अपने समय का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा था। आस-पास के राज्यों पर उसका अच्छा प्रभाव था। राजा भद्रबाहु ने सभी राजाओं का एक 'महिपति मण्डल' बनाया। वर्ष में एक बार अनिवार्य रूप से सभी एकत्र होते। सीमा सम्बन्धी या पारस्परिक कोई भी उलझन को सुलझाने के लिए राजाओं की कुछ समितियां बनी हुई थीं। उसमें प्रत्येक समस्या का समाधान निकाल लिया जाता था। अगर हल नहीं निकलता तो वार्षिक सम्मेलन में सुलझा लिया जाता था, किन्तु शस्त्र उठाना सर्वथा वर्जनीय था।

एक बार वार्षिक सम्मेलन सावत्थी नगरी में हुआ। सभी राज्यों के राजा-राजकुमार आये। संयोगवश उन्हीं दिनों में वहाँ सर्वज्ञ अंगधर पधारे। राजा भद्रबाहु भी सभी राजाओं के साथ दर्शनार्थ पहुंचा, प्रवचन सुना। तदनंतर राजा ने पूछा—इस अवसर्पिणी काल में सर्वाधिक समय नरक में व्यतीत करने वाला व्यक्ति कौन है? मैं उसकी कहानी कर्म-कहानी सुनना चाहता हूँ।

सर्वज्ञ मुनि ने कहा—राजन्! अवसर्पिणी काल के नौ करोड़ाकरोड़ सागर में मात्र बीस हजार वर्ष शेष हैं। इतने कालमान में सर्वाधिक समय नरक में बिताने वाला जीव अभी महाविदेह क्षेत्र में वासुदेव शंभुवाहन के वहाँ कुलकीलिक नाम का बड़ा चाण्डाल है। सजा प्राप्त व्यक्तियों को फांसी पर लटकाना या अंगच्छेद करना उसका विशेष दायित्व है। इस बार भी उसका आयुष्य तीसरी नरक का बंधा हुआ है। उसकी सम्पूर्ण नरक कहानी सुनाना संभव नहीं है परन्तु जीव बार-बार नरक में क्यों जाता है, यह मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ।

जब अवसर्पिणी का पहला आरा लगा, तब वह जम्मू द्वीप के पश्चिम महाविदेह में नरमंगल नामक राजा था। रानियों के साथ उपवन में क्रीड़ा के लिए गया। जाते समय उसकी दृष्टि उपवन में ध्यानस्थ खड़े मुनि पर पड़ी। देखते ही राजा को गुस्सा आया। रानियों द्वारा निषेध करने पर भी राजा ने अपनी म्यान से तलवार निकाली और मुनि के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उस अकृत्य के कारण सातवीं नरक का आयुष्य बंध गया। छः महीनों के अन्दर मरकर सातवीं नरक में गया।

सातवीं नरक से तैंतीस सागर का आयुष्य भोगकर पद्मला झील में विशालकाय मच्छ बना। एक बार दूसरे मच्छ ने इसके पास रहने वाली मछली को घेर लिया। यह देखते ही वह क्षुब्ध हो गया। उस झील में जितने भी नर मच्छ थे उन सबको मौत के घाट उतार दिया। अल्प समय में ही मृत मच्छों में सड़ांध पैदा हो गई। झील का पानी विषयुक्त हो गया। वह स्वयं तड़प-तड़प कर मर गया। मरकर पुनः सातवीं नरक में चला गया। इस प्रकार एक-एक नरक में कई बार चला गया।

वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर लम्बे समय तक तिर्यंच गति में भटका, फिर मनुष्य बना, महाविदेह क्षेत्र में पुरोहित पुत्र बना, किन्तु कुसंगति से दुर्व्यसनी हो गया। पारिवारिक जनों ने उसे घर से निष्कासित कर दिया। वहाँ से निकलकर डाकुओं के गिरोह में मिलकर कुछ समय बाद ही डाकुओं का सरदार बन गया। सरदार बनते ही अपने शहर पर डाका डाला। परिवार को लूटा ही नहीं, एक-एक को चुन-चुन कर मारा। अपने बूढ़े माँ-बाप को चौराहे पर भाले की नोक में पिरोकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये। हजारों व्यक्तियों की हत्या कर दी। वापस लौटते समय मुठभेड़ हो गई। मुठभेड़ में वह मारा गया। वहाँ से मरकर छठी नरक में गया।

नरक से निकलकर असंख्य भवों में परिभ्रमण किया। फिर मनुष्य योनि में धनपाल नाम का व्यवसायी बना। एक बार वह चार-छः महीनों के लिए भाणजे को सारा कार्य सौंपकर बाहर चला गया। भाणजे ने पीछे से मामा के सारे धन पर कब्जा कर लिया। धनपाल जब पुनः लौटा तो उसे गहरा सदमा लगा। उस आघात से वह कुछ समय बाद ही मर गया।

धन के प्रति आसक्ति होने के कारण वह सर्पयोनि में जन्मा। सर्वप्रथम भाणजे को काटा, फिर दो-चार दिनों में सभी को मार दिया। वीरान घर में राजा के आदमी धन लेने आये तो उन्हें भी काट खाया। दिन-रात धन की रक्षा में ही संलग्न रहता था।

एक बार तूफानी बारिश हुई। बारिश के पानी में धन के साथ-साथ सर्प भी बह गया और मर गया। मरकर पांचवीं नरक का नैरयिक बना।

सर्वज्ञ मुनि ने अन्त में कहा—राजन्! इस प्रकार वह व्यक्ति बार-बार नरक में जाता रहा है और अब भी वह नरक का ही मेहमान है नरक का आयुष्य बंधा हुआ है। इस अवसर्पिणी में यहीं व्यक्ति सबसे अधिक समय तक नरकगामी होगा।

❑ ❑ ❑

(31)

साहंजनी नगरी का महाराज महचंद था। उसके प्रधान का नाम था—'सुषेण'। वहाँ एक गणिका थी, जिसका नाम था—सुदर्शना। नगर में एक साहूकार था, जिसका नाम था—सुभद्र और सेठानी का नाम था—भद्रा। उसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रखा गया—शकटकुमार।

एक बार भगवान महावीर जनपद में विहार करते हुए उसी साहंजनी नगरी में पधारे। गौतम भिक्षार्थ नगर में गये तो वहाँ एक विचित्र दृश्य देखा—अनेक हाथी, घोड़ों और मनुष्यों के समूह में एक स्त्री के पीछे एक पुरुष को बांध रखा था। दोनों के नाक, कान कटे हुए थे। उन्हें वधभूमि में ले जाया जा रहा था। वे दोनों स्त्री-पुरुष जोर-जोर से क्रन्दन कर रहे थे—'हम अपने पापों के कारण मारे जा रहे हैं। कोई हमें बचाओ। हमारे पाप ही हमें खा रहे हैं।' यह दृश्य देख लोग कांप रहे थे।

गौतम स्वामी भगवान् के पास गये। गौतम ने सारी बात कहकर भगवान से पूछा—'प्रभु ऐसा उन्होंने पूर्वजन्म में कौनसा पाप किया था, जिससे यों मारे जा रहे हैं?'

भगवान ने कहा—'गौतम! छगलपुर नगर में एक सिंहगिरि नाम का राजा था।

वहाँ एक 'छणिक' नाम का कसाई था। वह कसाई धनवान तो था, पर था क्रूरकर्मी, पापात्मा और दुराचारी। अपने बाड़े में बकरे-बकरियों, गाय, भैंस, पाड़े, हरिण, मोर, मोरनियां आदि अनेक जानवरों को लाखों की संख्या में मारने के लिए इकट्ठा किये रखता। उन्हें मारकर मांस बेचता। औरों से मरवाकर मांस खरीदता। वह मांस का बहुत बड़ा क्रेता-विक्रेता था। पशुओं का वध करने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता। यों पापों में रह रहकर सात सौ वर्ष की आयु में वहाँ से मरकर वह चौथी नरक में गया। वहाँ से निकलकर वह इस नगर में सुभ्रद सेठ का पुत्र शकटकुमार हुआ है। कोढ़ में खुजलाहट हुआ ही करती है। शकटकुमार के माता-पिता बचपन में मर गए। अब इसे रोकने-टोकने वाला कौन? धीरे-धीरे वह सभी दुर्व्यसनों में लिप्त हो गया। नगर का प्रमुख जुआरी, व्यभिचारी तथा चोर कहलाने लगा तथा धीरे-धीरे सुदर्शना वेश्या के प्रेम में वह फंस गया। सुदर्शना और शकट के प्रेम का महामात्य सुषेण को पता लग गया। अमात्य ने शकट को धक्के देकर निकाल दिया और सुदर्शना को अपने यहाँ महलों में बुलवा लिया। शकट फिर भी नहीं संभला। मौका लगाकर वेश्या के पास वह पहुंच ही गया। प्रधान ने उसे रंगे हाथों पकड़ लिया। फिर क्या था! प्रधान ने राजा से कहा—'इसे कठोर से कठोर दण्ड दिया जाये।' बस, राजा और प्रधान के आदेश से उनके नाक-कान काटकर तर्जना देते हुए वधभूमि में ले जाकर मारने का आदेश हो गया। गौतम! तुम उन्हीं दोनों को देख आये हो।'

बात को आगे बढ़ाते हुए भगवान ने कहा—वह शकट कुमार 57 वर्ष की आयु में आज तीसरे पहर में लोह की गर्म भट्टी में होमे जाने के कारण मृत्यु को प्राप्त करेगा। आर्त-रौद्रध्यान में मरकर प्रथम नरक में पैदा होगा। अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करता रहेगा। अन्त में कर्मरहित होगा।

—विपाक सूत्र 4

❑ ❑ ❑

(32)

मांसाहार

हस्तिनापुर के महाराज 'सुनंद' के बहुत विशाल गौशाला थी, जिसमें बहुत-सी गायें सुख से रह रही थीं। उसी नगर में भीम नाम का गुप्तचर था। उसकी पत्नी का नाम था 'उत्पला'। उत्पला गर्भवती हुई। उसे गौ की गर्दन का मांस खाने का मानसिक संकल्प (दोहद) हुआ। परन्तु गौमांस मिले कैसे? वह दोहद-पूर्ति हेतु चिन्तातुर रहने लगी। भीम को अपनी पत्नी की मनोव्यथा का जब पता लगा, तब रात्रि के समय गौशाला में छिपकर गौ को मारकर उसका मांस ले आया। उत्पला ने

मद्य (शराब) के साथ उस मांस को बहुत शोक से खाकर अपना दोहद पूरा किया। सवा नौ महीने बाद उसके एक पुत्र पैदा हुआ। पुत्र ने पैदा होते ही इतनी जोर से ध्वनि की, जिसे सुनकर अनेक गौ आदि पशु संत्रस्त होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। इस कारण इसका नाम गौत्रासक (गोत्रासिया) पड़ गया। वह बड़ा होकर बहुत ही क्रूरकर्मी, अधर्मिष्ठ बना। नागरिक संत्रस्त हो उठे। राजा ने सोचा—यदि इसके कंधों पर कुछ जिम्मेदारी डाली जाए तो नगर के उत्पात कुछ कम हो जायेंगे। यह सोचकर राजा ने उसको अपना सेनापति बना दिया। तलवार हाथ लगने पर बंदर कब चंचल नहीं बनता? उसकी नृशंसता और बढ़ गयी। रात को प्रतिदिन तलवार लेकर गौशाला में जाता तथा पशुओं को मारकर मांस खाता। इस प्रकार पाप-कर्म करते हुए उसने दुस्सह कर्मों का बंध किया और मरकर दूसरी नरक में गया।

दूसरी नरक से निकलकर विजयमित्र सेठ के यहाँ सुभद्रा का अंगजात बना, पर माता ने उसे उकुरड़ी पर डलवा दिया। कुछ समय बाद उसे अपने पास पुनः मंगवा लिया। पर उसका नाम 'उज्झितकुमार' पड़ गया। बड़ा होकर उज्झितकुमार बुरी तरह से दुर्व्यसनों के चंगुल में फंस गया।

इसी नगर में 'कामध्वजा' नाम की वेश्या रहती थी। उसके यहाँ कामान्ध बना रहने लगा। यद्यपि वह वेश्या राजवेश्या थी। राजा के द्वारा प्रतिदिन उसे एक हजार स्वर्णमुद्राएं मिलती थीं, पर प्रेम अंधा होता है। वह भी उज्झितकुमार पर पूर्णतया आसक्त थी। संयोग ऐसा बना कि राजा की रानी के योनी-शूल की वेदना हो गई, इसलिए राजा ने उसे छोड़कर इस वेश्या को अपने अन्तःपुर में रख लिया तथा उसे अपनी उपपत्नी बना लिया। उज्झितकुमार देखता ही रहा। वेश्या पर आसक्त बना वह मौका पाकर राजमहलों में पहुंचकर वेश्या के साथ काम-क्रीड़ा करने लगा। राजा भी अकस्मात् उसी समय वहाँ पहुंचा। उसे वहाँ देखकर उत्तेजित हो उठा और तत्क्षण पकड़ने का आदेश दिया। उसे पकड़कर उसके नाक-कान कटवा दिये और बुरा हाल करके नगर में घुमाने लगे। राजपुरुष उसके शरीर के छोटे-छोटे टुकड़े करके उसको खिलाते, ऊपर से बुरी तरह से मारते हुए शहर के बाहर ले जा रहे थे।

उसकी यह दुरवस्था देखकर गौतम स्वामी ने नगर के बाहर बगीचे में विराजमान भगवान् महावीर को सारी बात सुनाकर पूछा—'भगवन् इसने ऐसे कौनसे क्रूर कर्म किये थे?' तब प्रभु ने पूर्वजन्म और इस जन्म में समाचरित—इसकी पाप कहानी सुनाई तथा यह भी फरमाया—अब केवल तीन प्रहर ही यह जीवित रहेगा। शूली पर से यह मरकर प्रथमनरक में जायेगा। वहाँ से संसार में अनेक चक्कर लगायेगा।

विपाक सूत्र, अध्ययन 2

❑ ❑ ❑

(33)

संयमासंयम

नंदिनी पिता सावत्थी नगरी में रहने वाला एक ऋद्धिसम्पन्न गाथापति था। नंदिनी पिता के पास बारह कोटि सोनैये तथा दस-दस हजार गायों के चार गोकुल थे। भगवान महावीर का वहाँ पदार्पण हुआ। नंदिनी पिता ने प्रबुद्ध होकर श्रावक के बारह-व्रत स्वीकार किये। पन्द्रह वर्ष तक श्रावक के व्रतों का निरतिधार पालन करके अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सौंप स्वयं सांसारिक कार्यों से अलग हो गया। श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं धारण करके सभी तरह से आत्माभिमुख होकर जीवन यापन करने लगा। अन्तिम प्रतिमा में जब उसे अपना तब क्षीणप्रायः लगने लगा, तब वर्धमान भावों से अनशन स्वीकार कर लिया। उसे एक महीने का अनशन आया। अन्त में अनशनपूर्वक समाधिमरण प्राप्त करके प्रथम स्वर्ग के अरुणाभ विमान में पैदा हुआ। वहाँ से महाविदेह में होकर मोक्ष को प्राप्त करेगा।

उपासक दशा-9

❑ ❑ ❑

(34)

बाल तप

'तामली' ताम्रलिप्ति नगरी में रहने वाला एक ऋद्धिसम्पन्न गाथापति था। भरा-पूरा परिवार, नगर में प्रतिष्ठा और सम्मान—कुल मिलाकर वह अपना सुखी और सफल जीवन व्यतीत कर रहा था। एक दिन मध्यरात्रि में उसके चिंतन ने मोड़ लिया। उसने सोचा—पूर्वजन्म में समाचरित शुभ कार्यों के साथ बंधने वाले पुण्यों की परिणतिस्वरूप बल, वैभव सम्पत्ति आदि सब कुछ यहाँ मिले हैं। मेरे लिए यह समुचित होगा कि मैं इनमें आसक्त न होकर इस जन्म में और भी अधिक साधना करूं।

यों विचारकर अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का सारा भार सौंपकर स्वयं तापसी दीक्षा स्वीकार कर ली। गेरुए वस्त्र, पैरों में खड़ाऊ, हाथ में कमण्डलु और केशलुंचन करके प्रणामा प्रव्रज्या स्वीकार की और वन की ओर चला गया। बेले-बेले की तपस्या, सूर्य के सम्मुख आतापना लेना आदि घोर तप प्रारम्भ किया, जिसमें कठिनतम कार्य

यह किया कि पारणे के दिन पकाये हुए चावलों के अतिरिक्त कुछ नहीं लेना। उन चावलों को भी इक्कीस बार पानी में धोकर खाना।

यों तामली तापस ने यह तप लम्बे समय तक चालू रखा। इस ताप से शरीर अस्थि-कंकाल मात्र रह गया। जब उसे लगने लगा कि अब मेरा शरीर अधिक दिन नहीं टिक सकेगा, तब पादपोपगमन अनशन स्वीकार कर लिया।

उन दिनों उत्तर दिशा के असुरकुमारों की राजधानी बलिचंचा नगरी में कोई इन्द्र नहीं था। पहले वाला इन्द्रच्यवित हो गया था। वहाँ के देव ने तामली तापस को निदान कराके अपने यहाँ उत्पन्न होने को ललचाया। अत: विशाल रूप में वहाँ आये और अपने यहाँ इन्द्ररूप में उत्पन्न होने के लिए निदान करने की प्रार्थना की। परन्तु तामली तापस उनकी प्रार्थना को सुनी-अनसुनी करके निष्काम तप में लीन रहा। देवगण निराश होकर अपने-अपने स्थान पर चले गये। इधर तामली तापस आठ हजार वर्ष की आयु को पूर्ण करके दूसरे स्वर्ग में इन्द्र के रूप में पैदा हुआ। यह है बाल तप से भी देवायु बंध का उदाहरण।

—भगवती श. 3/1

❑ ❑ ❑

(35)

देव आयुष्य

आंबावती नगरी के श्रावक विजयपाल के चार पुत्र थे। चारों विनीत, अध्ययन में दक्ष और व्यापार में कुशल थे। सेठ की प्रेरणा से चारों धर्मप्रिय बन गये। पिता द्वारा कार्य संभाल लेने के बाद श्रावक विजयपाल लगभग निवृत्त हो गया। वहाँ सर्वज्ञ ज्ञानभानु अणगार पधारे। सेठ विजयपाल ने पुत्रों सहित दर्शन किये। प्रवचन सुना।

प्रवचनोपरान्त सेठ ने पूछा—मुनि प्रवर! मेरे ये चारों पुत्र जब गर्भ में आये, तब इनकी माता ने हर बार स्वप्न देखा। चारों पुत्रों के गर्भ में आने के समय क्रमश: देव-भवन, ग्रह मण्डल, व्यन्तर-भवन और देव विमान का स्वप्न देखा था। इसका क्या कारण है?

मुनि विजयपाल! ये चारों जहाँ-जहाँ से आये हैं वहाँ-वहाँ के स्वप्न इनकी माता ने देखा है।

विजयपाल—क्या, ये देवगति से आये हैं?

मुनि—हां, विजयपाल!

चारों पुत्रों ने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! हमने पिछले जन्म में ऐसा क्या किया? जिससे हम अलग-अलग देवयोनियों में देव बनें। कृपा कर आप हमारी जिज्ञासा को शांत करें।

भवनपति

ज्ञानभानु अणगार ने कहा—तुम्हारे में सबसे बड़ा भाई युगकांत पूर्वजन्म में कावेरी नदी के तट पर संन्यासी बन तप-साधना में संलग्न था। शरीर से श्यामवर्ण और अभद्र रूप होने से पारिवारिकजन इनकी उपेक्षा करते थे। उपेक्षा भाव से तंग आकर घर छोड़ दिया और कावेरी नदी के किनारे झोपड़ी बना कर वहां तप साधना करने लग गया। लोगों में इसकी तपस्या की व्यापक प्रतिक्रिया हुई। पहले उपेक्षित था, और अब तपस्या के कारण उचित सम्मान मिलने लगा। अन्त में तपस्या में ही मरा और भवनपति देवों में सुवर्णकुमार में महर्द्धिक देव बना। वहाँ से च्यवकर यह तुम्हारा बड़ा भाई बना है।

ज्योतिष्क

तुम्हारा दूसरा भाई विश्वकान्त अन्तरवैराग्य से निर्ग्रन्थ परम्परा में प्रियगुप्त नामक साधु बना। शास्त्रों का विशेष अध्ययन किया। वक्तृत्व कला में दक्ष होने के कारण आचार्यश्री ने इसको बहिर्विहारी बना दिया।

विचरते-विचरते वे लोमा-नगरी पधारे। वहाँ के लोग श्रद्धावान् थे, किन्तु ज्ञानवान् नहीं। वहाँ प्रियगुप्त मुनि का अच्छा प्रभाव रहा। धीरे-धीरे लोगों से रागात्मक अनुबंध भी होने लगा। साताकारी क्षेत्र होने से वहाँ चातुर्मास किया। चातुर्मास होने से संतों के साथ वहाँ के लोगों का रागात्मक अनुबंध और अधिक प्रगाढ़ हो गया।

लोगों की प्रार्थना पर प्रियगुप्त मुनि ने स्थान आदि सभी सुविधाओं को देखकर वहीं रहने का निर्णय कर लिया। अब उनको कौन समझाये? आचार्यश्री काफी दूर थे। उनको समझा सके, ऐसा कोई दूसरा साधु नहीं था। इस कारण प्रियगुप्त जीवन भर वहाँ जमे रहे। फिर भी उनकी प्रभावना में न्यूनता नहीं आई, साधुत्व की चर्या में अन्य शिथिलता नहीं आने दी। उनके सहवर्ती साधु भी उन जैसे ही हो गये थे। नियमविरुद्ध एक ही स्थान पर रहने से प्रियगुप्त संयम विराधक हो गये, जिससे वहाँ से मरकर ज्योतिष-मण्डल में शुक्रग्रह के अधिपति बने। वहाँ से ज्योतिष-देवायु भोगकर तुम्हारा दूसरा भाई विश्वकान्त बना है।

व्यंतर जाति

ज्ञानभानु अणगार ने आगे कहा—तुम्हारा तीसरा भाई शिवकान्त सरयू की घाटी में चंगन नाम का आदिवासी पुत्र था। कर्मयोग से वह बदशक्ल और मंदबुद्धि वाला था। परिवार इसे वहीं छोड़कर कहीं दूर आजीविका के लिए चल पड़ा। यह अभागा वहीं रोता रहा। घाटी के लोगों ने उसे भीख मांग-मांग कर आजीविका चलाने की सलाह दी।

चंगन भीखारी बन गया। घाटी में दूर-दूर भीख-मांगने के लिए जाता था, फिर भी वह अतृप्त रहता। वर्षा के समय नदी-नालों में पानी आने से उसे दो-दो दिन तक भूखा रहना पड़ता था। इस प्रकार उसके अज्ञान का कष्ट काफी हुआ। अकाम निर्जरा भी होती रही। वहाँ से मरकर यह व्यन्तर देवों में महोरग जाति का देव बना। वहाँ का आयुष्य पूर्णकर यह तुम्हारा तीसरा भाई बना।

वैमानिक देव

सर्वज्ञ मुनि ने कहा—यह तुम्हारा चौथा भाई मणिकांत पिछले जन्म में वैशाली नगरसेठ का पुत्र 'कुलपुत्र' था। सेठ के परिवार में यही सबसे बड़ा था। छोटे भाई का जन्म होने से पहले इसे परिवार का बहुत प्यार मिला। बचपन में ही इसे धर्म का योग मिलने से आचार्य गुणभद्र सूरि के पास दीक्षित हो गया। ज्ञान के क्षेत्र में तीव्रता से आगे बढ़ते हुए आगम का अधिकृत वेत्ता बना। साध्वाचार के प्रति पूर्ण जागरूक था। गुरु आज्ञा से सुदूर क्षेत्रों में जाकर धर्म का काफी प्रचार-प्रसार किया। सब प्रकार से योग्य होते हुए भी पदलिप्सा से दूर और अहंकार से अछूता रहा।

आचार्य ने इसको योग्य समझकर युवाचार्य बना दिया। आचार्य बनने के बाद भी अहंकार से दूर रहा। संघ की सारणा-वारणा करता रहा। इसके आचार्यकाल में धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। वहाँ से अनशनपूर्वक समाधिमरण प्राप्त किया और चौथे देवलोक में सामानिक इन्द्र बने। स्वर्गलोक का आयुष्य भोगकर यह सबसे छोटा भाई मणिकान्त बना है।

अत: जिन-जिन स्थानों से ये आये हैं वहाँ के दृश्यों को इनकी माता ने अपने स्वप्न में देखे थे।

❑ ❑ ❑

(36)

नाम कर्म

काशी राज्य की राजसभा जुड़ी हुई थी। राजा ने सभासदों से जानना चाहा कि मुझे राजदूतों की नियुक्ति करना है, उनमें कौन-कौन से गुण होने चाहिए? लोगों ने अनेक गुण बताये। उसी सभा में एक वृद्धमंत्री बैठा था। उसने कहा—राजन्! सब कुछ होते हुए भी यशस्वी होना चाहिए।

राजा—बात तो ठीक है पर इसका पता कैसे चले?

मंत्री—राजन्! जो सर्वगुणसम्पन्न हो। उन दो-चार व्यक्तियों को कहीं अलग भेजकर, उनकी कार्य की सफलता-असफलता की परीक्षा कर राजदूत के पद की नियुक्ति होनी चाहिए।

राजा ने विमलवाहन और सोमभद्र इन दो युवकों को विभिन्न कसौटियों में कसते हुए—ये यशस्वी हैं या नहीं? इसकी परीक्षा के लिए दोनों को क्रमशः कौशल और कलिंग देश भेजा। उपहार स्वरूप दोनों देश के राजाओं को कई वस्तुएं भेजी, उनमें एक चांदी की डिब्बी में चूना भरा हुआ भेजा।

विमलवाहन कौशल देश की राजधानी पहुंचा और वहाँ के राजा से मिला। प्रारम्भिक शिष्टाचार के बाद विमलवाहन ने अपने राजा के उपहार भेंट किये। राजा ने एक-एक वस्तु को स्वयं ने भी देखा और जनता को भी दिखाया। देखते-देखते जैसे ही चूने वाली डिब्बी हाथ में आयी, सब ने पूछा—यह किसलिए? इतने में किसी ने कह दिया—'चूना भेजकर काशी नरेश ने संकेत दिया है कि यदि हमारे साथ लड़ाई करोगे तो सबके चूना लगा देंगे। बस! इतना कहने के साथ ही सब भड़क उठे। विमलवाहन ने इसे स्पष्ट करने की बहुत कोशिश की, पर असफल रहा। दोनों राजाओं में मित्रता समाप्त हो गई। विमलवाहन के मुख पर ही वह चूना लगाया और युद्ध की घोषणा कर वहाँ से उसे निकाला गया। विमलवाहन ने काशी नरेश को सारी स्थिति बतायी। सभी ने जान लिया कि यह यशस्वी नहीं है।

दूसरा सोमभद्र कलिंग देश की राजधानी पहुंचा। राजा से मिला। औपचारिक बातचीत के पश्चात् उपहार स्वरूप वस्तुएं भेंट कीं। राजा अपने मित्र राजा के उपहार देख कर बहुत प्रसन्न हो रहे थे और वे उपहार राजसभा के सदस्यों को भी दिखा रहे थे। देखते-देखते चूने वाली डिब्बी हाथ में आई, तो सब आश्चर्यचकित हो इसके भेजने का कारण ढूंढ़ने लगे। इतने में पास में बैठे एक मंत्री ने कहा—''यह मैत्री का

चूना है। कहीं आशंकाओं की दरार पड़ी हो तो उसे पाटकर इससे पलस्तर करने के लिए काशी नरेश ने भेजा है।''

यह सुनते ही सब प्रसन्न हुए। सोमभद्र को कुछ कहना ही नहीं पड़ा। राजा ने सोमभद्र को अपने गले लगा लिया। उसे खूब सम्मान दिया। अपने निजी अतिथिगृह में ठहराया। काफी दिनों तक सोमभद्र को वहाँ रखा। सोमभद्र ने पूरे कलिंग देश का भ्रमण किया।

कलिंग नरेश ने सोमभद्र को प्रशस्ति पत्र लिखा तथा बहुमूल्य पुरस्कार दिये। काशी नरेश के लिए भी काफी उपहार दिये। साथ उसने अपने हस्ताक्षर से युक्त पत्र भी दिया जिसमें काशी राज्य की कल्याणकारी योजनाओं में भारी सहयोग करने का आश्वासन दिया। काशी नरेश ने जब यह सब कुछ सुना, तब सभी ने एक स्वर में निर्णय दिया—यह यशस्वी है। राजा ने उसे योग्य समझकर मुख्य राजदूत नियुक्त कर दिया।

उसी महीने काशी में चार ज्ञान के धारक मुनि विद्युतप्रभ पधारे। प्रवचन के पश्चात् राजा ने पूछा—मुनिप्रवर! विमलवाहन और सोमभद्र दोनों समान शिक्षित होते हुए भी यह अन्तर क्यों? एक युद्ध की घोषणा लेकर आया है और दूसरा राज्य के लिए उपयोगी कार्य करके आया है।

मुनि ने कहा—राजन् यह तो नाम कर्म का नाटक है। शुभ और अशुभ नामकर्म कैसे नचाता है। इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

ये दोनों पूर्वभव में महान् विद्वान थे। विमलप्रज्ञ विशालप्रज्ञ नाम से अपने-अपने राज्य में ख्यातिप्राप्त विद्वान थे। इन दोनों के नगर में मुनि श्रुतबाहु पधारे। पहले विमलप्रज्ञ के नगर में पधारे, प्रवचन हुआ, सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए। फिर भी लोगों ने विमलप्रज्ञजी को पूछा—संत कैसे हैं? इनके पास जाना उपयोगी है या नहीं। पंडितजी ने बहुत गुणगान करते हुए कहा—ऐसे साधु हैं कहाँ? उत्कृष्ट कोटि के बहुश्रुत साधु हैं, इनके पास जितना अधिक समय लगाओगे, जीवन सार्थक होगा। मुनि के प्रवासकाल का लोगों ने अच्छा लाभ उठाया। पण्डितजी के भी शुभ नाम कर्म आदि की पुण्य प्रकृतियों का बंध हुआ।

वहाँ से विहार कर मुनि श्रुतबाहु विशालप्रज्ञ के नगर में पधारे, प्रवचन सुना, फिर भी पण्डित विशालप्रज्ञ से मुनिजी के बारे में पूछा—संत कैसे हैं? विशालप्रज्ञ ने कहा—देखो, ऊपर से अच्छे नजर आते हैं, वक्तृत्व कला में दक्ष हैं। किन्तु मुझे अंदर से दंभी लगते हैं। क्योंकि इनकी छाती पर केश नहीं हैं, अत: ये दम्भी मायावी होने चाहिए। कान छोटे हैं अत: यशस्वी भी नहीं हैं। यहाँ संत आते ही रहते हैं, कोई विशिष्ट ज्ञानी आयेंगे तब तुमको बतला दूंगा, ठोस ज्ञान इनके पास नहीं है।

लोग पंडित जी की बातों में आ गये। मुनि के शरीर को देखा तो छाती पर केश नहीं थे, कान भी कुछ छोटे थे, बस क्या था पण्डित जी के बात की हृदय में पक्की धारणा कर ली। उन्हें क्या पता कि मुनि के शरीर में अन्य कई लक्षण श्रेष्ठतम हैं। मानो लोगों ने तो मुनिजी के पास जाना ही बंद जैसा कर दिया। उस समय विशालप्रज्ञ के ज्ञानी की अवमानना, तथा निंदा करने से अशुभ नाम तथा नीच गोत्र कर्म का भारी बंध हो गया। विशालप्रज्ञ पंडित ही यह विमलवाहन है और विमलप्रज्ञ पण्डित ही यह सोमभद्र है। दोनों ही पिछले जन्म में बांधे हुये शुभ-अशुभ कर्मों को यहाँ भोग रहे हैं।

❑ ❑ ❑

(37)

गोत्र कर्म ऐश्वर्य विशिष्टता

मथुरा के नगरसेठ विश्ववाहन के यहां एक गृह नौकर रहा करता था। बहुत परिश्रमी था। उसका नाम था—अंगभान। एक दिन तपस्वी विद्याचरण मुनि सेठ के घर गोचरी पधारे। परिवार के सभी सदस्य अकल्पनीय थे, सचित्त जल, वनस्पति आदि से संस्पृष्ट थे। तब नौकर अंगभान के हाथ से मुनि जी ने भिक्षा ग्रहण की। वह इस दान देने का अवसर मिल जाने पर बहुत प्रसन्न था। उसका रोम-रोम खिल उठा। मुनि जी ने वहीं मकान में एक तरफ बैठकर पारणा किया। अंगभान बार-बार मुनिजी को भावना भाता रहा।

मुनिजी ने कहा—कुछ नहीं चाहिए। तुम यहाँ क्या करते हो? अंगभान ने अपनी पूरी दिनचर्या बतायी। मुनिजी ने प्रतिदिन दर्शन करने की प्रेरणा दी। अंगभान ने वह नियम स्वीकार कर लिया। यदि नगर में मुनि हो, तो प्रतिदिन उनके दर्शन किये बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा।

नियम के अनुसार वह प्रतिदिन दर्शन करने जाने लगा। जितने भी मुनिवृंद होते, उन सबके अलग-अलग दर्शन करता था। इससे सेठ के कार्य में कुछ विलम्ब होना स्वाभाविक था। नौकर का यह क्रम सेठ को पसन्द नहीं आया। सेठ सोचने लगा—नौकरों का क्या धर्म है? उन्हें तो अपने काम से मतलब है।

सेठ ने अंगभान को चेतावनी देते हुए कहा—अगर हमारे कार्य में विलम्ब होगा तो हमें बर्दास्त नहीं है। संत दर्शन का नियम तुम जानो। काम में विलम्ब होने पर तुम्हारे स्थान पर दूसरा आ सकता है। मेरी दृष्टि में तुम्हें इस धर्मोपासना के चक्कर में नहीं फंसना चाहिए। आज नहीं तो कल नियम को छोड़ना पड़ेगा।

अंगभान ने कहा—सेठजी! मेरे जिम्मे जो काम है, उसे समय पर कर दूंगा, पर संतदर्शन हमेशा करूंगा। उसे मैं नहीं छोड़ सकता।

सेठ—मुझे तो काम से मतलब है। बाकी तू जाने तेरा काम जाने। मैं भी देखता हूँ। इन दोनों को कब तक निभा पाता है।

बेचारा अंगभान कुछ पसोपेश में पड़ गया। फिर भी संतदर्शन नियमित करता रहा। रात्रि में जल्दी उठता और संतदर्शन के लिए चल पड़ता था। सब संतों का अलग-अलग और विधिवत् दर्शन करता था। कभी अधिक काम होता तो वह रात्रि में 4-5 बजे दर्शनार्थ चला जाता था।

एक बार घर में कोई उत्सव था। काम अधिक था। रात्रि में बारह बजे सोया। तीन बजे पुनः काम में लगना था। अंगभान ढाई बजे उठकर तेजगति से संतदर्शन के लिए चल पड़ा। राज्य की पुलिस मुख्य-मुख्य मार्गों एवं स्थानों पर गस्त लगा रही थी। उन्होंने अंगभान को चोर समझा और दर्शन करके वापस आते समय उसे गिरफ्तार कर लिया। उसे कारावास में सख्त पहरे के बीच बंद कर दिया गया। प्रातः राजा के समक्ष उपस्थित हुआ।

राजा ने इसे देखकर सोचा—यह चोर तो नहीं लगता। इसके चेहरे पर सात्त्विकता छलक रही है। इसके हाथ पुरुषार्थ के प्रतीक लगते हैं। पुलिस ने इसे चोरी के अभियोग में गिरफ्तार कर लिया है। बात कुछ समझ में नहीं आ रही है।

राजा ने पूछा—चोरी तुमने की? कहाँ की? कौनसी वस्तु चुराई? सच-सच बताओ। अंगभान सोचने लगा—अब क्या बोलूं। चोरी नहीं की, ऐसा कहने से ये यमदूत (पुलिस) खड़े हैं, पीट-पीटकर चमड़ी उधेड़ देंगे। चोरी की, ऐसा कहने से आगे आने वाले प्रश्नों का जवाब एवं प्रमाण देना पड़ेगा। न देने पर फिर मार खानी पड़ेगी। राजा ने पूछा—सच-सच बता भयभीत क्यों होता है?

अंगभान ने सारी बात यथावत् बता दी। राजा ने सेठ विश्ववाहन को बुलाकर पूछा—सेठ ने कहा राजन्! यह मेरा नौकर है। बिना संतदर्शन किये मेरा काम भी नहीं करता। राजा ने इसे छोड़ दिया। हवेली आते ही सेठ ने इसे नौकरी से हटा दिया। अब अंगभान खुला काम करने लगा। उससे होने वाली आय से गुजारा चलाने लगा। संत-दर्शन की अपनी प्रतिज्ञा जीवनपर्यन्त निभाता रहा। कभी प्रमाद नहीं किया।

अंगभान जब मरा, तो उसके शरीर का संस्कार करने वाला कोई नहीं था। राजकर्मचारी आये, उसके शरीर को श्मशान में ले जाने लगे, तब यक्ष देवों ने उसके शरीर पर पुष्पवृष्टि की। अंगभान की जय-जयकार करते हुए उसकी स्तुति करने लगे। यह सब सुनकर, देखकर लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। राजा, नगरसेठ, सेठ विश्ववाहन, सेनापति आदि विशिष्ट लोग तथा हजारों संभ्रांत नागरिक अब इसकी शवयात्रा में आ पहुंचे।

देवों ने संतदर्शन से बंधे हुए पुण्य का जिक्र किया और कहा—उच्च गोत्र कर्म बंध के कारण अंगभान देवभव के बाद महाविदेह के क्षेत्र में जयभद्र नाम का चक्रवर्ती होगा। इसके जन्म के साथ इसकी देवता सेवा करेंगे। इसकी वाणी में इतना आकर्षण होगा कि जो कुछ कह दिया, उसके पीछे दुनिया लग जायेगी। यह अतिशयधारी पुरुष होगा। जयभद्र के बड़े होने पर उसकी आयुधशाला में चक्ररत्न पैदा होगा। जब वह विजय-यात्रा पर जायेगा, तो वह विजय-यात्रा सद्भावना यात्रा जैसी बन जायेगी। बत्तीस हजार राजा उसकी आज्ञा में रहेंगे। कोई भी राजा लड़ने नहीं आयेगा। पूरे भूमण्डल पर एकछत्र साम्राज्य स्थापित होगा।

चक्रवर्ती जयभद्र का शरीर स्वस्थ रहेगा। यह सदा जवान जैसा ही रहेगा। ये सब पुण्य इसके संतदर्शन से ही बंधे हैं।

चक्रवर्ती का पद भोगकर साधुत्व स्वीकार करेगा। संयम ग्रहण करने के बाद उग्र तपस्या और विशुद्ध ध्यान में लीन होगा। अनशनपूर्वक मरकर सातवें देवलोक में महाऋद्धिक देव बनेगा। संतदर्शन से ही इसे उच्च गोत्र का बंध हुआ और पुण्य से यह देव और चक्रवर्ती का पद प्राप्त करेगा।

❑ ❑ ❑

(38)

ऐश्वर्यहीनता

वासुदेव युगबाहु त्रिखंडाधिपति बनकर शतद्वारा नगरी आये, तब शतद्वारा के नागरिकों ने अपने राजा को मोतियों से बधाया, दीपमाला जलाई, बड़े हर्ष व उल्लास के साथ वासुदेव का प्रवेश करवाया। युगबाहु प्रसन्न था। सोलह हजार देशों पर पूर्ण रूप से आधिपत्य जम चुका था। सभी राजा यह मानने लगे—युगबाहु पुण्य पुत्र है।

वासुदेव को एक दिन सूचना मिली—पूर्व दिशा के उपवन में जंघाचरण मनःपर्यवज्ञानी मुनि शक्तिगुप्त पधारे हुए हैं। वासुदेव अपने बड़े भाई बलदेव श्रीमणीबाहु के साथ दर्शनार्थ आये। प्रवचन सुना। प्रवचन-विषय था—जो कुछ अच्छा या बुरा व्यक्ति को प्राप्त होता है वह सब कर्मजन्य है, पुण्य की उपलब्धि है—सुविधा, यश और प्रतिष्ठा। पाप की उपलब्धि है—दुविधा, अभाव, अपयश, दीनता।

प्रवचन समाप्ति के बाद वासुदेव युगबाहु ने पूछा—मुनिप्रवर! आज की इस परिषद् में ऐसा कोई व्यक्ति है क्या, जो बहुत उच्च एवं ऐश्वर्यशाली स्थान से कर्मों को बांधकर अभी निम्न श्रेणी में आ गया है या अभाव में दुःख झेल रहा है।

मुनि शक्तिगुप्त ने कहा—वासुदेव! इस परिषद् में एक जीव ऐसा है, जो उच्च गोत्र से नीच गोत्र में आ गया है। वह जीव है तुम्हारा पादुकारक्षक अंगभक्त। यह पिछले जीवन में महाविदेह क्षेत्र में छः खण्ड का अधिपति चक्रवर्ती का ज्येष्ठ पुत्र विद्युत्वाहन था। इसे अपने ऐश्वर्य पर बहुत अहंकार था। इतना अहं तो इसके पिता को भी नहीं था। यह अपने राजघराने के अलावा सबको तुच्छ मानता था। बड़े-बड़े राजाओं से तो वह चप्पलें उठवाता था।

विद्युत्वाहन ने मंत्री-परिषद् को भी अपने नियंत्रण में कर रखा था। पिता का प्रेम अधिक होने से वह अधिक उच्छृंखल बन गया था। सभी यह समझने लगे—वास्तविक राज्य चक्रवर्ती नहीं करता उसका पुत्र करता है। इसलिए उसकी चापलूसी अनिवार्य है।

अहं में विद्युत्वाहन इतना उन्मत्त हो गया कि वृद्ध, अनुभवी, विद्वान कोई भी क्यों न हो? यदि उनसे अहं की पुष्टि नहीं होती तो उन्हें भी तत्काल अपमानित कर देता था। उन्हें ऐसा राजनीतिक धक्का देता कि वह दर-दर की ठोकरें खाने वाला बन जाता था। उसे कुछ चापलूस मित्र भी मिल गये, जो उसे उकसाते रहते थे। विद्युत्वाहन हजूरों की भीड़ में अपनी शक्ति भूल गया। चापलूसों की चाटुकारिता में आकर अपने व्यक्तित्व का गलत अनुमान लगाने लगा।

एक बार वह अपने साथियों के साथ जंगल में घूमने गया। उस जंगल में एक तपस्वी संन्यासी बैठा था। वज्रवाहन ने देख लिया और सोचने लगा—मेरे आने पर भी यह संन्यासी खड़ा नहीं हुआ, मेरा सत्कार नहीं किया। बस इतने मात्र से क्षुब्ध हो उठा, मेरा सम्मान न करने वाले को धरती पर जीने का अधिकार नहीं है। इस संन्यासी को ऐसी शिक्षा दूं, यह जीवन भर याद रखे।

वज्रवाहन ने घोड़े को संन्यासी की तरफ मोड़ा। संन्यासी शान्तभाव से बैठा था। उसने घोड़े को संन्यासी के ऊपर चढ़ा दिया। संन्यासी की तूंबी टूट गई तथा कुछ चोट भी आई। संन्यासी इस अप्रत्याशित घटना से हतप्रभ रह गया। उसने राजकुमार को देखा, तो वह अपने साथियों के साथ कुटिलता से हंस रहा था। इसे देखकर संन्यासी को गुस्सा आया, किन्तु वह खामोश रहा।

जब पुनः उसको अपनी तरफ आते देखा, तो चेतावनी देते हुए संन्यासी ने कहा—खबरदार! इधर आ गये तो, एक बार क्षमा कर सकता हूँ। दूसरी बार अपराध क्षमा करने की मेरी क्षमता नहीं है। अब चला जा यहाँ से!

संन्यासी के इतना कहते ही राजकुमार वज्रवाहन तिलमिला उठा और सोचने लगा—इसकी इतनी हिम्मत कैसे हो गई? मुझे ऐसा कहने वाला यह है कौन? ऐसे व्यक्ति को जीवित रखना मानवीय अपराध है। अभी इसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। साथियों ने इसे और भड़का दिया। वह संन्यासी की तरफ घोड़े को आक्रामक

रूप में लाने लगा। योगी ने पुनः चेतावनी दी। किन्तु उसे टोकना आग में घी डालना हुआ। संन्यासी गुस्से में तत्काल उठा, सात हाथ पीछे हटा। संन्यासी को पीछे हटते देखकर सब मजाक उड़ाने लगे, राजकुमार ने कहा—कहीं पर जा, अब तो मारकर ही दम लूंगा।

संन्यासी ने तेजोलब्धि का प्रयोग किया। मुख से आग उगलने लगा। सामने आग ही आग फैल गई। देखते-देखते राजकुमार सहित उसके अनेकों साथी आग की लपेट में आकर स्वाहा हो गये।

राजकुमार के दो साथी कुछ पीछे थे। उन्होंने घोड़ों को दौड़ाया, शहर में आये। चक्रवर्ती को सूचना दी। चक्रवर्ती संन्यासी के पास आया, क्षमा मांगी। तब कहीं जाकर संन्यासी शान्त हुआ। अग्निप्रकोप मिटा।

चार ज्ञान के धारक मुनि शक्तिगुप्त ने अन्त में कहा—विद्युत्वाहन वहाँ से मरकर चौथी नरक में गया। भारीवेदना को भोगकर नरक से निकला और यह तुम्हारा पादुकारक्षक अंगभक्त बना है। पूर्व जन्म में नीच गोत्र कर्म का बंधन किया। जिसके फलस्वरूप यह अनैश्वर्यशील तथा दीन बना है।

❑ ❑ ❑

(39)

'ढंढ़णकुमार' श्रीकृष्ण की ढंढ़णा नामक रानी के पुत्र थे। वे भगवान् नेमिनाथ के उपदेश से प्रभावित होकर संसार से विरक्त हो उठे और पिताश्री की आज्ञा लेकर साधु बने। परन्तु पता नहीं कैसा गहन अन्तराय कर्म का बंधन था कि उन्हें आहार-पानी की प्राप्ति नहीं होती थी। किसी दूसरे साधु के साथ चले जाते तो उन्हें भी नहीं मिलता था।

एक बार ढंढ़णमुनि ने अभिग्रह कर लिया कि मुझे मेरी लब्धि का आहार मिलेगा तो आहार लूंगा अन्यथा नहीं। भिक्षा के लिए प्रतिदिन जाते, पर आहार का सुयोग नहीं मिलता। छः माह बीत गये। शरीर दुर्बल हो गया।

एक बार ढंढ़णमुनि भिक्षार्थ गये हुए थे। श्रीकृष्ण ने भगवान नेमिनाथ से प्रश्न किया—भगवन्! 18000 साधुओं में कौनसा मुनि साधना में सर्वश्रेष्ठ है? भगवान नेमिनाथ ने ढंढ़णमुनि का नाम बताया और उनके समता की सराहना की तथा कहा कि उसने (ढंढ़णमुनि ने) अलाभ परीषह को जीत लिया।

श्रीकृष्ण उनके दर्शन करने को उत्सुक हो उठे। भिक्षार्थ भ्रमण करते ढंढ़णमुनि के दर्शन किये, पुनः पुनः स्तवना की।

महाराज श्रीकृष्ण को यों स्तवना करते पास वाले मकान में बैठे एक कंदोई ने देखा और सोचा—हो न हो ये पहुंचे हुए साधक हैं, जिनकी श्रीहरि जैसे सम्राट् भी यों स्तवना करते हैं। मुझे इन्हें भोजन देना चाहिए। यों विचार कर भक्तिभाव से अपने घर ले गया।

मुनि ने पूछा—तू, जानता है मैं किसका शिष्य हूँ? किसका पुत्र हूँ?

कंदोई ने कहा—मुझे कुछ भी पता नहीं है। मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि आप साधु हैं।

मुनि ने अपनी लब्धि को ही जानकर भिक्षा ले ली। भिक्षा लेकर मुनि भगवान के पास आये। भगवान ने रहस्योद्घाटन करते हुए फरमाया—'भद्र'! यह भिक्षा तुम्हारी लब्धि की नहीं, अपितु श्रीकृष्ण की लब्धि की है। अतः यह भिक्षा तेरे अभिग्रह के अनुसार तो तेरे लिए अग्राह्य है।

ढंढ़णमुनि फिर भी समाधिस्थ रहे। प्रभु से पूछा—प्रभो! मैंने ऐसे कौनसे कर्मों का बंधन किया था, जिससे मेरे अन्तराय का उदय रहता है? भगवान् ने फरमाया—''तू पूर्वजन्म में मगधदेश के 'पूर्वार्ध' नगर में 'पाराशर' नामक एक सुखी और सम्पन्न किसान था। खेत में छः सौ हल चलते थे। एक बार ऐसा प्रसंग आया—छः सौ हल खेत में चल रहे थे। भोजन के समय सबके लिए भोजन आया। परन्तु तू लालच में फंसकर थोड़ा और चलाओ, थोड़ा और चलाओ कहकर हल चलवाता रहा। बारह सौ बैल और छः सौ हल चलाने वाले व्यक्ति भूख-प्यास से परेशान थे। तू उन सबके लिए अन्तरायदाता बना। उस कार्य से निकाचित कर्मों का बंध हुआ। वे यहाँ उदयावस्था में आये हैं, अतः तुम्हें आहार नहीं मिलता है।''

अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनकर ढंढ़णमुनि और अधिक संवेग रस में तल्लीन हो उठे। उन लाये हुए मोदकों का व्युत्सर्ग करने प्रासुक भूमि में गये। एक-एक करके मोदकों को चूरने लगे। मोदकों के साथ-साथ भावना बल से अपने कर्मों का चूर्ण करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष में जा पहुंचे।

—त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र, पर्व 8 : भरतेश्वरवृत्ति

❑ ❑ ❑

(40)

भोगान्तराय (मम्मण सेठ)

राजगृह नगर में एक सेठ रहता था। जिसका नाम था—मम्मण सेठ। उसने अत्यन्त परिश्रम से प्रचुर धन अर्जित किया। वह न पूरा भोजन करता और न ही पानी पीता था। उसने अपने प्रासाद की छत पर स्वर्गमय एक बैल का निर्माण करवाया। उसमें दिव्य रत्न जटित किये। उसके सींग वज्रमय थे। उसमें करोड़ों का व्यय किया। उसने दूसरे बैल का निर्माण प्रारम्भ किया। वह भी पूर्णता की ओर ही था। एक बार उस बैल के निमित्त वर्षारात्रि में मम्मण लंगोटी लगाए नदी से काठ के गट्ठर निकाल रहा था। राजा श्रेणिक और रानी चेलना दोनों गवाक्ष में बैठे थे। रानी की दृष्टि उस पर पड़ी। वह दयाभिभूत हो गई। उसने सात्त्विक आक्रोश करते हुए राजा से कहा—

'सच्चं सुव्वइ एयं, मेहनहसमा हवंति रायाणो।
भरियाइं भरेंति दढ़ं, रित्तं जत्तेण वज्जेइ।।'

यह सही सुना जाता है कि राजा लोग वर्षा की नदियों के समान होते हैं। वे भरे हुए को और अधिक भरते हैं। जो रिक्त हैं उन्हें प्रयत्नपूर्वक रिक्त ही रखते हैं। राजा ने पूछा—कैसे? रानी बोली—'देखिए, वह गरीब कितना कष्ट पा रहा है।' रानी ने नदी की ओर अंगुलि कर राजा को दिखाया। राजा ने मम्मण सेठ को अपने पास बुला भेजा। राजा ने पूछा—इतना कष्ट क्यों पा रहे हो? उसने कहा—मेरे पास एक बैल है, मैं उसकी जोड़ी का दूसरा बैल बनाना चाहता हूँ। वह प्राप्त नहीं हो रहा है। राजा बोला—एक नहीं, सौ बैल ले लो। वह बोला—इन बैलों से मेरा क्या प्रयोजन? पहले जैसा ही दूसरा चाहिए। राजा बोला—तेरा बैल कैसा है? मम्मण राजा को अपने घर ले जाकर स्वर्ण निर्मित बैल को दिखाया। राजा बोला—यदि मैं अपना सम्पूर्ण खजाना भी दे दूं, फिर भी इस बैल की सम्पूर्ति नहीं हो सकती। आश्चर्य है इतना वैभव होने पर भी तुम्हारी तृष्णा नहीं भरी। मम्मण बोला—जब तक मैं इसकी पूर्ति नहीं कर लूंगा, तब तक मुझे चैन नहीं होगा।

राजा बोला—मम्मण! तुम्हारे अनेक प्रकार के व्यापार होते हुए भी नदी में खड़े रहकर कष्ट क्यों पाते हो? मम्मण बोला—वर्षा काल में अन्य व्यापार नहीं चलते। इस समय काष्ठ बहुमूल्य होने के कारण नदी में से उन गट्ठरों को निकाल रहा हूँ। राजा बोला—मम्मण! तुम्हारा मनोरथ तुम ही पूरा कर सकते हो, दूसरा कोई अन्य समर्थ नहीं हो सकता। मैं भी समर्थ नहीं हूँ। राजा चला गया। मम्मण श्रम करता रहा। समय पर मनोरथ पूरा हुआ। उसने दूसरे बैल का निर्माण कर लिया।

एक बार शहर में ज्ञानी आचार्य पधारे। मम्मण सेठ ने पूछा—आचार्य भगवन्! मेरे पास इतनी सम्पत्ति होते हुए भी मैं दाल और रोटी, इन दो द्रव्यों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं खा सकता इसका क्या कारण है? आप मेरी जिज्ञासा का समाधान करवाएं।

आचार्यश्री ने उत्तर देते हुए कहा—सुनो! सेठ मम्मण! पिछले जन्म में तुम्हारे नगर में नगरसेठ के घर पर पुत्रोत्सव मनाया, उस प्रसंग पर नगरसेठ ने पूरे नगर में (हरिजन से लेकर महाजन तक) प्रत्येक घर पर दो-दो केसरिया-मोदक बांटे। तुमने उन दो मोदकों को दूसरे दिन के लिए रख दिये। दूसरे दिन मुनि गोचरी के लिए पधारे। तुमने भावना भायी। घर में गया। पत्नी कहीं बाहर गयी हुई थी। तुमने 2-3 डिब्बे खोले कुछ नहीं मिला। चौथा डिब्बा खोला। उसमें दोनों केसरिया मोदक रखे हुए थे। तुमने उत्कृष्ट भावों से साधु को दोनों केसरिया मोदक बहरा दिये। मुनि चले गये। पीछे से पड़ोसिन आयी। उसने कहा—'अरे! केसरिया मोदक खाये या नहीं? मोदक बहुत स्वादि और शक्तिवर्धक हैं। एक-एक मोदक लाख-लाख रूपयों की कीम्मत वाले हैं। आज तक मैंने और तुमने ऐसे मोदक कभी खाये नहीं और संभवत: भविष्य में मिलने वाले भी नहीं हैं।' मोदक की प्रशंसा सुनकर मुनि के पीछे भागा-दौड़ा और आवाज दी। महाराज—रुको! रुको! मुनि के नीचे से पैर और ऊपर से सिर जल रहा था। फिर भी बेचारे मुनिजी रुके। तुम्हारे भी मुनि तक पहुंचते-पहुंचते सांस भारी हो गया। हांफते-हांफते तुमने मुनिजी से कहा—महाराज! मेरे मोदक मुझे वापस दे दो। बहुत आग्रह किया। परन्तु मुनिजी ने बार-बार कहा—साधु के पात्र में आया हुआ वापस देना नहीं है, देना नहीं है। तुम माने नहीं। दोनों मोदक झोली में ऊपर वाले पात्र में ही रखे हुए थे। उसमें तुमने हाथ डालकर एक मोदक निकाल लिया।

उस मोदक को लेकर तू घर की ओर चला गया। रास्ते में मोदक खाते हुए चल रहा था और पश्चात्ताप भी करता–कि अरे! वास्तव में पड़ोसिन ने सही कहा है। यदि मैं यह मोदक नहीं खाता, इसके स्वाद का अनुभव नहीं करता तो मुझे जीवन भर पश्चात्ताप रहता। पड़ोसिन ने मुझे बताकर मेरे पर बहुत बड़ा उपकार किया है।

अर्थात् मुनि को उत्कृष्ट भावों से दान दिया उसके फलस्वरूप तुम्हें अपार संपत्ति मिली। तुमने दान देकर पश्चात्ताप किया उस समय तुम्हारे भोग अन्तराय कर्म का बंध हुआ, जिसके फलस्वरूप तुम दाल-रोटी के सिवाय कुछ भी नहीं खा सकते।

❑ ❑ ❑

(41)

अन्तराय कर्म

स्वर्णभद्रा नगरी में सर्वज्ञ आचार्य विमलवाहन पधारे। उनका धर्मसंघ तेजस्वी धर्मसंघ था। उस धर्मसंघ में अनेक साधु लब्धिधर, पूर्वधर, अवधिज्ञानी, मन:पर्यवज्ञानी थे। वहाँ लोगों में आचार्य के प्रति गहरी श्रद्धा थी और आचार्य का भी उन पर अच्छा प्रभाव था। मध्याह्न के समय कुछ युवक आचार्यश्री की सन्निधि में पहुंचे। उनमें से एक युवक गुणभद्र अपनी जिज्ञासा रखते हुए बोला—गुरुदेव! मैं सुपात्र दान देना चाहता हूँ, वस्तु का योग भी है, किन्तु दान का योग नहीं मिलता। इसके पीछे क्या कारण है? दान देने की बहुत भावना है पर कुछ न कुछ रुकावट आ जाती है। कभी तो साधु-संत नहीं आते। यदि कृपा कर आ भी जाते तो कोई न कोई रुकावट आ जाती है।

गुरुदेव! एक बार एक मुनि को खूब प्रार्थना कर घर ले गया। द्रव्य शुद्ध था, मैं भी बिलकुल शुद्ध था। मुनि भी आहार लेने के लिए और मैं आहार देने के लिए तैयार थे। हाथ में रोटी ली। मेरा मन प्रसन्न हो रहा था कि आज प्रथम बार सुपात्रदान देने का मौका मिलेगा। इतने में ऊपर से उड़ते हुए पक्षी की चोंच से हरी सब्जी का एक टुकड़ा मेरे सिर पर पड़ा और मैं दान देने के अयोग्य हो गया। उस दिन मेरे घर से कोई भी वस्तु मुनिजी ने नहीं ली। गुरुदेव! इसका क्या कारण है?

आचार्यश्री ने कहा—गुणभद्र! वह अन्तराय कर्म का परिणाम है। ऐसे यह कर्म समस्त कर्मों के विपाक के साथ जुड़ता है और पृथक् भी। तुमने दानान्तराय कर्म प्रकृति का बंध किया। उसी का अभी विशेष रूप से उदयकाल चल रहा है।

गुणभद्र सुनो! तू पूर्वजन्म में जागीरदार था। तुम्हारे गांव में मुनि आये। तुमने सोचा—दान तो मेरे घर से ही दिया जाना चाहिए, संतों से कहूंगा तो संत मानेंगे नहीं और लोग भी अपने-अपने घर की प्रार्थना करेंगे। तुमने पूरे गांव में घोषणा करवा दी कि—किसी को मुनिजी को दान नहीं देना है। संत समतायुक्त थे। उस गांव को छोड़कर दूसरे गांव जाने लगे। तब खेत में तुमने भिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की। साधुओं ने वहां शुद्ध आहार लिया और खेत में ही बैठकर भोजन किया।

तू दान देकर बहुत खुश हुआ और सोचा—आज यह युक्ति काम कर गई। पूरा दान मेरे घर का ही लगा। गुणभद्र! उस समय तुम्हारे दानान्तराय कर्म का बंध

हो गया। वहाँ से तू मरकर यहाँ गुणभद्र बन गया। पुण्योदय से तुम्हें समस्त भौतिक सामग्री उपलब्ध है किन्तु नगरवासियों को दान देने से रोका जिसके फलस्वरूप दान देने में कोई न कोई बाधा उपस्थित होती है। दूसरे की वस्तु देने पर कोई कठिनाई नहीं आयेगी। स्वयं के लिए वस्तु होने पर भी बाधा आ रही है? अभी कुछ समय तक इस कर्म प्रकृति को भोगना पड़ेगा।

दूसरा युवक विमलभद्र जिज्ञासा के स्वर में बोला—गुरुदेव! मेरी बौद्धिक प्रतिभा अव्वल दर्जे की है, किन्तु उसमें भौतिक या आध्यात्मिक लाभ नहीं आ रहा है।

कारण स्पष्ट करते हुए गुरुदेव ने कहा—यह भी अन्तराय कर्म की निष्पत्ति है। पिछले जन्म में तू युगभद्र नाम से सरकारी अधिकारी था। राजा तुम्हारी बात पर विशेष ध्यान देता था। राजा का जन्म दिन आया। उसका यह चिन्तन था—गरीब व्यक्तियों को एक-एक हजार मुद्राएं देकर स्वावलम्बी बनाया जाये। गरीबों की सूची बन कर तैयार हो गई और सारी व्यवस्थाएं भी हो गईं। तू शहर के बाहर था। गांव में आते ही योजना के स्वरूप को सुना। सोचने लगा—एक-एक हजार मुद्राएं न दी जाये तो ठीक है। नहीं तो गरीब भी सम्पन्न हो जाएंगे फिर हमें कौन पूछेगा। इसी चिन्तन के साथ कि फिर वैभव का अंकन कौन करेगा? यह सोच तू राजा के पास गया और योजना के बारे में राजा को विस्तार से बताया।

तुमने कहा—ऐसा करने से राज्य में अकर्मण्यता बढ़ जायेगी। राजभण्डार खाली हो जायेगा। अतः दोनों बात अवांछनीय है। व्यवसाय के इच्छुक व्यक्तियों को ऋण दिया जा सकता है। राजा को बात जंच गई। राजा ने पहली योजना को स्थगित कर दिया। तुम्हारी चाल सफल हो गई, किन्तु बेचारे हजारों गरीब लाभ से वंचित रह गये। उस समय तुम्हारे लाभ-अन्तराय कर्म का बंध हुआ। उन कर्मों को तू यहाँ भोग रहा है।

बद्धांजलि हो तीसरे युवक जीवनभद्र से पूछा—आचार्यवर! धन-वैभव बहुत है। सुख-सुविधा के साधन उपलब्ध हैं। पर न तो मैं खा सकता हूँ, न ही कुछ भोग सकता हूँ, केवल देख सकता हूँ। गले में गांठ होने से मात्र तरल पदार्थ ही पी सकता हूँ, ठोस पदार्थ नहीं खा सकता। शारीरिक व्याधि के कारण मैं शरीर का सुख तथा अन्य सुख भी नहीं भोग सकता। इसका क्या कारण है?

आचार्यश्री—जीवनभद्र! इसका नाम है—भोगान्तराय। तू पूर्वभव में सेनापति दंडवाहन था। स्वभाव से क्रूर था। सेना को कड़े अनुशासन में रखता

था। गलती पर कठोर से कठोर दंड दिया करता था। एक बार तुमने सब सैनिकों को आदेश दिया कि छावनी के निकट की नदी की रेत को वहीं एक जगह इकट्ठी करनी है। सभी सैनिक इस कार्य में जुटे। जितनी मिट्टी को ऊंची करनी थी, उसमें कुछ अन्तर रह गया। तुमने देखा—निर्धारित समय में मेरे कथनानुसार रेत इकट्ठी नहीं की गई।

तू झुंझलाया और सबको फटकारा। सैनिकों का कहना था—हमने इतनी ऊंची रेत इकट्ठी करने का ही सुना था। तुमने दण्डस्वरूप सबका एक दिन का भोजन काट दिया। सब सैनिक बेचारे मजबूरी में भूखे रहे। सैनिक अनुशासन के कारण कुछ नहीं कर सके। सबके मन में आक्रोश था। फिर भी विवश थे, वहाँ तुम्हारे भोगान्तराय कर्म का बंध हुआ। दायित्व बुद्धि से किसी का कुछ करना अलग बात है, पर गुस्से में आकर किसी के खान-पान आदि भोगों का अवरोध करना अन्तराय कर्म बंध का हेतु है।

चौथे युवक विश्वभद्र ने पूछा—गुरुदेव! मेरे में उत्साह की कमी क्यों है? किसी कार्य में आत्मशक्ति की अनुभूति नहीं होती, आत्महीनता की ही अनुभूति होती है। कृपा कर बताएं इसका कारण क्या है?

आचार्यश्री—विश्वभद्र! तुम्हारे में बहुत शक्ति है। पिछले जन्म में तू मणिभद्र नाम का सेठ था। तुम्हारी नगरी तांबावती में एक बार मुनि समाधिसागर पधारे। उन्होंने तपस्या का अनुष्ठान एवं ज्ञान का उपक्रम किया। लोगों को प्रेरणा दी। तुममें यह क्षमता होते हुए भी अपनी कमजोरी प्रदर्शित की और तुमने लोगों से भी कहा—मेरी तरह कमजोरी दिखा दो, मजबूरी बता दो, जिससे छूट जाओगे इस झंझट से। नहीं तो फंस जाओगे।

लोगों ने वैसा ही किया। स्वयं में ऐसा करने की क्षमता होते हुए भी अपनी कमजोरियां उजागर करने लगे। उन मुनिजी का अभियान विफल हो गया। अब मुनिजी क्या करें? उन सब लोगों को तुमने हतोत्साहित कर दिया तथा शक्ति होते हुए भी उसे छुपाया उससे वीर्य-अन्तराय कर्म का उपार्जन कर लिया। उन्हीं कर्मों को तू आज भोग रहा है।

❑ ❑ ❑

संदर्भ-पुस्तकें

1. उत्तराध्ययन
2. स्थानांग
3. नंदी
4. विपाक सूत्र
5. श्री भिक्षु आगम शब्द कोष भाग-I
6. श्री भिक्षु आगम शब्द कोष भाग-II
7. कर्मग्रंथ
8. कर्म-संहिता
9. जैन कथा कोष
10. जैन तत्त्व विद्या
11. जैन तत्त्वज्ञान प्रश्नोत्तरी
12. जैन तत्त्व दीपिका
13. कर्म-विज्ञान
14. अवबोध
15. कर्मलोक
16. आवश्यक निर्युक्ति की कथाएं
17. नव पदार्थ

ISBN 817195268-2